PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

गिना प्रकाशन द्वारा
जयपुर, भिवानी एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2321-0540
Impact Factor : 5.621

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL

Managing Editor :
Dr. Mukesh Verma
M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी (रजि.) के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2348:5639

SHODH SAMALOCHAN July-Sep. 2026

Dr. Versha Rani,
Dr. Naresh Sihag, Adv.

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा भारत-नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

Vol. : 13, Issue : 3 July-Sep. : 2026

संस्थापक संपादक
स्व. फतेहचंद

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

SHODH SAMALOCHAN

शोध-समालोचन (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REREREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

वर्ष-13, अंक-3 जुलाई-सितम्बर / 2026 (भाग-2) आईएसएसएन : 2348-5639

संरक्षक
• डॉ. इस्पाक अली, बैंगलुरु

संपादक
• डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल' एडवोकेट

कार्यकारी संपादक
• डॉ. वर्षा रानी

प्रबंध संपादक
• डॉ. मुकेश 'ऋषिवर्मा'

सह-संपादक
• डॉ. लता एस. पाटिल,
• डॉ. सुलक्षणा अहलावत

अक्षर संयोजन
• मो. सलीम

कानूनी सलाहाकार
• डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
• अजीत सिहाग, एडवोकेट

अंतरराष्ट्रीय सम्पादक मंडल

• आशीष कुमार, गाजियाबाद
• डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी, नेपाल
• डॉ. निशीथ गौड, आगरा
• डॉ. राजेश शर्मा, श्रीगंगानगर
• श्री शियोन छन श्यू, चीन
• डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पांडे, नीदरलैंड
• डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट, श्रीनगर
• डॉ. दीपशिखा, पटियाला
• डॉ. सुनीता शर्मा, ऑस्ट्रेलिया
• श्री राकेश शंकर भारती, युक्रेन
• डॉ. के.के. मल्होत्रा, कैनेडा
• डॉ. आशीष कुमार दीपांकर, मेरठ
• डॉ. कामिनी कौशल, गाजियाबाद
• डॉ. रवि शंकर सिंह, आरा

1. 'शोध-समालोचन' का प्रबंधन और संपादन पूर्णतः अवैतनिक है।
2. 'शोध-समालोचन' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के अपने हैं। उनके प्रति वे स्वयं उत्तरदायी है।
3. पत्रिका से संबंधित प्रत्येक विवाद का न्याय क्षेत्र भिवानी न्यायालय ही मान्य होगा।
4. प्रकाशक/ स्वामी डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से मुद्रित करवाया।

'शोध समालोचन' की सदस्यता का शुल्क भुगतान राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सीधे ट्रांसफर या जमा किया जा सकता है। बैंक का विवरण निम्नानुसार है–**बैंक :** PUNJAB NATIONAL BANK **Branch :** Yamuna Vihar, Delhi-110053 **IFSC :** PUNB0225600 **Account Holder :** SANIA PUBLICATION **Current Account No.** 2256002100405546 भुगतान की मूल रसीद, शोध -पत्र पत्रिका की ई-मेल पर भेजना अनिवार्य है।

नोट :- इस अंक की प्रिंट कॉपी खरीदने के लिए सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से सम्पर्क करें मो. 9818128487

मूल्य : 650/- रु. एक प्रिंट प्रति वार्षिक 2500/- रु.

विषय विशेषज्ञ सलाहकार समिति/ संपादकीय मंडल :

- **Dr. Mudita Popli**
  Principal, Maa Karni B Ed College Nal, Bikaner
- **Dr. Tapasya Chauhan**
  Assistant Professor, Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra (Utter Pradesh)
- **Dr. Om Prakash Mehrara**
  Director, Shri Ramnarayan Dixit PG College, Srivijaynagar, Distt. Anupgarh (Rajasthan)
- **PRINCE KUMAR**
  UGC NET-JRF, History, Senior Researcher, University History Department, B.R.A.Bihar University Muzaffarpur, Bihar
- **Dr Kanta Verma**
  Assistant professor, Political science, Govt College Lanji Balaghat, District Balaghat, M.P.
- **Dr. Sainath Kabade**
  Assistant Professor, Department of Educational Social Sciences, NIE, NCERT, New Delhi.
- **Mr. Sagar Gopal Rathod**
  Assistant professor, School of Social Science, Punyashlok Ahilyadevi Holkar Solapur University, Maharashtra.
- **Dr (Smt.) Manjulata Kashyap**
  Professor (Economics),Govt.T.C.L.P.G. College Janjgir, Chhattisgarh
- **Dr. AMBILI V. S.**
  Assistant Professor, Department of Hindi,
  N.S.S. College, Pandalam, Pathanamthitta Distt. University of Kerala.
- **Dr. Anju Bala**
  Assistant Professor Hindi, Guru Nanak Girls College, Yamunanagar-135001
- **Dr. Tikaram Sarthi**
  Hasmukh, Lecturer, Govt H.S.S.Churteli, Dist. Sakti (Chhattisgarh)-495688
- **Dr. Atul Chand**
  Hod Defence & Strategic Studies/ ex Principal in-charge "Government Degree college Baluwakote Pithoragarh "Uttarakhand
- **Dr. Vimal Parmar**
  Assistant Prof. Rajasthan P.G. Law College, Chirawa , Rajasthan
- **Dr. Archana Tiwari** , Assistant Professor , History and Indian Culture, Uni. Rajasthan, Jaipur
- **Sneha Deepak Wankhede**
  Assistant professor Hindi Department, Rajkumar Kewalramani College Jaripatka Nagpur, Maharashtra
- **डॉ. श्रीमती अभिलाषा सैनी**
  प्राचार्य, स्व. रामनाथ वर्मा शासकीय महाविद्यालय, मोपका, जिला-बलौदा बाजार, छत्तीसगढ़
- **डॉ. मोहित शर्मा**
  श्री सर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, निम्बार्क तीर्थ किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)
- **रजनी प्रिया**
  राँगाटाँड़ रेलवे कॉलोनी, क्वा.सं. 502/136, तरुण संघ क्लब दुर्गा मंदिर, धनबाद, पोस्ट जिला-धनबाद, झारखंड

- **डॉ. मीरा चौरसिया,** चमनलाल महाविद्यालय लंढौरा, रुड़की, हरिद्वार, उत्तराखण्ड-247664
- **डॉ. आँचल कुमारी,** असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी
  राम चमेली चड्ढा विश्वास गर्ल्स कॉलेज गाजियाबाद चौधरी चरणसिंह युनिवर्सिटी, मेरठ (उ. प्र.)
- **डॉ. प्रमोद नाग**
  सहायक प्राध्यापक, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेजुएट स्टडीज, बेंगलुरु-560107
- **डॉ. चन्द्रशेखर सिंह**
  समाज कार्य विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- **लेफ्टि. डॉ. सन्दीप भांभू**
  शारीरिक शिक्षा विभाग, टॉटिया वि.वि. श्रीगंगानगर
- **डॉ. सरिता भवानी मालवीय**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, फैकल्टी ऑफ लॉ., आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्यप्रदेश)
- **डॉ. संदीप कुमार,** असि. प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **पल्लवी आर्य**
  असि. प्रोफेसर, भाषाविज्ञान विभाग, के.एम.आई. डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **डॉ. अमित कुमार सिंह**
  डी. लिट्., असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, के.एम. आई., डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
- **कोकिला कुमारी**
  शोद्यार्थी, हिंदी विभाग, राँची वि.वि. राँची, झारखंड
- **डॉ. तनु श्रीवास्तव**
  असिस्टेंट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), स्कूल ऑफ सोशल साइंस, देवी अहिला विश्वविद्यालय, इन्दौर
- **डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी**
  उप-प्राध्यापक, केंद्रीय हिन्दी विभाग, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल
- **डॉ. जगदीप दुबे**
  सहायक प्राध्यापक वाणिज्य (म.प्र.), शासकीय आदर्श महाविद्यालय, डीनडोरी (म.प्र.)
- **डॉ. श्रीकांत राठोड**
  सहायक प्राध्यापक हिंदी विभाग, श्री शांतेश्वर शिक्षा संस्थान, श्री जी.आर. गांधी कला, श्री वाय ए पाटील वाणिज्य एवं श्री एम पी दोशी विज्ञान महाविद्यालय, इंडी, जिला विजयपुर, कर्नाटक
- **डॉ. मंजू देवी**
  सहायक आचार्य श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर
- **डॉ. सुनीता सारस्वत**
  सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग), सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बड़ी झुंझनू, राजस्थान
- **प्रा. डॉ. बोईनवाड कृष्णा बाबुराव**
  सहा. प्रा. दिगंबरराव बिंदू कला वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, भोकर. जिला नांदेड, महाराष्ट्र
- **डॉ. माया गोला,** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)
- **डॉ. श्रीराम**
  एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी, राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, बीकानेर

Request to Writers

Send quality original and unpublished works written on language, literature, society, science and culture. For publication, along with the translated works, also send the letters of consent received from the original authors. Compositions should be typed in Hindi Unicode Mangal font, English Time Roman. At the beginning of the article, a summary of the article is required which should be between 150 to 200 words maximum. The abstract must reflect the purpose of writing the article. Also write 5 to 7 'key words' (seed words) according to the article.

Write the article by dividing it appropriately into subheadings. Be sure to give a conclusion at the end of the article. The word limit should be 2000 to 2500 words. List of bibliographies at the end of the article APA Be in the format of. While sending the article, please write your name, address, phone number and title of the article in the e-mail. Submit a declaration to the effect that the article is original, unpublished, the author and not the editorial board will be responsible for any dispute related to it in future.

At the end of the composition, mention your complete postal address, mobile number and e-mail address.

- Editor

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज, विज्ञान एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएं भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फान्ट अंग्रेजी टाइम रोमन में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 (की वर्ड) (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2000 से 2500 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे संपादक मंडल नहीं।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें।

-संपादक

प्रकाशित पत्रिका प्राप्त करने के लिए संपर्क करे :
सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094
मोबाइल : 9818128487, 8383042929

ISSN : 2348-5639

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

संपादकीय

प्रिय पाठको,

वर्तमान समय ज्ञान-विस्तार, विचार-विमर्श और बौद्धिक संवाद का युग है, जहाँ शोध केवल शैक्षणिक अनिवार्यता नहीं, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व का भी एक महत्वपूर्ण साधन बन चुका है। शोध समालोचन के इस अप्रैल-मई-जून 2026 अंक को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें यह अनुभव हो रहा है कि ज्ञान की यह यात्रा निरंतर गहराई और व्यापकता की ओर अग्रसर है। यह अंक न केवल विविध विषयों की शोधपरक सामग्री को समाहित करता है, बल्कि समकालीन संदर्भों में उनके प्रासंगिक विश्लेषण का भी सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है।

आज का युग बहुआयामी चुनौतियों और संभावनाओं का युग है। एक ओर तकनीकी प्रगति ने मानव जीवन को सुविधाजनक बनाया है, तो दूसरी ओर सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक प्रश्नों को भी जटिल बना दिया है। ऐसे समय में शोध का कार्य केवल तथ्यों का संकलन नहीं, बल्कि उन तथ्यों के पीछे छिपे यथार्थ को उजागर करना भी है। इस अंक में सम्मिलित लेख इसी दृष्टि को केंद्र में रखते हुए लिखे गए हैं, जिनमें भारतीय ज्ञान परंपरा, साहित्यिक विमर्श, सामाजिक सरोकार और शैक्षिक नवाचारों पर गंभीर चिंतन प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय ज्ञान परंपरा सदैव से ही विश्व को दिशा देने वाली रही है। आज जब वैश्वीकरण के प्रभाव में सांस्कृतिक अस्मिता पर प्रश्नचिह्न लग रहे हैं, तब यह आवश्यक हो जाता है कि हम अपनी जड़ों की ओर लौटें और अपने परंपरागत ज्ञान को समकालीन संदर्भों में पुनः परिभाषित करें। इस अंक में प्रकाशित शोध आलेख इस दिशा में सार्थक प्रयास हैं, जो भारतीय दर्शन, संस्कृति और शिक्षा के मूल तत्वों को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हैं।

साहित्य, समाज का दर्पण होने के साथ-साथ उसकी संवेदनाओं का भी सशक्त माध्यम है। वर्तमान अंक में साहित्यिक आलोचना और समीक्षा के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार साहित्य समाज के बदलते स्वरूप को अभिव्यक्त करता है। समकालीन कविताओं, कहानियों और गद्य साहित्य में उभरते विषय जैसे स्त्री-विमर्श, दलित चेतना, पर्यावरणीय संकट और नैतिक मूल्यों का ह्रास—इन सभी पर गहन विचार प्रस्तुत किया गया है। यह अंक साहित्य को केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के औजार के रूप में देखने की दृष्टि प्रदान करता है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी निरंतर परिवर्तन हो रहे हैं। नई शिक्षा नीति और डिजिटल तकनीकों के प्रभाव ने शिक्षण और अधिगम की प्रक्रिया को पूरी तरह से बदल दिया है। इस अंक में शिक्षा से संबंधित शोधपत्र इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि किस प्रकार नवाचार और परंपरा का संतुलन बनाकर एक समावेशी और प्रभावी शिक्षा प्रणाली विकसित की जा सकती है। शिक्षा केवल ज्ञानार्जन का माध्यम नहीं, बल्कि व्यक्तित्व निर्माण और सामाजिक चेतना के विकास का आधार भी है—इस विचार को यहाँ विशेष महत्व दिया गया है।

इसके अतिरिक्त, इस अंक में विभिन्न शोधार्थियों और विद्वानों द्वारा प्रस्तुत लेखों में सामाजिक यथार्थ की गहन पड़ताल की गई है। ग्रामीण जीवन, शहरीकरण, आर्थिक असमानता, और सांस्कृतिक बदलाव जैसे विषयों पर किए गए अध्ययन यह दर्शाते हैं कि शोध का उद्देश्य केवल निष्कर्ष निकालना नहीं, बल्कि समाज के समक्ष प्रश्न खड़े करना और उनके समाधान की दिशा में विचार उत्पन्न करना भी है।

शोध समालोचन का उद्देश्य सदैव से ही शोध की गुणवत्ता और प्रामाणिकता को बनाए रखना रहा है। इस अंक में प्रकाशित सभी लेख कठोर समीक्षा प्रक्रिया से गुजरकर चयनित किए गए हैं, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि पाठकों

को विश्वसनीय और उच्चस्तरीय सामग्री प्राप्त हो। हम यह मानते हैं कि एक सशक्त शोध परंपरा का निर्माण तभी संभव है जब उसमें नवीनता, निष्पक्षता और आलोचनात्मक दृष्टि का समावेश हो।

अंततः, हम सभी लेखकों, शोधार्थियों और समीक्षकों का आभार व्यक्त करते हैं, जिनके सहयोग से यह अंक संभव हो पाया है। साथ ही, हम अपने पाठकों से भी अपेक्षा करते हैं कि वे इस अंक में प्रस्तुत विचारों पर गंभीरता से विचार करें और ज्ञान-विमर्श की इस परंपरा को आगे बढ़ाने में अपना योगदान दें।

ज्ञान की यह यात्रा अनवरत है, और शोध समालोचन इस यात्रा में एक सशक्त मंच के रूप में अपनी भूमिका निभाता रहेगा—इसी विश्वास के साथ हम इस अंक को आपके समक्ष समर्पित करते हैं।

संपादक

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

विषयानुक्रमणिका

संपादकीय 6

Tradition, Race, and Female Sensibility: A Comparative Reading of Kamala Markandaya and Toni Morrison 11
Shamama Bano
Dr. Manju Sharma

सोनभद्र के आदिवासी समाज का संघर्ष और अस्मिता 20
रीखा पटेल

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री समस्या 23
कु. सविता कुमारी

नारी प्रतिरोधी स्वर में 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास 26
Lija G S

भारतीय कवयित्रियाँ : साहित्यिक परंपरा, स्त्री चेतना और समकालीन परिप्रेक्ष्य 29
डॉ. रमा राहुल दूधमांडे

21वीं सदी के हिंदी रंगमंच के समक्ष चुनौतियों का विश्लेषण 34
रमनदीप

औपनिवेशिक टीकाकरण और चेचक 39
हर्ष वार्ष्णेय

आर्य समाज के सोलह संस्कार : वैदिक परंपरा और समकालीन प्रासंगिकता 43
रोहित

संवेदना और विवेक के बीच : मोहन राकेश की रूमानी चेतना 50
रेमीसा सी.यु.

कहानी संग्रह 'दूत' में स्त्री विमर्श का चित्रण 55
प्रा.पटेकर विश्वनाथ चंद्रकांत

किशोरियों के मासिक चक्र पर आहार एवं जीवनशैली का प्रभाव : एक अध्ययन 59
Dr. Trupti Khanang

'पेररियात्तवर' : बेनाम दलित जीवन की दास्तान 65
डॉ. मिन्नु जोसेफ

आत्मनिर्भर भारत और भारतीय ज्ञान परंपरा : आर्थिक राष्ट्रवाद से वैश्विक नेतृत्व तक 68
हर्षा जैन

अनुसूचित जनजाति एवं विवाह संस्कार 71
डॉ. स्नेह लता शिवहरे

त्र्यम्बक शैव शास्त्र के प्रचार-प्रसार में आचार्य भट्ट कल्लट का योगदान 76
टीना कुमारी
प्रो. सुषमा देवी
दरबारी सत्ता के बीच बेला : 'राग दरबारी' में स्त्री अस्तित्व का संघर्ष 81
डॉ. प्रणीता पी.
शंकर शेष के नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' की सिनेमा में प्रासंगिकता 85
जशन काठपाल
डॉ. शिवचरण शर्मा
हबीब कैफ़ी के उपन्यास 'गमना' में आदिवासी जीवन का यथार्थ : शोषण, अस्मिता और प्रतिरोध का विमर्श 89
सलमा अश्फ़ा
Impact of Social Media Usage on Happiness and Life Satisfaction among Young Adults 94
Amirah Kaisar Parvez Bagwan
Dr. Pawar Anuradha Vijay
The Role Of Blockchain Technology In Enhancing Cybersecurity And Data Integrity 103
Bagwan Kaisar Parvez Nisar
Dr. Kalpana Midha
सूर्यबाला की कहानी 'मानुष गंध' में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ 112
रोहिणी एस ए
डॉ. लक्ष्मी एस एस
बुद्ध शरण हंस के कथा साहित्य में हाशिए का समाज और प्रतिरोधी चेतना 115
राकेश कुमार
प्राचीन भारत में क्षत्रिय महिलाओं के व्यभिचार संबंधी विधिक प्रावधान : धर्मसूत्रों का तुलनात्मक विश्लेषण 119
चौधरी मधुलिका
चारुदत्तम् की प्राकृत में प्रयुक्त नामपद 125
डॉ. अश्विनी कुमार
नई शिक्षा नीति (NEP) के परिवर्तनकारी प्रभाव पर प्रेमचंद के साहित्य की प्रासंगिकता 130
डॉ. रूमा साह
वैश्वीकरण का दलित जीवन पर प्रभाव : उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में 133
स्नेहा
यशपाल के उपन्यासों में अभिव्यक्त लोकसंस्कृति 138
नेहा सक्सेना
महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों में ग्रामीण जीवन : संवेदना, संघर्ष और मानवीयता 142
विपुल कुमार
डॉ. श्रीकांत सिंह
मोहन राकेश के नाटकों में नारी मनोविज्ञान और संघर्ष 147
Dr. Anupama
A Study on the Impact of Jain Literature and Jain Cultural Values on Students 154
Dr Ambika Pareek

Food, Feast and Female: Gastro-Politics in Mughal India 1500-1700 C.E 161
Anjali Rajput
कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह के काव्य-संग्रह 'बबुरीवन' में मार्क्सवादी चेतना का वैचारिक अध्ययन 167
सीमा कुमारी
21वीं सदी के हिंदी कहानियों में वृद्ध विमर्श 172
गीतु. एम
ANĀTMA VĀDA IN AŚVAGHOṢA'S BUDDHACARITA 175
Sharmila K Thankappan
कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में नैतिक शिक्षा और मानव निर्माण: स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन एवं शिक्षक भूमिका का प्रासंगिक विश्लेषण 183
डॉ. निरूपमा जैन
विजय सिंह
'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा' और 'किन्नर कथा' में किन्नरों का जीवन संघर्ष 187
डॉ. रजिला ओ. पी
शरद सिंह की दृष्टि में आदिवासी सभ्यता और संस्कृति की एक झलक 190
प्रभा शर्मा
डॉ. अनामिका द्विवेदी
हनुमानगढ़ जिले में औद्योगीकरण का श्रमिक परिवारों की रोजगार एवं आर्थिक स्थिति पर प्रभाव: एक भौगोलिक अध्ययन 193
मुकेश कुमार
डॉ. बबिता शर्मा
हिंदी नाटकों में गांधी-चित्रण : 'गोडसे @ गाँधी. कॉम' के विशेष संदर्भ में 200
डॉ. ए. व्हि. सूर्यवंशी

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Tradition, Race, and Female Sensibility: A Comparative Reading of Kamala Markandaya and Toni Morrison

Shamama Bano
(Research Scholar)
Department of English
Bhagwant University Ajmer Rajasthan, Ajmer, Rajasthan
Dr. Manju Sharma
Guide

Abstract

This paper examines feminine sensibility in the novels of Kamala Markandaya and Toni Morrison through the interconnected perspectives of tradition, race, and gender. Although the two writers belong to different cultural and historical backgrounds, they portray women who struggle against social discrimination, patriarchal domination, and identity crises. Markandaya focuses on Indian women's lives shaped by tradition, poverty, and social expectations, while Morrison highlights the experiences of African American women confronting racial oppression and historical trauma. Through a comparative analysis of selected novels, this study demonstrates that both writers present women as resilient individuals who negotiate social constraints while asserting their dignity and identity. The paper argues that feminine sensibility in both authors transcends cultural boundaries and reflects universal concerns of survival, selfhood and resistance.

Keywords: Feminine Sensibility, Kamala Markandaya, Toni Morrison, Tradition, Race, Gender, Comparative Literature.

Introduction

This paper investigates how feminine sensibility emerges in their selected novels and highlights both similarities and differences in their literary representation of women's struggles. Tradition and Women's Identity in Kamala Markandaya

Comparative literature provides opportunities to examine how writers from different cultures address similar human concerns. Kamala Markandaya and Toni Morrison are among the most influential women novelists of the twentieth century whose works explore the lives of marginalized women. Despite their different geographical and cultural settings, both writers foreground women's experiences of oppression, identity formation, and resilience.

Kamala Markandaya's novels portray Indian society where women negotiate traditional customs,

economic hardship, and patriarchal expectations. Toni Morrison, on the other hand, explores African American history, slavery, racial discrimination, and their lasting impact on women's lives. Their fiction demonstrates that gender oppression intersects with social institutions such as race, class, and tradition.

In the context of Indian English fiction, Kamala Markandaya portrays the struggles of women against poverty, tradition, and social oppression. On the other hand, Toni Morrison explores the intersection of race, gender, memory, and identity in African American society. Although numerous scholars have examined these writers independently, comparative studies focusing on their representation of feminine sensibility remain limited.

Therefore, the present study seeks to bridge this gap by offering a comparative analysis of feminine sensibility in the selected novels of Kamala Markandaya and Toni Morrison, highlighting similarities and differences in their treatment of women's identity, resilience, and resistance.

Race and Gender:

Toni Morrison presents race as an inseparable element of female identity. In Beloved, Sethe's life illustrates how slavery destroys family relationships, motherhood, and personal identity. The psychological scars of racial oppression continue long after physical freedom has been achieved.

In The Bluest Eye, Pecola Breedlove becomes a victim of racialized beauty standards that privilege whiteness. Morrison demonstrates how racism influences self-perception, especially among Black women. Through powerful narrative techniques, Morrison exposes the emotional consequences of discrimination and social exclusion.

Comparative Analysis:

Both Markandaya and Morrison portray women who confront systems of oppression, yet the nature of these systems differs significantly.Markandaya primarily examines patriarchy within traditional Indian society, where women's struggles arise from social customs, economic hardship, and family obligations. Morrison focuses on racism, slavery, and historical injustice as central forces shaping African America.

Existing scholarship on Kamala Markandaya and Toni Morrison has extensively explored their works from feminist, postcolonial, cultural, and psychological perspectives. Studies on Markandaya predominantly focus on the conflict between tradition and modernity, the status of women in post-independence India, and the socio-cultural constraints imposed by patriarchal society. Likewise, critical research on Toni Morrison largely examines race, slavery, historical trauma, Black identity, and African American feminism, particularly in novels such as Beloved. While these studies have significantly contributed to understanding each author's literary achievements, they generally treat their works within separate cultural and theoretical frameworks.

Although comparative studies involving Markandaya and Morrison have occasionally addressed themes such as gender, identity, and women's resistance, there remains a noticeable lack of research that simultaneously investigates the interconnected roles of tradition, race, and female sensibility. Existing scholarship often isolates these concepts rather than examining how they collectively shape women's emotional consciousness, identity formation, and responses to oppression across different

cultural contexts. Consequently, the relationship between tradition in Indian society and race in African American society as parallel structures influencing female sensibility has not received sufficient comparative attention.

Furthermore, many studies emphasize external social conditions while giving comparatively less attention to women's inner emotional worlds, moral agency, and psychological resilience. Female sensibility is frequently discussed as a secondary aspect of broader feminist or postcolonial concerns instead of being treated as a central analytical category. This leaves an important gap in understanding how women negotiate cultural expectations, historical memory, and patriarchal power while preserving their individuality and dignity.

The present study addresses this gap by undertaking a comparative analysis of Kamala Markandaya and Toni Morrison through the lens of female sensibility. It examines how tradition and race function as distinct yet comparable forces that influence women's identities, emotions, and lived experiences. By bringing together Indian English and African American literary traditions within a feminist and postcolonial comparative framework, this research contributes to the expanding field of comparative literature. It offers a nuanced understanding of the similarities and differences in the representation of women's resilience, selfhood, and agency across diverse socio-cultural contexts.

The objectives of the paper are to undertake a comparative analysis of Kamala Markandaya and Toni Morrison by examining the representation of female sensibility within their distinct cultural and historical contexts. The specific objectives of the study are:

1) To examine the concept of female sensibility as represented in the selected works of Kamala Markandaya and Toni Morrison.
2) To analyze how tradition influences women's identity, emotions, and lived experiences in Kamala Markandaya's fiction.
3) To investigate the impact of race on the lives, identities, and psychological experiences of female characters in Toni Morrison's novels.
4) To explore the ways in which patriarchal structures, cultural norms, and historical circumstances shape female consciousness and agency in the works of both authors.
5) To compare the similarities and differences in the portrayal of women's struggles, resilience, and selfhood in the fiction of Kamala Markandaya and Toni Morrison.
6) To examine the role of female resilience, resistance, and identity formation in negotiating the challenges posed by tradition, race, and gender.
7) To contribute to comparative literary studies by bringing together Indian English and African American literary traditions through the interdisciplinary perspectives of Feminist Literary Theory and Postcolonial Feminism.
8) To demonstrate that, despite their different cultural and historical settings, both writers portray female sensibility as a powerful force of survival, dignity, and self-realization.

Theoretical Framework

The present study is grounded in Feminist Literary Theory, Postcolonial Feminism, and

Intersectionality. These complementary theoretical perspectives provide an effective framework for examining how tradition, race, and gender shape female sensibility in the fiction of Kamala Markandaya and Toni Morrison. By employing these approaches, the study explores the ways in which women's identities are constructed, challenged, and transformed within different socio-cultural and historical contexts.

Feminist Literary Theory

Feminist Literary Theory examines the representation of women in literature and challenges patriarchal ideologies that have historically marginalized female voices. Emerging prominently during the twentieth century through the works of scholars such as Simone de Beauvoir, Kate Millett, Elaine Showalter, Sandra Gilbert, and Susan Gubar, feminist criticism seeks to uncover how literature reflects and reinforces gender inequalities while also highlighting women's agency and resistance.

In Kamala Markandaya's novels, feminist criticism reveals how women negotiate patriarchal traditions, domestic responsibilities, and cultural expectations. Female characters are not portrayed merely as passive victims but as individuals possessing emotional strength, moral integrity, and psychological resilience. In A Silence of Desire, Sarojini's quiet determination and unwavering faith challenge patriarchal authority, illustrating that silence can function as a form of resistance rather than submission.

Similarly, Toni Morrison's fiction foregrounds the experiences of African American women whose identities are shaped by both gender and race. In Beloved, Sethe's struggles reflect the profound emotional and psychological consequences of slavery and motherhood. Morrison's female characters challenge dominant narratives by reclaiming their voices and preserving their dignity despite systemic oppression. Feminist Literary Theory therefore provides a critical lens for understanding the representation of women's experiences, identity, and agency in both authors' works.

Postcolonial Feminism:

While Feminist Literary Theory addresses gender inequality, Postcolonial Feminism emphasizes that women's experiences are also influenced by colonial history, culture, class, ethnicity, and religion. Scholars such as Chandra Talpade Mohanty, Gayatri Chakravorty Spivak, and Kumkum Sangari argue that women's oppression cannot be understood through a universal feminist framework because social and historical conditions differ across cultures.

Kamala Markandaya's fiction reflects the realities of post-independence India, where women negotiate the tensions between traditional cultural values and modern social change. Tradition functions simultaneously as a source of identity and a mechanism of patriarchal control. Through characters such as Sarojini, Markandaya demonstrates how women preserve cultural values while asserting their individuality within restrictive social structures.

In contrast, Toni Morrison's novels emerge from the historical experience of African American communities shaped by slavery, racial discrimination, and cultural displacement. Morrison illustrates how race and gender intersect to produce unique forms of oppression for Black women. Postcolonial Feminism enables a comparative understanding of these different historical realities by recognizing

that women resist domination in culturally specific ways while sharing common struggles for dignity and selfhood Intersectionality.

The concept of Intersectionality, introduced by legal scholar Kimberlé Crenshaw, argues that systems of oppression such as gender, race, class, culture, and ethnicity do not operate independently but interact to shape individuals' lived experiences. This perspective is particularly valuable for comparing the fiction of Kamala Markandaya and Toni Morrison because the women they portray experience multiple and overlapping forms of marginalization. In Markandaya's novels, women's identities are shaped by gender, tradition, family expectations.

1. Tradition and Women's Lives:

Tradition occupies a central place in Markandaya's fiction. In A Silence of Desire, Dandekar's insistence on rationalism conflicts with Sarojini's spiritual beliefs, illustrating the tension between modernity and tradition. Sarojini's devotion to faith is not portrayed as ignorance but as a source of emotional resilience. Markandaya suggests that women often preserve cultural values while simultaneously negotiating personal autonomy. Rather than openly resisting patriarchal structures, Sarojini employs patience, compassion, and quiet determination to maintain her identity.

Similarly, in Nectar in a Sieve, Rukmani accepts many traditional expectations regarding marriage and motherhood. Yet her endurance should not be mistaken for passivity. Throughout the novel, she adapts to poverty, displacement, and social change while preserving her dignity. Markandaya portrays tradition as both protective and restrictive: it offers women a sense of belonging but also confines their opportunities for self-expression.

Morrison also interrogates tradition, though within the context of African American cultural memory. In Beloved, communal traditions and ancestral remembrance become essential for healing historical trauma. Unlike Markandaya's emphasis on domestic customs, Morrison highlights oral storytelling, collective memory, and spiritual rituals as mechanisms through which Black women reclaim identities fractured by slavery. Tradition therefore functions not as an oppressive force alone but also as a means of survival and cultural continuity.

2. Race as a Determinant of Female Experience:

The most significant distinction between the two writers lies in Morrison's sustained engagement with race. Race is not merely a social category but the foundation upon which Black women's identities are constructed. In Beloved, Sethe's traumatic experiences are inseparable from the institution of slavery. Her motherhood, relationships, and psychological state are profoundly shaped by racial violence. Morrison demonstrates that racial oppression extends beyond physical exploitation to include emotional fragmentation and the destruction of family bonds.

Similarly, The Bluest Eye portrays Pecola Breedlove as a victim of internalized racism. The dominant white beauty standards convince her that blue eyes symbolize worth and acceptance. Morrison exposes how systemic racism distorts self-perception, particularly among young Black girls, leading to psychological alienation and social invisibility.

Markandaya's fiction, by contrast, pays greater attention to caste, class, colonial legacies, and gender rather than race. Her women confront poverty, social expectations, and patriarchal authority

within Indian society. Nevertheless, both writers reveal how social hierarchies shape women's opportunities and identities, demonstrating that oppression assumes different forms across cultures.

3. Female Sensibility and Emotional Resilience:

Female sensibility in both authors encompasses emotional intelligence, compassion, endurance, and moral strength. Markandaya portrays women who possess remarkable inner resilience despite external hardships. Sarojini and Rukmani rarely challenge authority through confrontation; instead, they cultivate patience and empathy as strategies of survival. Their emotional strength enables them to sustain families and communities amid adversity.

Morrison's women also exhibit resilience, though it often emerges through confrontation with trauma rather than quiet endurance. Sethe's painful memories, Denver's gradual maturation, and Baby Suggs's spiritual leadership demonstrate that healing requires acknowledging historical suffering rather than suppressing it. Morrison therefore redefines female sensibility as the capacity to survive unimaginable violence while preserving one's humanity.

Both writers reject stereotypes of women as passive victims. Their protagonists possess agency, although it is expressed differently according to cultural circumstances. Markandaya emphasizes silent resistance within traditional frameworks, whereas Morrison foregrounds acts of remembrance, storytelling, and communal solidarity.

4. Motherhood as Resistance:

Motherhood occupies a significant place in the works of both novelists. In Markandaya's fiction, motherhood symbolizes sacrifice, responsibility, and continuity. Rukmani's devotion to her children reflects traditional ideals of maternal care, yet her decisions also reveal remarkable courage. She negotiates famine, displacement, and loss while preserving hope for future generations.

In Morrison's Beloved, motherhood assumes a more complex and controversial dimension. Sethe's decision to kill her daughter rather than allow her to be returned to slavery reflects the unimaginable brutality of racial oppression. Morrison does not romanticize motherhood; instead, she presents it as a site where love, trauma, and survival intersect. Sethe's actions force readers to question conventional moral judgments and recognize the psychological consequences of slavery.

Despite these differences, both authors portrays motherhood as an expression of female agency rather than merely a biological role.

5. Silence, Voice, and Identity:

Silence functions differently in the writings of Markandaya and Morrison. In Markandaya's novels, silence often represents dignity, patience, and emotional maturity. Characters such as Sarojini choose silence not because they lack agency but because they recognize the limitations imposed by patriarchal society. Their silence becomes a subtle form of resistance that preserves personal integrity.

Morrison, however, associates silence with historical suppression. The experiences of enslaved Black women have long been excluded from official histories. Through narrative fragmentation, memory, and multiple voices, Morrison restores those silenced experiences to literary discourse. Her fiction insists that speaking about trauma is essential for individual and collective healing.

Thus, while Markandaya portrays silence as strategic endurance, Morrison emphasizes voice as liberation.

6. Patriarchy and Women's Agency:

Patriarchal authority is a common concern in both authors' works. Markandaya depicts husbands, families, and social institutions that regulate women's behaviour through cultural expectations. Yet her female protagonists gradually negotiate spaces of autonomy without entirely rejecting tradition.

Morrison examines patriarchy alongside racial oppression. Black women experience discrimination not only from white society but also within patriarchal structures of their own communities. Morrison's female characters therefore confront multiple systems of domination simultaneously. Their resistance emerges through mutual support, storytelling, and communal solidarity rather than individual rebellion alone.

Comparative Perspective:

Although Markandaya and Morrison write from distinct cultural contexts, both reveal that women's identities are shaped by intersecting social forces. Tradition influences the lives of Markandaya's women, while race profoundly determines Morrison's female experiences. Nevertheless, both authors celebrate women's resilience, moral courage, and capacity for survival. Their fiction challenges simplistic representations of women by emphasizing emotional complexity, cultural identity, and the enduring struggle for dignity.

Kamala Markandaya and Toni Morrison are among the most influential twentieth-century women novelists whose works foreground women's struggles against systems of oppression. Although they emerge from different cultural and historical contexts—Markandaya from postcolonial India and Morrison from African American history—their fiction reveals striking similarities in its exploration of women's experiences. While Markandaya focuses on the constraints imposed by Indian traditions, patriarchal norms, and economic hardships, Morrison examines the devastating effects of racial discrimination, slavery, and historical trauma on Black women's lives. Together, their novels demonstrate that female sensibility is shaped by the intersections of gender, culture, class, and race.

Morrison's novels similarly foreground women's resilience but situate it within the historical realities of slavery and systemic racism. In *Beloved*, Sethe's psychological trauma illustrates how racial violence disrupts motherhood, family, and identity. In *The Bluest Eye*, Pecola Breedlove's desire for blue eyes exposes the destructive effects of internalized racism and dominant standards of beauty. Morrison demonstrates that race is inseparable from gender, making Black women's experiences distinct from those of white women and demanding an intersectional understanding of oppression. Through memory, storytelling, and communal healing, Morrison restores voices that have been marginalized within dominant historical narratives.

The comparison also reveals important differences in the cultural foundations of women's struggles. Markandaya primarily examines the effects of tradition, poverty, family obligations, and postcolonial social change within Indian society. Morrison, by contrast, centre's race, slavery, and historical memory as defining influences on Black female identity. These differing contexts shape the forms of resistance adopted by their characters. Markandaya's women often negotiate change

from within established cultural traditions, whereas Morrison's women reclaim agency by confronting historical trauma, recovering suppressed memories, and affirming collective identity.

Ultimately, this comparative reading underscores the continuing relevance of both writers in contemporary feminist and literary studies. Their works remain powerful critiques of patriarchal oppression, racial discrimination, and social inequality while simultaneously celebrating women's resilience, ethical strength, and enduring hope. By bringing Kamala Markandaya and Toni Morrison into dialogue, this study demonstrates that literature serves as an important space for exploring the complexities of identity, culture, and resistance across national and historical boundaries

Conclusion:

This study has examined the representation of tradition, race, and female sensibility through a comparative reading of the selected works of Kamala Markandaya and Toni Morrison. Although the two novelists write from distinct cultural, historical, and geographical contexts, their fiction converges in its exploration of women's struggles against deeply rooted systems of oppression. Markandaya's narratives illuminate the challenges faced by Indian women within patriarchal traditions and postcolonial social structures, while Morrison's novels expose the enduring psychological and social consequences of slavery, racism, and gender discrimination experienced by African American women. Together, their works reveal that female identity is shaped by the intersection of multiple social, cultural, and historical forces.

The comparative analysis demonstrates that female sensibility is not merely an expression of emotion but a powerful mode of resilience, ethical consciousness, and resistance. Through characters such as Rukmani and Sarojini, Markandaya portrays women who preserve dignity and humanity through patience, compassion, and quiet endurance. Morrison's protagonists, including Sethe and Pecola Breedlove, embody the struggle to reclaim identity in the aftermath of racial violence and historical trauma. Despite differences in their circumstances, both writers emphasize women's capacity to survive, adapt, and challenge oppressive structures.

This comparative approach contributes to literary scholarship by bringing together two significant women writers whose works are rarely examined in dialogue. It illustrates that, despite cultural differences, both authors advocate for women's agency and challenge dominant narratives that marginalize female voices. Their novels affirm that resistance can take diverse forms—through silence, memory, storytelling, endurance, or collective solidarity—but all seek to restore women's dignity and humanity.

The findings of this study also have broader implications for contemporary feminist and comparative literary studies. In an increasingly interconnected world, understanding the diverse experiences of women across cultures enriches critical discussions of gender, identity, and social justice. Markandaya and Morrison remind readers that literature not only reflects social realities but also questions oppressive ideologies and imagines possibilities for transformation.

In conclusion, Kamala Markandaya and Toni Morrison remain indispensable voices in feminist and comparative literary studies. Their fiction transcends cultural and national boundaries to present a profound exploration of women's resilience, identity, and humanity. By foregrounding tradition, race, and female sensibility, both writers demonstrate that women's voices possess the power not

only to bear witness to oppression but also to challenge injustice, preserve cultural memory, and inspire hope for a more equitable future.

Works Cited:

- Collins, Patricia Hill. Black Feminist Thought: Knowledge, Consciousness, and the Politics of Empowerment. 2nd ed., Routledge, 2009.
- Crenshaw, Kimberlee. "Mapping the Margins: Intersectionality, Identity Politics, and Violence against Women of Colour." Stanford Law Review, vol. 43, no. 6, 1991, pp. 1241–1299.
- hooks, bell. Isn't I a Woman: Black Women and Feminism. South End Press, 1981.
- Markandaya, Kamala. A Silence of Desire. Putnam, 1960.
- —. Nectar in a Sieve. Signet Classics, 2009.
- Morrison, Toni. Beloved. Vintage International, 2004.
- —. The Bluest Eye. Vintage International, 2007.
- Mohanty, Chandra Talpade. Feminism without Borders: Decolonizing Theory, Practicing Solidarity. Duke UP, 2003.
- Showalter, Elaine. A Literature of Their Own: British Women Novelists from Brontë to Lessing. Princeton UP, 1977.
- Spivak, Gayatri Chakravorty. "Can the Subaltern Speak?" Marxism and the Interpretation of Culture, edited by Cary Nelson and Lawrence Grossberg, U of Illinois P, 1988, pp. 271–313.
- Tyson, Lois. Critical Theory Today: A User-Friendly Guide. 4th ed., Routledge, 2023.
- Beauvoir, Simone de. The Second Sex. Translated by Constance Borde and Sheila Malovany-Chevallier, Vintage Books, 2011.
- Bressler, Charles E. Literary Criticism: An Introduction to Theory and Practice. 6th ed., Pearson, 2011.
- Abrams, M. H., and Geoffrey Galt Harpham. A Glossary of Literary Terms. 11th ed., Cengage Learning, 2015.
- Barry, Peter. Beginning Theory: An Introduction to Literary and Cultural Theory. 4th ed., Manchester UP, 2017.

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

सोनभद्र के आदिवासी समाज का संघर्ष और अस्मिता

रीखा पटेल
शोध छात्रा
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सोनभद्र उत्तर प्रदेश के दक्षिण में स्थित है यह भारत का एकमात्र ऐसा जिला है जिसकी सीमा चार राज्यों को स्पर्श करती हैं - बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ ।जिले का क्षेत्रफल 6788 वर्ग किमी है। खनिज संसाधनों की दृष्टि से यह उत्तर प्रदेश का प्रमुख जिला है। सोनभद्र को ऊर्जा की राजधानी कहा जाता है क्योंकि यहां बिजली के संयंत्र तथा रिहंद जैसा बांध है। जिससे बिजली का उत्पादन होता है। सोनभद्र में भले ही खनिज संसाधन, जमीन, औद्योगिक संसाधन पर्याप्त हैं लेकिनइन संसाधनों पर आदिवासी समाज की भागीदारी न्यूनतम है। आदिवासी समाज अपनी जीविका का निर्वाह मजदूरी, वनों से प्राप्त संसाधन तथा भूमि पर खेती के माध्यम से पूर्ति करता है।

"आदिवासी का जीवन जंगल से अलग नहीं जंगल के भीतर ही सांस लेना है।'' भूमि पर आदिवासी समाज का अधिकार न्यूनतम है जिसके कारण आदिवासी समाज का अधिकांश भाग मजदूरी के माध्यम से अपनी जीविका का निर्वाह करता है। मानव के मूलभूत आवश्यकताओं रोटी कपड़ा और मकान है इनको प्राप्त करने के लिए मानव निरंतर प्रयत्नशील रहता है लेकिन संसाधनों की कमी इस पर्यटन में प्रतिरोध पैदा करता है। आदिवासी समाज प्राकृतिक संसाधनों के पास रहकर भी इन समाजों का प्रयोग अपने विकास के लिए नहीं कर पाता है क्योंकि इन संसाधनों पर कब्जा किसी दूसरे का रहता है। सोनभद्र के आदिवासी समाज का संघर्ष औरअस्मिता जल, जंगल, जमीन और अपनी संस्कृति भाषा विस्थापन से जुड़ा है। "घर उजाड़ना केवल छत का छीनना नहीं पूरी पहचान का टूटना है।" जब आदिवासी अस्मिता की बात की जाएगी तो अस्मिता से जुड़ी सभी तत्वों की पहचान करनी होगी। सोनभद्र के आदिवासी अस्मिता का तात्पर्य सिर्फ उनकी पहचान नहीं, बल्कि उनके जीवन शैली संस्कृति, भाषा, शिक्षा और प्राकृतिक संसाधनों से उनका जुड़ाव है। हरिराम मीणा अपनी पुस्तक "आदिवासी दुनिया" में लिखते हैं "कि आदिवासी अस्मिता में उनकी समग्र संस्कृति को केंद्र में रखना होगा जिसमें भाषा, धर्म, मिथक, प्रथाएं, जीवन शैली, खानपान, वेशभूषा, गढ़ चिन्ह, सौंदर्यबोध, निषेध, आवास, परंपरागत ज्ञान, मानवेतर प्राणी जगत और प्रकृति तत्वों संबंध स्वायत्तता, जीवन यापन, पर्वोत्सव, किंवदंतियां, मुहावरे, गल्प, गीत- संगीत, स्त्री पुरुष संबंध परिवार समाज व बस्तियों की दशा आदि से संबंधित सभी बातें समाहित होंगी।" सोनभद्र में प्रमुख आदिवासी समाज में गोंड, खरवार, चेरा, बैगा, पन्निका इत्यादि सम्मिलित है।

जिनकी अपनी समृद्ध संस्कृति है। यह जनजातियाँ वनों के संसाधन पर निर्भर हैं तथा जीवन शैली पारंपरिक है।भूमि पर अधिकारों और विकास के मोर्चे पर चुनौतियों का सामना कर रही हैं। भूमि पर अधिकार के संघर्ष का सबसे बड़ा उदाहरण उंभा की घटना है। ठाकुर प्रसाद सिंह का उपन्यास सात घरों का गांव सोनभद्र क्षेत्र के आदिवासियों की जीवन शोषण और संघर्ष की सशक्त कथा है।यह उपन्यास सोनभद्र की दुद्धि तहसील के बाघमारा गांव से प्रारंभ होता है। उपन्यास अपने कथ्य शिल्प लोकाचार एवं परिवेश की जीवन्तता के कारण सोनभद्र के आदिवासी समाज का सही अर्थों में प्रतिनिधित्व करता है।

यह उपन्यास आदिवासियों के विस्थापन की त्रासदी के साथ-साथ उनके जीवट और सामूहिक चेतना की कथा बन जाता है। ''वे लडें नहीं हथियारों से, बल्कि अपनी सामूहिकता और चुप साहस से।" सोनभद्र के आदिवासी तलवार से तो नहीं लड़ते थे पर हार मानना भी नहीं जानते थे। "सामूहिकता ही उनकी सबसे बड़ी ताकत थी।" श्सात घरों का गांवश उपन्यास में मोड़ तब आता हैजब बाहरी दुनिया का प्रवेश गांव में होता है जमीदार ठेकेदार विकास और कानून के नाम पर आदिवासियों की जमीन और जंगल पर अधिकार जमाने लगते हैं। "जंगल आदिवासियों के लिए केवल पेड़ नहीं , उनका जीवन, स्मृति और भविष्य है।'' खनन जंगल कानून और जबरन विस्थापन से आदिवासियों का जीवन असुरक्षित हो जाता है। आदिवासी हृदय से बहुत ही सरल और भोले होते हैं फिर भी जब उनके साथ बार-बार अन्याय होने लगता है तो वह धीरे-धीरे अन्याय को समझने लगते हैं और एकजुट होकर अपनी अस्मिता के रक्षा के लिए संघर्ष प्रारंभ कर देते हैं। विकास के नाम पर आदिवासियों को उजाड़ने का काम किया जा रहा था। 'असुविधा' पत्रिका के संपादक रामनाथ 'शिवेंद्र' जी के उपन्यास पट्टा चरित में समकालीन समय के मजदूरों की त्रासद स्थिति का वर्णन हमें देखने को मिलता है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक नेयह बताने का प्रयास किया है कि आदिवासी समाज को जो संघर्ष पहले करना पड़ता था आज उसमें कुछ परिवर्तन आया हैपहले मजदूर का जातिगत सामाजिक शोषण था, किंतु अब वह जमाना नहीं है। पहले तो रोपनी सोहनी के सभी कार्य मजदूरों से बलात् करा लिए जाते थे किंतु आज ऐसा नहीं है इसमें बदलाव आया है। 'पट्टा चरित' उपन्यास में ठेकुआ जमींदार रामभरोस से हास्य अंदाज में कहता है - "अब पहले वाला जमाना नहीं है कि मजदूरों को हका दिया और काम शुरू चाहे जोतनी हो लवनी या कुछ भी।" लेखक ने रामभरोस जैसे चरित्र के माध्यम से गांव के मुखिया का अंकन किया है, जो कामगारों के शोषण, दबंगई और निर्ममता के लिए समूचे गांव भर में मशहूर हैं। फेकुआ और रामभरोस का संवाद देखने योग्य है - "सरकार! आपकी जोतनी नहीं हो रही है का?

नाही रे! आज काम बंद है, साले एक भी काम पर नहीं आए।

बस बउराय गये हैं।

गाड़ मोटा गई है सालों की। सालो को इनिरा ने पट्टा का दिला दिया कि सभी का दिमाग सिकहरे चढि गया है। जब देखो साले काम बंद कर देते हैं।"

उपर्युक्त उदाहरण में रामभरोस की छदम जीविता के साथ किसानों के प्रति उनकी निम्न-दृष्टि दिखती है। डॉ. शिव प्रसाद सिंह की क्लासिकल उपन्यास 'नीला चांद' के मध्य भाग में कथा सोनभद्र के जंगल पहाड़ों की ओर बढ़ती है और लेखक गोंड आदिवासियों के जीवन से हमारा साक्षात्कार कराते हैं। यहां की गोंड समुदाय प्रकृति के सहारे सरल, सामूहिक और आत्मसम्मान पूर्ण जीवन जीते हैं। गौड आदिवासी खुला विद्रोह नहीं करते लेकिन उनके भीतर मौन प्रतिरोध और अस्मिता बोध स्पष्ट दिखाई देता है। गौंड आदिवासी जंगल, नदी और पहाड़ को केवल संसाधन नहीं बल्कि जीवन का आधार मानते हैं। प्रकृति उनके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग है। ''वे विद्रोह नहीं करते पर अपनी पहचान भी मिटने नहीं देते'' इस प्रकार हम देखते हैं कि गोंड आदिवासी अपनी अस्मिता के लिए संघर्षशील दिखाई देते हैं। हिंदी साहित्य में सोनभद्र के आदिवासी समाज की उपस्थिति रचनात्मकता की अनेक मार्गों का अन्वेषण करती है। दंडकारण्य के उत्तरी सीमा पर अवस्थित बाणभट्ट की विंध्याटवी के आंगन में बसे सोनभद्र के आदिवासियों की जीवन शैली और भाषा हिंदी की अनेक कालजयी रचनाकारों को अपनी ओर आकृष्ट करती है।

आदिवासियों का निश्चल जीवन अभाव और दुख के मध्य भी अनेकविध प्रेरणास्पद है। डॉ. जितेंद्र कुमार सिंह 'संजय' की अनेक कविताएं सोनभद्र के आदिवासी समाज की परंपराओं एवं मान्यताओं को जीवंतता के साथ व्यक्त करती हैं। निश्चय ही सोनभद्र जनपद के आदिवासी समाज की मान्यताएं और परंपराएं अभिजात वर्ग से पृथक हैं।

सन्दर्भ

1. डॉ. जितेंद्र कुमार सिंह 'संजय', सोनभद्र का इतिहास, प्रभाश्री विश्वभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, उ० प्र० 2015 2. डॉ. जितेंद्र कुमार सिंह 'संजय' - सोनभद्र का समाज, प्रभाश्री विश्वभारती प्रकाशन, इलाहाबाद उ० प्र० 2015
3. हरिराम मीणा- आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत दूसरा संस्करण 2016 ई०
4. ठाकुर प्रसाद सिंह - सात घरों का गांव, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद उ० प्र० 1985 ई०
5. रामनाथ शिवेंद्र- पट्टाचरित, मनीष पब्लिकेशंस, दिल्ली, संस्करण 2020 ई०
6. डॉ. शिवप्रसाद सिंह - नीला चाँद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1990 ई०

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री समस्या

कु. सविता कुमारी
शोधार्थी, विभाग - हिंदी
कॉलेज - लाल बहादुर शास्त्री स्नातकोत्तर महाविद्यालय मुगलसराय चंदौली
संबंध यूनिवर्सिटी- महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी

मुख्य शब्द- स्त्री, समस्या, साहित्य, समाज, कृष्णा सोबती, शोषण।

शोध सारांश

संसार में प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व अलग -अलग रूप में देखने को मिलता है। लेखक अपनी रचनाओं में अपना पूरा जीवन नहीं लिखता और अपने जीवन को छोड़कर कुछ लिख पाना उसके लिए कठिन होता है। जैसे ही मन की तलब सच्चाई को शब्दों में बदलने वाली और बेजुबान भावनाओं को जुबान देने का प्रयास करने वाले साठोत्तरी हिंदी लेखिकाओं में कृष्णा सोबती का व्यक्तित्व बहुआयामी है।

आज तक नारी के विषय में जितनी भी पारंपरिक धारणाएं बनी हुई है कोई कहता है नई अमूर्त है, कोई कहता नारी परस्पर विरोधी और एकांकी की प्रतीक होती है तो कोई कहता है नारी तुम केवल श्रद्धा हो, तो दूसरा उसे पतन के गर्त में बताता है तो कोई उसे आंचल में दूध और आंखों में पानी भरा अबला के रूप में देखा है तो कोई उसे महाशक्ति कहकर उसकी उपासना करता है।

नारी के सभी रूपों और गुना के विषय में प्रसाद जी ने लिखा है, वह अमर है, अटल है तथा 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पगतल में, पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में'।[1] मानव जीवन का सार सौंदर्य इसी नारी नाम में समाया हुआ है। नारी के संदर्भ में मनु का कहना है 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमंते तत्र देवता'।[2]

अर्थात जहां नारी की पूजा होती है वहां देवताओं का वास होता है अन्यथा घर भूत का डेरा होता है। ऋग्वेद में स्त्री ही घर है, ऐसा कहा जाता है। ऐतरेय ब्राह्मण में नारी की महिमा को पुरुष के समक्ष में रखा है। धार्मिक ग्रंथों में स्त्री को सृष्टि का संपूर्ण रिक्तता की पूर्ति स्त्री से ही मानी जाती है। कोई भी धार्मिक कार्य नारी के बिना अधूरा माना जाता है।

हिंदी साहित्य में महिला कथाकारों में कृष्णा सोबती अपनी एक अलग ही व्यक्तित्व को लेकर ख्याति प्राप्त हैं। कृष्णा सोबती का व्यक्तित्व बहुआयामी है, व्यक्तित्व में दूरदर्शिता है। यह एक ऐसा पहलू है जो न केवल व्यक्ति के अद्भुत साहस, आत्मबल और दृढ़ता का संचार करता है। वरन् मानवीय मूल्यों के प्रति गहन आस्था पैदा कर उसकी लड़ाई के उर्ध्व न ही सही बल्कि स्वस्थ दिशा अवश्य देता है।

स्त्री व पुरुष समाज के दो मूलभूत मुख्य इकाई है जिनसे मिलकर समूह, परिवार, समाज एवं राष्ट्र बनता है वर्तमान युग में मानव जीवन के समस्त क्रियाकलाप व्यक्ति के जीवन स्तर को बेहतर बनाने के लिए प्रयासरत है, परंतु इस बेहतर

की पारी में सर्वप्रथम स्त्री - पुरुष भेदभाव की खाई को पाटना परम आवश्यक है। समाज में स्त्री द्वारा पाल रहे दोहरी मानदंड व समाज द्वारा उसे स्वतंत्र जीवन जीने तथा प्रगति के मार्ग में अपना संपूर्ण योगदान देने में कहीं ना कहीं उसके मार्ग को संक्रीयताओं से अवरुद्ध कर रहे हैं। तमाम जंजीरों में जकड़ी स्त्री की उड़ान की सीमा मर्यादित है, ऐसा स्त्री को बताया जाता है। 'साहित्य मनुष्य के सुरम्य में चिंतनों और संचित अनुभवों की हृदय स्पर्शी भाषाई, अभिव्यक्ति कहा जा सकता भी है। वह विगत युगों के मानवीय संघर्षो को जानने का तथा मानव संस्कृति और सभ्यता को उसके सही आंचल में पहचान संस्कृति और सभ्यता को साधन भी है।[3] स्त्री के इन्हीं द्वंद्वों को लेकर क्रमशः उनकी समस्याओं में समय के साथ आए परिवर्तनों व परिस्थितियों की जकड़ में आबद्ध स्त्रियों की विभिन्न समस्याओं का विमर्श के विविध रूप हमें कृष्णा सोबती जी के कथा साहित्य में मिलता है इस संदर्भ में मृदुला गर्ग महिला लेखन 'साक्षात्कार' में लिखती हैं - 'साहित्य में स्त्री की जो छवि अंकित होती है, चाहे वह पुरुष पर पड़ता है चाहे वह पुरुष करें अथवा स्त्री, उसका प्रभाव समाज में स्वीकृत छवि पर गढ़ता है, तो उसका प्रभाव पुरुष के विखंडन से पृथक और अधिक प्रबल रूप में पड़ता है।'[4] यहां पर कृष्णा सोबती जी के कथा साहित्य में स्त्री के भिन्न- भिन्न समस्या को भिन्न भिन्न रूप में देखेंगे।

स्त्री के वैयक्तिक समस्या यह शारीरिक, मानसिक या दोनों प्रकार की हो सकती है, इसमें व्यक्ति के दिलों -दिमाग में लगातार द्वंदात्मक स्थिति बनी रहती है, स्त्री के व्यक्तिगत समस्याएं कभी कभी इतनी गूढ़ होती हैं कि व्यक्ति किसी से अपने मन में चल रही भावनाओं की अभिव्यक्ति भी नहीं कर पाती है। उपन्यास श्डार से बिछुड़ी में श बचपन से ही अपनी मां की करनी का फल भुगतती आयी पाशो नानी, मामू हुआ मामियों की नजर का कांटा बन जाती है। उसे अपने रूखे जीवन में प्यार की बूंद भी नहीं मिल पाती। घर का सारा काम करने के बावजूद उसे व्यर्थ की झिड़कियां व तानें सुनाए जाते हैं। उसकी छोटी-छोटी बातों का पहाड़ बना उस पर तमाम अत्याचार के जाते हैं, कोई ऐसा नहीं जिसे पाशाओ अपना कह सके, खुलकर किसी के कंधे पर सर रखकर रो सके अपना दर्द बता सके। 'शोषण का क्षेत्र क्या सिर्फ एक राजनीति तक ही सिमट है, नहीं, घर परिवार में समझ में, मानवीय संबंधों में शोषण अनेक विध, अनेक रूप होकर हर जगह विद्यमान है, फिर इसके मुक्ति पाने की चेष्टा क्यों नहीं है?'[5]

उसी शोषण की अति का सवाल व जवाब दोनों दोनों 'दिलों -दानिश' की महक बानो ही है। महक अच्छी तरह जानती है कि वह कातिल डरेदांन नचनिया नसीम बानो की बेटी है, और घर गृहस्ती की दीवारों से दूर। मानवीय संबंधों की फर्ज अदायगी कर रहे कृपा नारायण ने महक को रखैल ही बना रखा। वह उसे दिल्लगी भी करते रहे और समाज में अपनी नाक की सीधी भी बने रहे। 'ऐ लड़की' की अम्मू ने भी अपने अस्तित्व के प्रति छटपटाहट थी उसी का अंश अपनी बेटी में विस्तृत रूप ले लेता है अम्मू का सच समस्त नारी जीवन का सच है अपने जीवन में बहुत कुछ कर गुजरने की क्षमता रखने वाली मात्र घड़ी बनकर रह जाती है। सूरजमुखी अंधेरे में के बलात्कार की पीड़ित स्त्री बचपन में हुए इस घटना को भुला देना चाहती है, परंतु उसके स्कूल की साथी उसके साथ हुई घटना को बार-बार छेड़ती रहती है। 'डार से बिछड़े में' रचना में पाशो की मां खत्री होकर शेख जाति के पुरुष से विवाह किया, जिस कारण इस घर के रास्ते उसके लिए हमेशा के लिए बंद हो गए। संयुक्त परिवार में ढली 'मित्रों मरजानी' उपन्यास में गुरदास और धनवंती घर के प्रमुख हैं। परंतु आए दिन घर में चलने वाले बखेड़ों से परेशान है। 'जिंदगीनामा' में देवरानी -जेठानी के झगड़े होते रहते हैं तो कहीं सास - बहू के तो कहीं रिश्ते नातो में। 'तीन पहाड़' लंबी कहानी का श्री अपनी मां को दिया वचन निभाने में असफल रहा। बेटे द्वारा वचन हारने तथा किसी और को को बहू बना लेने पर मां स्वयं ही जय के समक्ष अपमानित महसूस करती है। आधुनिकता बोध की शैली में लिखें नवीनतम उपन्यास 'समय सरगम' में परिस्थितिया और भी विकट हो चुकी है। बच्चे अपने बूढ़े मां-बाप को बिल्कुल सहन नहीं करते उन्हें सिर्फ उनकी दौलत की विरासत से मतलब है। 'दादी अम्मा' कहानी की दादी अम्मा को अपनी वृद्धावस्था में सबसे ज्यादा शिकायत अपनी बहू मेहरा से है, जिसके हाथ में आज इस द्वारा आज पूरे घर का राजकाज दे देने के बाद वह आज अपनी ही सास को बिसराए बैठी है। 'मित्रों मरजानी' के संदर्भ में डॉक्टर भगवान दास वर्मा लिखते हैं 'कृष्णा सोबती की मित्रों एक ऐसी नारी है जो पारंपरिक नैतिकता बोध के सारे विश्वासों से मुक्त हैं, केवल हाड़ मांस की बनी हुई उन्मुक्त नारी। मित्रों के

रूप में एक ऐसी नारी की प्राकृतिक वासना सारे अहम और सुप्रअह्म के गिलाए को फाड़कर बारे आ रही है फिर भी मित्रों वासना की सरिता नहीं है उसमें सुसंस्कृत नारी जैसा स्नेह ममता आदि मानवीय गुण है। लगता है कि प्रत्येक नारी के हृदय में कहीं दूर मित्रों बैठी हुई है।'[6] कृष्णा जी की अधिकांश पात्र पारिवारिक घेराबंदी के भीतर ही हुआ है। उन्होंने अपने लेखन के जरिए परिवार सुरक्षा की सबसे दृढ़ इकाई माने जाने वाले प्राथमिक संस्था का सच उजागर किया है। बाहर से एकजुट दिखने वाली इस व्यवस्था के भीतर हर स्त्री का अपना सच उजागर किया है, जिसके कारण वह शारीरिक यातना व मानसिक द्वंद्वों का शिकार बनती है।

वहीं सामाजिक समस्या को देखते हैं तो समाज में एक नीति - मर्यादा बनाई जाती है। जिसका पालन उसे समाज के सभी लोग करते हैं। भारतीय समाज में विधवा स्त्रियों को हमेशा तिरस्कृत व अपेक्षित नजरों से देखा गया है। उनके पहनने, ओढ़ने, खाने-पीने ,बोलने व्यवहार में उनके लिए भारतीय समाज में सामान्य स्त्रियों से अलग ही जीवन शैली निर्धारित की गई है। अन्य स्त्रियों उन्हें बेचारेगी व पुरुष लाचारगी की नजर से देखते हैं।

'डार से बिछुड़ी में' पाशो का विवाह अपने से कई अधिक उम्र के दीवान जी से हुआ था जब तक दीवान जीवित था तब तक घर की रानी थी, परंतु दीवान जी की मृत्यु के बाद उसके दूर के रिश्तेदार बरकत दीवान उसके घर पर कब्जा कर लेते हैं। 'जिंदगीनामा' उपन्यास में विधवा चाची महरी का गणपत शाह के साथ विवाह में मचा हड़कंप सारे गांव में इसकी बेजती होती है। विधवा को पुनर्विवाह की कानूनन मान्यता प्राप्त हो चुकी थी, परंतु फिर भी समाज की संकीर्णताओं के चलते समाज में यहां मान्य नहीं था।

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री पात्र आर्थिक समस्या से भी गुजरती है। रोटी, कपड़ा, और मकान के ऐवज में जिंदगी भर गुलामी करने को मजबूर रहती है। जिंदगी भर गुलामी करने के बावजूद भी पति की मृत्यु के बाद समाज उन्हें पंगु बना देती है, दाने-दाने को मोहताज कर उसका जीवन नर्क बना देती है। 'डार से बिछुड़ी' की पाशओ आर्थिक रूप से सबल न होने के कारण जीवन भर पुरुषों की गुलामी ही करती रह जाती है, उसे इसके अलावा कोई राह भी नहीं दिखाई पड़ता है। भाग्य उसे जिस घर ले जाता है उसे घर के दासी बन वह अपना निर्वाह करती है, अत्याचार सहती है क्योंकि उसे वक्त समाज में स्त्रियों को शिक्षा नहीं दी जाती थी, शिक्षा के अभाव में संकुचित विचारों वाले समाज में स्त्रियों के पैरों में बेड़ियां डाल रखी थी।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कृष्ण जी की कथा साहित्य में नारी जीवन से संबंधित विविध समस्याएं हैं। और कृष्णा जी के कथा साहित्य में नारी केंद्र बिंदु है, जिसमें नारी अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक समस्याओं से जूझती रहती है, सबसे लड़ती रहती है अपने अस्तित्व को बचाने का प्रयास करती रहती है अंततः वह हार कर दासता की जिंदगी जीने के मजबूर हो जाती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. कामायनी - लज्जा सर्ग, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ संख्या 84
2. हिंदी काव्य में नारी, डॉक्टर वल्लभ तिवारी, पृष्ठ संख्या 46
3. कृष्णा सोबती व्यक्ति एवं साहित्य, डॉक्टर ब्रिजिट पाल, पृष्ठ संख्या 89
4. महिला लेखन साक्षात्कार, मृदुला गर्ग
5. एक नजर कृष्णा सोबती, पृष्ठ संख्या 63
6. आधुनिकता के रचना संदर्भ ग्रंथ, डॉक्टर भगवान दास वर्मा, पृष्ठ संख्या 96

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

नारी प्रतिरोधी स्वर में 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास

Lija G S
Part time Research Scholar
N S S Hindu college, Changanasseri
Mob. : 98954 61955
email : lijasyam04@gmail.com

शोध सार

महुआ माजी का उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' अपने नए विषय एवं लेखकीय सरोकारों के चलते इधर के उपन्यासों में एक उल्लेखनीय पहलक़दमी है। जब हिन्दी की मुख्यधारा के लेखक हाशिए के समाज को लेकर लगभग उदासीन हों, तब आदिवासियों की दशा, दुर्दशा और जीवन संघर्ष पर केन्द्रित यह उपन्यास एक बड़ी रिक्ति की भरपाई है। इस उपन्यास में महुआ माजी यूरेनियम की तलाश से जुड़ी जिस सम्पूर्ण प्रक्रिया को उजागर करती हैं, वह हिन्दी उपन्यास का जोखिम के इलाक़े में प्रवेश है। महुआ माजी ने गहरे शोध, सर्वेक्षण और समाजशास्त्रीय दृष्टि का सहारा लेकर इस उपन्यास के माध्यम से एक ज़रूरी हस्तक्षेप किया है।

बीज शब्द : जादूगोड़ा, यूरेनियम खनन, रेडियोधर्मी विकिरण, विस्थापन और पलायन, आदिवासी अस्मिता और संस्कृति, विकास का छलावा।

मूल आलेख

उपन्यास "मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ" में नारी प्रतिरोध का चित्रण मुख्य रूप से आदिवासी महिलाओं के जीवन, संघर्ष और प्रतिरोध के संदर्भ में किया गया है। उपन्यास में, आदिवासी महिलाओं को न केवल प्रकृति और अपनी संस्कृति के साथ गहरे संबंध में दिखाया गया है, बल्कि उन्हें अन्याय और उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाते हुए भी चित्रित किया गया है।

आदिवासी साहित्य उन वन-जंगलों में रहने वाले वंचितों का साहित्य है जिनके प्रश्नों का अतीत में कभी उत्तर ही नहीं दिया गया। यह ऐसे दुर्लक्षितों का साहित्य है जिनके आक्रोश की ओर यहाँ की समाज व्यवस्था ने कभी कान ही नहीं दिए। उनकी समस्याओं की उपेक्षा और उन्हें सभ्य समाज से अलग समझा जाने के कारण आज उनका अस्तित्व खतरे में नज़र आ रहा है। पानी के बिना मछली का अस्तित्व नहीं उसी प्रकार जंगल के बिना आदिम मानव का अस्तित्व भी न के बराबर हैं।

'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में मूल समस्या विकिरण, प्रदूषण और विस्थापन की है। यह समस्या उत्पन्न होने का कारण यदि देखें तो वह है देश का विकास। विकास के क्रम में केवल सभ्य समाज विकसित होता है परन्तु आदिवासियों की स्थिति दयनीय होती जाती है। यूरेनियम एवं लौह खदानों से उत्पन्न हो रहे समस्याओं से जूझते आदिवासियों का चित्रण इस उपन्यास में मिलता है। 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास दर्द का महाकाव्य है। उपन्यास में विकास के दर्द को बेहद

नाजुक तरीके से अभिव्यक्त किया गया है। इसमें लेखिका एक्टिविस्ट बनकर यूरेनियम खदानों के आसपास जाती है और सारंडा के जंगल में विचरण करती है।

"विकिरण की समस्या को लेकर लिखा गया हिंदी का यह पहला उपन्यास है। इस उपन्यास में महुआ माजी ने रेडियेशन के खतरनाक नतीजों पर बहुत ही बेबाकी से अपने विचारों का चित्रण किया है। झारखण्ड के इसी सच को आधार बनाकर उन्होंने मानवीय सरोकारों का एक शोक पत्र तैयार किया है, जिसका नाम है 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ'।"[1]

उपन्यास का आरम्भ करने से पहले उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता पर विचार करना महत्त्वपूर्ण है। 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' शीर्षक में नीलकंठ शब्द का संबंध नीलकंठ वाले शिव जी से जोड़ा जा सकता है। समुद्र मंथन के समय निकले विष को पृथ्वी के कल्याण के लिए शिव जी ने सेवन किया था जिसके कारण उनका कंठ नीला हो गया और उन्हें नीलकंठ कहा जाने लगा। मरंग गोड़ा ने भी देश के विकास के लिए खदानों से निकालने वाले विकिरण और प्रदुषण को अपने में समाहित कर लिया जिस कारण मरंग गोड़ा नीलकंठ हो गया है। उपन्यास का आरम्भ जाम्बिरा से होता है। जाम्बिरा की पीढ़ी जंगल और प्रकृति के साथ अपना जीवन व्यतीत करते आये थे परन्तु बाहरी लोगों के आगमन और खोजों के बाद उनका जीवन पूर्ण रूप से बदल गया। उनके भोलेपन के कारण वह निकट आती संकट को भांप न सके और उस भयावह संकट का अनजाने में ही शिकार होते रहे। परिवर्तन और विकास के नाम पर आदिवासियों को अपना बहुत कुछ खोना पड़ गया। पत्थरों की डाक्टरी जिसे आदिवासी बाहरी लोगों की बुद्धि का कमाल मान रहे हैं कि किस प्रकार पत्थरों को खोजकर परख कर उसमें से उपयोगी पदार्थ को जान लेते हैं। वे नहीं जानते कि उनके जिस कौसल को वह अपार बुद्धिमता मान रहे हैं और अपनी अगली पीढ़ी को उसी राह पर चलता देखना चाहते हैं, वह कितना खतरनाक है। उन्हें बहुत देर से इस खतरे का पता चलता है जब विकिरण और प्रदूषण से अत्यधिक आदिवासी प्रभावित हो चुके थे। मरंग गोड़ा में लौह खदान से यूरेनियम खदान तक शामिल हैं और स्वाभाविक ही इसके कारण विकिरण और प्रदूषण की समस्या बढ़ती चली गयी।

यूरेनियम और उसका कचरा जीवन में लगातार जहर घोलता जा रहा है। इसका अहसास उन्हें बहुत देर से होता है। इन खतरों से उन्हें सावधान नहीं किया गया तो इसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं। असल में यह केवल मरंग गोड़ा के आदिवासियों की ही समस्याएं नहीं हैं अपितु उन सभी आदिवासियों की समस्या है जिसे सभ्य समाज केवल अपने विकास के लिए इनका और इनके क्षेत्रों का प्रयोग करते हैं। इन आदिवासियों की उपेक्षा की गयी है और इसी कारण उन्होंने एक ऐसा आन्दोलन शुरू किया है जिससे समाज को देखने का नजरिया बदल गया है। यह विरोध केवल यहीं तक सीमित नहीं रही बल्कि इसका विस्तार विदेशों तक हुआ और इसके कारण आदिवासी समाज अपनी समस्याओं का विरोध करने में सक्षम हो सके हैं।

"उपन्यास का केन्द्रीय पात्र सगेन प्रतिरोध की स्थानिकता को बरकरार रखते हुए विकिरणविरोधी वैश्विक आन्दोलन के साथ भी संवाद बनाता है। हिरोशिमा की दहशत और चेरनोबिल व फुकुशिमा सरीखे हादसे उसकी चेतना को लगातार प्रतिरोधी दिशा देते हैं। अच्छा यह भी है कि यह सबकुछ मानवीय सम्बन्धों की ऊष्मा एवं अन्तर्द्वन्द्व में घुल-मिलकर प्रस्तुत हुआ है। सचमुच उपन्यास में वर्णित बहुत से तथ्य व मुद्दे अभी तक गम्भीर चर्चा का विषय नहीं बन सके हैं। इस रूप में यह उपन्यास एक नई भूमिका के रूप में भी प्रस्तुत है।"[2]

उपन्यास की नायिका या नायिकाएँ धीरे-धीरे अपने अस्तित्व को समझती हैं और समाज के दबावों के विरुद्ध खड़ी होती हैं। वे अपनी इच्छाओं, सपनों और अधिकारों के लिए संघर्ष करती हैं। यह संघर्ष न केवल बाहरी सामाजिक नियमों के खिलाफ होता है, बल्कि आत्म-स्वीकृति और आत्म-सम्मान के लिए भी होता है।

स्वाधीनता की चाहरू उपन्यास की नारी समाज की रूढ़ियों को तोड़कर अपने निर्णय खुद लेने की कोशिश करती है। सामाजिक न्याय की मांगरू वे अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाती हैं, जैसे शिक्षा, समानता, और सम्मान। परिवार और समाज के बीच संतुलन : नारी अपने परिवार की जिम्मेदारियों को निभाते हुए भी अपनी स्वतंत्रता की मांग करती है। संस्कृति और आधुनिकता का संघर्ष : नारी अस्मिता में यह द्वंद्व स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है कि कैसे वे अपनी सांस्कृतिक पहचान

को बनाए रखते हुए आधुनिक सोच अपनाना चाहती हैं।

उपन्यास में नारी की भावना, विचार, और संघर्ष को बहुत संवेदनशीलता से प्रस्तुत किया गया है। नारी पात्रों के संवाद, उनके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, और उनकी क्रियाओं के माध्यम से नारी अस्मिता का जीवंत चित्रण मिलता है। भाषा सरल लेकिन प्रभावशाली है, जो पाठकों को नारी की व्यथा और साहस के साथ जोड़ती है।

उपसंहार

महुवा माज़ी नारी को केवल समाज की एक परिभाषित भूमिका तक सीमित नहीं मानतीं। वे नारी को परिवर्तन की एक सक्रिय एजेंट मानती हैं जो सामाजिक अन्याय, लैंगिक भेदभाव, और आर्थिक असमानता को चुनौती देती है। उनकी उपन्यास नारी को सशक्त, स्वतंत्र और जागरूक बनाने की दिशा में एक संदेश है। "मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ" में नारी अस्मिता का चित्रण आदिवासी नारी के जीवन के संघर्ष, संवेदनाओं, और सामाजिक जागरूकता का प्रतीक है। यह उपन्यास नारी की पहचान, अधिकारों और स्वतंत्रता की लड़ाई को प्रभावी रूप से दर्शाता है। महुवा माज़ी का यह कार्य आदिवासी साहित्य में नारी विमर्श को एक नई दिशा देता है।

सहायक ग्रन्थ सूची

1. मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-महुआ माज़ी-राजकमल प्रकाशन-पृष्ठ संख्या-43
2. वही, कवर पेज।

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

भारतीय कवयित्रियाँ : साहित्यिक परंपरा, स्त्री चेतना और समकालीन परिप्रेक्ष्य

डॉ. रमा राहुल दूधमांडे
सहयोगी आचार्य एवं हिंदी विभाग प्रमुख
डॉ.(सौ.) इं. भा. पाठक महिला कला महाविद्यालय, समर्थ नगर
छत्रपती संभाजीनगर (महाराष्ट्र)
दूरभाष : 8975032435
ईमेल : ramadudhmande1968@gmail.com

सारांश

भारतीय साहित्य की परंपरा में स्त्री का योगदान अत्यंत प्राचीन, समृद्ध और बहुआयामी रहा है। भारतीय कवयित्रियों ने विभिन्न कालखंडों में अपने काव्य के माध्यम से समाज, संस्कृति, धर्म, प्रेम, प्रकृति, राष्ट्र और मानवीय मूल्यों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। प्रारंभिक वैदिक युग की ऋषिकाओं से लेकर समकालीन कवयित्रियों तक स्त्री स्वर निरंतर विकसित हुआ है। यह स्वर केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रहा, बल्कि सामाजिक परिवर्तन, आत्मसम्मान, समानता तथा मानवीय गरिमा की स्थापना का सशक्त माध्यम भी बना है।

भारतीय कवयित्रियों का साहित्य अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों, सांस्कृतिक परिवेश तथा स्त्री जीवन के विविध अनुभवों का सजीव दस्तावेज़ प्रस्तुत करता है। भक्ति युग में जहाँ ईश्वर के प्रति समर्पण और आध्यात्मिक प्रेम प्रमुख रहा, वहीं आधुनिक और समकालीन युग में स्त्री ने स्वयं को समाज की सक्रिय, स्वतंत्र और विचारशील इकाई के रूप में स्थापित किया। आज की कवयित्रियाँ स्त्री-अस्मिता, सामाजिक न्याय, पर्यावरण, वैश्वीकरण, तकनीकी परिवर्तन तथा मानवीय संबंधों के बदलते स्वरूप जैसे विषयों पर गंभीर चिंतन प्रस्तुत कर रही हैं।

यह आलेख भारतीय कवयित्रियों की साहित्यिक परंपरा, स्त्री चेतना के विकास तथा समकालीन संदर्भों में उनके साहित्यिक योगदान का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द : भारतीय कवयित्रियाँ, साहित्यिक परंपरा, स्त्री चेतना, समकालीन साहित्य, नारी विमर्श, हिंदी कविता।

भूमिका

साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ-साथ उसके भविष्य का मार्गदर्शक भी होता है। जिस प्रकार समाज निरंतर परिवर्तनशील है, उसी प्रकार साहित्य भी समयानुसार नए विचारों और नई संवेदनाओं को आत्मसात करता रहता है। भारतीय साहित्य का इतिहास इस दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है कि इसमें स्त्री और पुरुष दोनों ने समान रूप से सृजनात्मक योगदान दिया है। यद्यपि लंबे समय तक साहित्यिक इतिहास के लेखन में पुरुष रचनाकारों को अधिक स्थान मिला, फिर भी भारतीय

कवयित्रियों ने अपने विशिष्ट लेखन के माध्यम से साहित्य की धारा को निरंतर समृद्ध किया है।

"यत्र नायस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता"[1] अर्थात जहाँ नारियों की पूजा होती हैं, वहाँ देवता रमन करते है। भारतीय जीवन मे नारी के शील की रक्षा का सदा से विशेष महत्व रहता है।

आज जब समाज तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है, तब भारतीय कवयित्रियों का साहित्य नई पीढ़ी के लिए प्रेरणा और चिंतन का स्रोत बनकर उभर रहा है। उनके साहित्य का अध्ययन केवल साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक संदर्भो में भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

भारतीय कवयित्रियों की साहित्यिक परंपरा

भारतीय कवयित्रियों की साहित्यिक परंपरा हजारों वर्षो में विकसित हुई है। प्रत्येक युग की सामाजिक परिस्थितियों ने उनके लेखन को प्रभावित किया है। इसी कारण प्रत्येक काल की कविता में विषय, भाषा और अभिव्यक्ति का स्वरूप अलग दिखाई देता है।

वैदिक काल : स्त्री की विद्वत्ता का प्रारंभ

भारतीय साहित्य में स्त्री लेखन की शुरुआत वैदिक काल से मानी जाती है। ऋग्वेद में घोषा, लोपामुद्रा, अपाला और विश्ववारा जैसी ऋषिकाओं द्वारा रचित सूक्त मिलते हैं। इन रचनाओं से स्पष्ट होता है कि उस समय स्त्रियाँ केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं थीं, बल्कि वे दार्शनिक चिंतन और वैचारिक विमर्श में भी सक्रिय थीं।

इन ऋषिकाओं की रचनाओं में ज्ञान, आत्मचिंतन, प्रकृति और आध्यात्मिक अनुभूति का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। यह भारतीय साहित्य में स्त्री की सृजनात्मक उपस्थिति का प्रारंभिक प्रमाण है।

मध्यकाल : भक्ति और आत्म-अभिव्यक्ति

मध्यकालीन भारतीय समाज अनेक सामाजिक बंधनों और धार्मिक रूढ़ियों से प्रभावित था। ऐसे समय में भक्ति आंदोलन ने स्त्रियों को अभिव्यक्ति का नया मंच प्रदान किया। इस काल की सबसे प्रसिद्ध कवयित्री मीराबाई हैं। "मध्य युगीन रुढिवादी व्यवस्था में मीराबाई ने पति सत्ता, परिवार सत्ता, धर्मसत्ता, राजसत्ता, जाति पाति की व्यवस्था, और, नारी को गुलाम बनानेवाली प्रथा परम्पराओं तथा बन्धनों को छेद देकर अपना विद्रोह व्यक्त किया है। आधुनिक महिला सशक्तिकरण के बीज के रूप में इसे देखा जाता है।"[2] उन्होंने कृष्ण भक्ति के माध्यम से केवल आध्यात्मिक प्रेम ही व्यक्त नहीं किया, बल्कि सामाजिक बंधनों का भी साहसपूर्वक विरोध किया।

"नातरि अपत्याते माये। ओसंडूनि जरिजायो तरि तै कैसेनि जिये। आइ के कृष्ण।।"[3] इस पद में संत ज्ञानेश्वर ने माँ के अपने बच्चे के प्रति असीम, स्वाभाविक और निःस्वार्थ प्रेम का चित्रण किया है। वे कहते हैं कि यदि माँ का स्नेह उमड़कर भी बच्चे तक न पहुँचे, तो वह बच्चा कैसे जीवित रह सकता है—अर्थात मातृस्नेह ही जीवन का आधार है।

मीराबाई के अतिरिक्त अक्का महादेवी, जनाबाई, बहिणाबाई और लल्लेश्वरी जैसी कवयित्रियों ने भी भक्ति को सामाजिक समानता और आत्मिक स्वतंत्रता से जोड़ा। उनकी कविता में ईश्वर के प्रति प्रेम के साथ-साथ मनुष्य की स्वतंत्र चेतना का स्वर भी उपस्थित है।

आधुनिक काल : नवजागरण और स्त्री चेतना

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में शिक्षा, सामाजिक सुधार आंदोलनों तथा राष्ट्रीय जागरण के प्रभाव से भारतीय स्त्री के जीवन में व्यापक परिवर्तन आया। इसी परिवर्तन का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। इस काल की कवयित्रियों ने स्त्री को केवल परिवार की सीमाओं में नहीं देखा, बल्कि उसे समाज निर्माण की सक्रिय शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया।

महादेवी वर्मा ने संवेदनशीलता, आत्मानुभूति और मानवीय करुणा को नई ऊँचाई प्रदान की। उनकी कविता में वेदना निराशा नहीं, बल्कि आत्मबल का स्रोत बन जाती है। सुभद्रा कुमारी चौहान ने राष्ट्रप्रेम और वीरता का ऐसा चित्र प्रस्तुत किया जिसने स्वतंत्रता आंदोलन को नई ऊर्जा दी। उनकी प्रसिद्ध कविता "झाँसी की रानी" आज भी राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक मानी जाती है

"कत विधी सृजी नारी जग मांही,
पराधीन सपने हूं सुख नाही।"[4]

उपरोक्त पंक्तियों में आर्थिक स्वावलंबन पर आधारित स्वतंत्रता का मार्ग वे मान्य करते हैं।

स्त्री चेतना : अवधारणा और साहित्यिक स्वर

स्त्री चेतना का आशय केवल स्त्री अधिकारों की मांग से नहीं है, बल्कि यह स्त्री के आत्मबोध, स्वाभिमान, स्वतंत्र चिंतन और सामाजिक सहभागिता की व्यापक अवधारणा है। यह चेतना स्त्री को एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार करने की प्रेरणा देती है। भारतीय कवयित्रियों ने अपने साहित्य में इस चेतना को अनेक स्तरों पर अभिव्यक्त किया है। उनके काव्य में स्त्री केवल परिवार की भूमिका निभाने वाली पात्र नहीं, बल्कि विचारशील, संवेदनशील और निर्णय लेने वाली सशक्त व्यक्तित्व के रूप में सामने आती है।

भारतीय स्त्री-काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें संघर्ष और संवेदना का संतुलित समन्वय मिलता है। कवयित्रियाँ विरोध तो करती हैं, परंतु उनका उद्देश्य केवल विद्रोह नहीं, बल्कि समाज में न्याय, समानता और मानवीय मूल्यों की स्थापना भी है। इसी कारण उनका साहित्य नारी-विमर्श को व्यापक सामाजिक विमर्श का रूप प्रदान करता है।

प्रमुख भारतीय कवयित्रियों का साहित्यिक योगदान

1. मीराबाई

भारतीय भक्ति साहित्य में मीराबाई का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनकी कविता में कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम के साथ-साथ व्यक्तिगत स्वतंत्रता का स्वर भी मिलता है। उन्होंने सामाजिक बंधनों, राजसी मर्यादाओं और रूढ़ियों की परवाह किए बिना अपनी आस्था और आत्मसम्मान को सर्वोच्च स्थान दिया। उनका काव्य यह संदेश देता है कि व्यक्ति की आत्मिक स्वतंत्रता किसी भी सामाजिक बंधन से अधिक मूल्यवान है।

2. महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा हिंदी साहित्य की छायावादी युग की प्रमुख कवयित्री हैं। उनकी कविता में करुणा, संवेदना और आत्मानुभूति का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है। उन्होंने स्त्री जीवन की पीड़ा को केवल भावुकता के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उसे आत्मबल और आत्मगौरव से जोड़ा। उनके गद्य साहित्य में भी स्त्री की सामाजिक स्थिति, शिक्षा और स्वतंत्र अस्तित्व पर गंभीर विचार प्रस्तुत किए गए हैं। इसलिए उन्हें आधुनिक स्त्री चेतना की अग्रदूतों में गिना जाता है।

3. सुभद्रा कुमारी चौहान

सुभद्रा कुमारी चौहान का साहित्य राष्ट्रीय चेतना और नारी-शक्ति का सुंदर उदाहरण है। उनकी कविताओं में देशभक्ति, त्याग, साहस और आत्मसम्मान के भाव प्रमुख हैं। उन्होंने ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से यह स्थापित किया कि स्त्री केवल परिवार की संरक्षिका ही नहीं, बल्कि राष्ट्र के निर्माण में भी समान रूप से सहभागी है। उनकी रचनाएँ आज भी नई पीढ़ी को प्रेरित करती हैं।

4. अमृता प्रीतम

अमृता प्रीतम ने "स्त्री के अंतर्मन, प्रेम, अकेलेपन और सामाजिक विसंगतियों को अत्यंत संवेदनशील ढंग से अभिव्यक्त किया।"[5] भारत-विभाजन की त्रासदी को उन्होंने मानवीय दृष्टि से देखा और स्त्री की पीड़ा को सार्वभौमिक अनुभव का रूप दिया। उनके साहित्य में प्रेम के साथ आत्मसम्मान और स्वतंत्र सोच का सुंदर संतुलन दिखाई देता है।

5. समकालीन कवयित्रियाँ

समकालीन हिंदी कविता में अनामिका, कात्यायनी, गगन गिल, सविता सिंह, निर्मला पुतुल आदि कवयित्रियों ने स्त्री अनुभवों को नई दृष्टि प्रदान की है। उनकी कविताएँ केवल व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं तक सीमित नहीं हैं, बल्कि सामाजिक असमानता, श्रम, विस्थापन, पर्यावरण, जातीय भेदभाव, लोकतंत्र तथा वैश्वीकरण जैसे प्रश्नों को भी गंभीरता से उठाती हैं।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में भारतीय कवयित्रियाँ

वर्तमान समय विज्ञान, तकनीक, वैश्वीकरण और डिजिटल संचार का युग है। इन परिवर्तनों ने साहित्य की विषयवस्तु और अभिव्यक्ति दोनों को प्रभावित किया है। समकालीन कवयित्रियाँ इन परिवर्तनों को संवेदनशील दृष्टि से देखती हैं। वे आधुनिक जीवन की उपलब्धियों के साथ-साथ उसकी चुनौतियों का भी विश्लेषण करती हैं।

"आज की कविता में स्त्री केवल अपने अधिकारों की बात नहीं करती, बल्कि समाज के प्रत्येक वर्ग के अधिकारों के प्रति भी सजग दिखाई देती है।"[6] पर्यावरण संरक्षण, बालिका शिक्षा, लैंगिक समानता, मानवाधिकार, सांस्कृतिक विविधता और लोकतांत्रिक मूल्यों जैसे विषय उनकी कविता में प्रमुखता से उपस्थित हैं।

सोशल मीडिया और डिजिटल मंचों ने स्त्री लेखन को नया पाठक वर्ग प्रदान किया है। अब कवयित्रियाँ केवल पत्र-पत्रिकाओं तक सीमित नहीं हैं, बल्कि ऑनलाइन माध्यमों से भी व्यापक समाज तक अपनी बात पहुँचा रही हैं। इससे साहित्य अधिक लोकतांत्रिक और सहभागी बना है।

भारतीय समाज में स्त्री-काव्य की प्रासंगिकता

आज भी भारतीय समाज अनेक सामाजिक चुनौतियों से जूझ रहा है। लैंगिक असमानता, घरेलू हिंसा, बाल-विवाह, शिक्षा में असमान अवसर तथा सामाजिक भेदभाव जैसी समस्याएँ पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं। ऐसे समय में भारतीय कवयित्रियों का साहित्य केवल साहित्यिक रचना नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का प्रभावी माध्यम बन जाता है।

भारतीय कवयित्रियों के साहित्य की समकालीन उपयोगिता

वर्तमान समय में साहित्य की भूमिका केवल सौंदर्यबोध तक सीमित नहीं रह गई है। आज साहित्य सामाजिक परिवर्तन, सांस्कृतिक संरक्षण और मानवीय मूल्यों की स्थापना का सशक्त माध्यम बन चुका है। भारतीय कवयित्रियों का साहित्य इस दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें व्यक्ति और समाज दोनों की समस्याओं का संवेदनशील चित्रण मिलता है।

"समकालीन कवयित्रियाँ बदलते सामाजिक परिवेश में स्त्री की बदलती भूमिका को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत कर रही हैं।"[7] उनके काव्य में परिवार, समाज, कार्यस्थल, राजनीति, शिक्षा, पर्यावरण, तकनीक और वैश्विक संस्कृति जैसे विविध विषय शामिल हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आज की कविता केवल भावनाओं का संसार नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ का गंभीर दस्तावेज़ भी है।भारतीय स्त्री-काव्य की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वह भारतीय सांस्कृतिक परंपरा से जुड़ा रहते हुए भी आधुनिक विचारों का स्वागत करता है।

निष्कर्ष

भारतीय कवयित्रियों की साहित्यिक यात्रा भारतीय संस्कृति की निरंतर विकसित होती चेतना का दर्पण है। वैदिक ऋषिकाओं से प्रारंभ होकर भक्ति आंदोलन, आधुनिक युग और समकालीन साहित्य तक स्त्री स्वर ने निरंतर अपने स्वरूप का विस्तार किया है। प्रत्येक युग में कवयित्रियों ने अपने समय की चुनौतियों को स्वीकार करते हुए साहित्य को नए विचार, नई संवेदनाएँ और नई दृष्टि प्रदान की है।

भारतीय कवयित्रियों का साहित्य यह सिद्ध करता है कि स्त्री केवल प्रेरणा का स्रोत नहीं, बल्कि सृजन, चिंतन और परिवर्तन की सक्रिय शक्ति भी है। उनके साहित्य में व्यक्तिगत अनुभव सामाजिक अनुभव बन जाते हैं और व्यक्तिगत संघर्ष मानवीय मूल्यों की स्थापना का माध्यम बन जाते हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय कवयित्रियों की साहित्यिक परंपरा भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर है। उनके साहित्य का निरंतर अध्ययन न केवल साहित्यिक दृष्टि से आवश्यक है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से भी अत्यंत उपयोगी है।

संदर्भ

1. डॉ धर्मपाल मैनी - भारतीय जीवनमूल्य, पृ. क्र. 17
2. मीराबाई के काव्य में व्यक्त विद्रोह- डॉ. अलका एन. गडकरी, पृ. क्र.251
3. नारी चिंतन : नई चुनौतियाँ- डॉ राजकुमारी गडकर, पृ.क्र. 68
4. वैश्वीकरण के परिपेक्ष्य में मध्यकालीन संत साहित्य की प्रासंगिकता- डॉ. श्रीमती आशुतोष, पृ. क्र.315
5. प्रीतम, अमृता, चुनी हुई कविताएँ। पृ. क्र. 12
6. पांडेय, मैनेजर, साहित्य और इतिहास-दृष्टि, पृ. क्र. 25
7. बच्चन सिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. क्र. 121

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

21वीं सदी के हिंदी रंगमंच के समक्ष चुनौतियों का विश्लेषण

रमनदीप
शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
ई-मेल : buntybhadu29@gmail.com
संपर्क सूत्र : 8607577442

नाटक साहित्य की वो विधा है जो केवल शिक्षित वर्ग तक सीमित नहीं है बल्कि इसका आनंद अशिक्षित वर्ग भी ले सकता है। सिनेमा के आगमन से पहले नाटक एक महत्वपूर्ण विधा हुआ करती थी, पर समय के साथ इस विधा की प्रसिद्धि में गिरावट आई है। नाटक केवल मनोरंजन का माध्यम ही नहीं बल्कि एक ऐसा दस्तावेज है, जिसमें समाज, संस्कृति और परम्पराएं सहज रूप में उपलब्ध है। हिंदी रंगमंच ने भारतीय रंगमंच को एक नई पहचान दी है, लेकिन 21वीं सदी में यह विधा नई और जटिल चुनौतियों का सामना कर रही है।

डिजिटल युग के आगमन के साथ ही फिल्मों, वेब सीरीज और सोशल मीडिया की वजह से जन्मे रील-कल्चर की बढ़ती लोकप्रियता ने पारंपरिक थिएटर को पीछे छोड़ दिया है। इसके अलावा आर्थिक कठिनाइयाँ, सरकारी सहयोग की कमी, आधुनिक तकनीकी संसाधनों का अभाव और युवा पीढ़ी की थिएटर में घटती रुचि भी हिंदी रंगमंच के सामने प्रमुख चुनौतियाँ बनकर खड़ी हैं। हालांकि, नई तकनीकों और समकालीन मुद्दों को शामिल कर थिएटर को फिर से जीवंत बनाने की संभावनाएँ भी मौजूद हैं। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि हम इन चुनौतियों को समझें और हिंदी रंगमंच के पुनरुद्धार के लिए सार्थक प्रयास करें। रंगमंच एक ऐसी कला है जो बाकी अन्य कलाओं से भिन्न है। गोविंद चातक जी रंगमंच : कला और दृष्टि में लिखते हैं कि, "और सब कलाएँ स्थिर हैं, पर रंगमंच गतिशील होता है, और कलाएँ सुरक्षित रखी जा सकती है, परंतु रंगमंच हर सुबह को मर जाता है, हर रात को उसे फिर नए सिरे से पैदा होना होता है। प्रदर्शन पर ही रंगमंच की कला निर्भर करती है और हर नए प्रदर्शन पर रंगमंच पर एक नई सृष्टि होती है। प्रदर्शनकारी कला होने के नाते रंगसृष्टि काव्य, चित्र या मूर्ति की भाँति स्थायी नहीं होती"। (चातक 14) 21वीं सदी का हिंदी रंगमंच नए प्रयोगों और तकनीकी नवाचारों के साथ एक नई दिशा में मुड़ने की कोशिश कर रहा है लेकिन बदलते समय के साथ बदलती चुनौतियों और परिवर्तनों करने से गति अवरूद्ध हो रही है। आज विभिन्न रूपों और प्रयोगों से समृद्ध होने के बावजूद इसे कई गंभीर समस्याओं से भी जूझना पड़ रहा है।

ओटीटी का प्रभाव

रंगमंच एक ऐसी कला है जिसको सफल और सार्थक उसका दर्शक बनाता है। दर्शकों की घटती हुई संख्या हिंदी रंगमंच के लिए एक बड़ा चिंता का विषय है। बदलते समय के साथ दर्शक वर्ग को मनोरंजन के अनेक विकल्प मिल गए हैं। जिसमें सिनेमा, टीवी और इंटरनेट के माध्यम से अनेकों ओटीटी प्लेटफॉर्म्स है। आधुनिकरण के इस दौर में जहां मोबाइल इंटरनेट हर व्यक्ति की पहुंच में है, तो जाहिर सी बात है की वह मनोरंजन के इन विकल्पों का लाभ ले रहे है। इस प्रकार रंगमंच से

उसकी दूरी थोड़ी स्वाभाविक जान पड़ती है। युवा मन मनोरंजन के लिए इस विधा को पसंद कर रहे हैं। बड़ी संख्या में दर्शक इस बात से सहमत हैं कि ओवर-द-टॉप (ओटीटी) प्लेटफॉर्म थिएटर उद्योग के लिए एक वास्तविक खतरा हो सकते हैं। यह दावा करने के लिए कई कारक हैं कि ओटीटी एक खतरा है और साथ ही, कोई भी इस बात को खारिज नहीं कर सकता है कि ओटीटी भारत और दुनिया भर में दृश्य सामग्री के लिए काफी हद तक पसंदीदा माध्यम बन गया है। ओटीटी के साथ नाटकीय आयाम पूरी तरह से बदल गए हैं।

सिनेमा की लोकप्रियता ने रंगमंच के वर्चस्व को पहले से ही चुनौती दे रखी थी। आज के डिजिटल युग में ओटीटी प्लेटफॉर्म रंगमंच के लिए नई चुनौती के रूप में उभर कर आया है। ओटीटी ने कोविड-19 की आड़ में अपनी जड़ें जमा ली हैं। कोविड-19 की वजह से सभी काम-धंधों को बंद करने के साथ ही थिएटर को भी बंद करना पड़ा। सभी लोग घर में बंद हो गए इसलिए मनोरंजन के ओटीटी के सशक्त माध्यम बन कर आया। महामारी के इस समय ने दर्शकों की मनोरंजन की आदतों में भरी परिवर्तन किए। इन नई आदतों ने सिर्फ थिएटर को ही नहीं हिंदी सिनेमा को भी बदलने पर मजबूर कर दिया। ओटीटी मुख्य रूप से तीन प्रकार से लाइव-थिएटर को प्रभावित करता है।

ओटीटी रंगमंच से काफी सस्ता पड़ता है। जहाँ एक नाटक की टिकट के 100-200 रुपए लगते है जिसमें सिर्फ एक व्यक्ति ही देख सकता है, वहीं एक ओटीटी प्लेटफॉर्म इतने ही रुपए में एक महीने तक देखा जा सकता है वो भी पूरे परिवार के साथ। (Ravande and Shaikh 40) रंगमंच में दर्शक पंक्तियों में बैठते है, आमतौर पर आगे वाली पंक्ति की टिकट महँगे दामों पर मिलती है। पीछे की पंक्तियों में बैठने वाले दर्शक, अभिनेता के अभिनय व हाव-भाव को सही तरीके से नहीं देख पाते।(Ravande and Shaikh 44) जबकि ओटीटी पर देखते समय दर्शक के पास ऐसे अनुभवों की आजादी होती है।

सरकारी आर्थिक सहायता

जब बदलते राजनीतिक व सामाजिक परिवेश, वैश्वीकरण व वैज्ञानिक तरक्की से नए कला संप्रेषण माध्यम विकसित होते हैं तो पहले से चली आ रही परंपरागत कला को कई तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। वर्तमान समय में हिंदी रंगमंच भी कई तरह की चुनौतियों का सामना कर रहा है। किसी भी कला को सुनियोजित तरीके से संप्रेषित करने के लिए धन की आवश्यकता होती ही है। महंगाई के इस दौर में धन हर इंसान की एक बहुत बड़ी जरूरत बनता जा रहा है। भारत देश में बहुत सारी छोटी बड़ी रंग मंडलीयां स्वतंत्र रूप से रंगमंच कर रही है। कई बार यह देखने में आया है कि इन नाट्य मंडलियों को वित्तीय सहायता की कमी से जूझना पड़ता है, जैसे सरकारी अनुदान के मिलने में लेट लतीफी का होना, नाट्य उत्सवों की कमी तथा इन उत्सवों से मिलने वाली राशि का नाट्य मंचन के व्यय से भी कम होना। किसी भी नाटक को मंच तक लाने के लिए काफी समय और पैसा खर्च करना पड़ता है। नाटक निर्माण के लिए रिहर्सल स्पेस का मिलना, जब नाटक मंचन के लिए तैयार हो तो उचित सभागारों का मिलना नाट्य मंडलियों के लिए एक बड़ी दुविधा है। सभागारों का किराया इतना अधिक होता है कि छोटी नाट्य मंडलीयां तो बिना किसी बाहरी सहायता के यह वहन ही नहीं कर पाती। आर्थिक कठिनाइयों से जूझ रही ये रंग मंडलीयां न तो नाट्य निर्माण में आ रहे खर्च को पूरी तरह वहन कर पाती है और न ही अपने कलाकारों को समय पर पैसे दे पाती है। पैसा अगर मिल भी जाए तो भी ज्यादातर यह राशि इतनी कम होती है कि एक कलाकार के लिए सिर्फ अपनी नाट्य कला पर निर्भर होना मुश्किल हो जाता है। इस संदर्भ में ज्योतिष जोशी, लिखते हैं कि, "सबसे बड़ा सवाल तो यही आता है कि कोई थिएटर ही क्यों करे या करते रहने में लगे रहे? थिएटर से उसकी व्यवसायवृत्ति पूरी नहीं होती। रोजी-रोजगार नहीं चलता, बहुतों के पेट तक नहीं भरते"। (जोशी 28) हिंदी रंगमंच के समक्ष वित्तीय सहायता की कमी एक बहुत बड़ी चुनौती है। कला को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार को अपना दायित्व निभाना चाहिए व वित्तीय सहायता प्रदान करनी चाहिए। इंग्लैंड जहाँ की आबादी 6.6 करोड़ है, वहाँ 2023-26, तीन साल की साइकिल में सरकार ने सिर्फ कला के संरक्षण के लिए लगभग 4600 करोड़ रुपए दिए हैं। (Arts Council England) इंग्लैंड जैसे देश की सरकारें कला के लिए समर्पित दिखाई पड़ती है, वहीं भारत सरकार के 2024-25 के बजट में संस्कृति

मंत्रालय को 3260 करोड़ का बजट जारी किया गया (India, Ministry of Finance) जिसका एक बहुत बड़ा हिस्सा पुरातत्व विभाग को दिया जाता है। संगीत नाटक अकादमी और नैशनल स्कूल ऑफ ड्रामा जैसे राष्ट्रीय महत्व के संस्थानों के हिस्से कुल राशि का एक छोटा हिस्सा आता है और वो भी अन्य भाषा के नाटकों के साथ भी बाँटना पड़ता है।

सोशल मीडिया का रील कल्चर

रंगमंच हमेशा से एक गंभीर साहित्यिक अभिव्यक्ति के साथ-साथ मनोरंजन का भी साधन रहा है। नाटक की सबसे बड़ी खासियत है कि हर मंचन के दौरान इसका नया जन्म होता है, ऐसा प्रतीत होता है कि आजकल यह खास बात इसके विरुद्ध काम कर रही है। आजकल रील कल्चर के दौर में दर्शक को हर 15-20 सेकंड में dopamine के छोटे से खुराक की आदत लग गई है जिस से एकाग्रता की अवधि (attention span) में बहुत बड़ा बदलाव आया है। निकोलस कार लिखते है, "The fast-paced, highly fragmented nature of modern digital content is rewiring neural pathways, making it increasingly difficult for individuals to engage in deep, contemplative focus required for appreciating complex narratives or long-form art (Carr 112).अर्थात् इंटरनेट के द्रुत गति से बदलती मनोरंजनपरक सामग्री जैसे इंस्टाग्राम रील्स और यूट्यूब शॉर्ट्स की वजह से नाटक जैसे जटिल माध्यम के लिए जरूरी एकाग्रता को प्रभावित किया है।

तकनीकी पिछड़ापन

भारत में रंगमंच के लिए आधारभूत संरचना (infrastructure) की कमी है। अपर्णा भार्गव धारवाड़कर के अनुसार, ब्रॉडवे के मजबूत व्यावसायिक मॉडल या यूरोप के सरकार द्वारा वित्तपोषित (सब्सिडी प्राप्त) राष्ट्रीय रंगमंचों के विपरीत, आधुनिक भारतीय रंगमंच को एक आत्मनिर्भर संस्थागत और आर्थिक बुनियादी ढांचा स्थापित करने में बुनियादी तौर पर संघर्ष करना पड़ा है, जिसके कारण इसे मुख्य रूप से खंडित और अर्ध-पेशेवर बने रहने के लिए मजबूर होना पड़ा है। (Dharwadker 15-18). इसका एक मुख्य कारण देश का विकासशील होना भी है। इसके अलावा पश्चिम की तुलना में भौतिक ढांचों का भारी अकाल है। आनंद लाल का मानना है कि भारतीय रंगमंच और उसके पश्चिमी समकक्षों के बीच की यह असमानता, समर्पित भौतिक बुनियादी ढांचे की कमी में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है; भारत में कुछ प्रमुख महानगरीय केंद्रों को छोड़कर, हर जगह अच्छी तरह से सुसज्जित एवं किफायती पूर्वाभ्यास (रिहर्सल) स्थलों और आधुनिक सभागारों की भारी कमी है (लाल 242)।

राजनीतिक हस्तक्षेप

21वीं सदी में हिंदी रंगमंच; नाट्य लेखकों व रंगकर्मियों के बीच चल रही अजीब सी दुविधा से ग्रस्त है। जहां विभिन्न नाट्य मंडलीयां अपना स्वतंत्र लेखन ही मंचित कर रही है, वहीं नए नाटककारों का यह आरोप है कि आज के निर्देशक लिखे हुए नाटकों को मंचित करने का जोखिम नहीं उठा पा रहे। ज्योतिष जोशी ने रंग विमर्श में लिखा है कि, "हिन्दी प्रदेशों में आखिर पेशेवर मंडलियाँ कितनी हैं, जो रंगकर्म को नियमित कर्म मानती हैं? हिन्दी को मुख्यधारा के रंगकर्म का हाल यह है कि यदि उसमें अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के नाट्यानुवादों को निकाल दें तो स्थिति कितनी हास्यास्पद हो जाएगी, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। निर्देशकों का बार-बार कहना होता है कि हिन्दी में मंचीय नाटक नहीं हैं। नाटककार इसका प्रतिवाद करते हुए बयान देते हैं कि नाटक तो बहुत हैं पर निर्देशक नये नाटकों पर काम करने का जोखिम नहीं लेना चाहते। इसी दौरान हिन्दी में कहानी का रंगमंच भी अस्तित्व में आया जिसके सहारे कोशिश की गई कि हिन्दी में नाटक की समस्या से निजात पाई जाय"। (जोशी 36) पिछले कुछ समय से देखा गया है कि विभिन्न नाट्य संस्थाओं में राजनीतिक हस्तक्षेप हुए हैं। कला के किसी भी माध्यम में राजनीति का हस्तक्षेप उसे बर्बादी की कगार पर लाकर खड़ा कर सकता है।

राजनीतिक हस्तक्षेप से एक तो दर्शकों के रंगमंच से विमुख होने का खतरा है। वही किसी राजनीतिक विचारधारा का रंगमंच परिवर्तनशील नहीं रह पाता है और ना ही नए रंगकर्मी, निर्देशक और नाटककार पैदा कर पाता है। जनसत्ता में प्रकाशित लेख 'रंगमंच की नई चुनौतियाँ' शीर्षक लेख में मीणा बुद्धिराजा लिखती हैं, "नाटक और रंगमंच साहित्य की सबसे जीवंत विधा के रूप में हमेशा प्रासंगिक रहा, जो दर्शकों से सीधा जुड़ कर उनसे प्रत्यक्ष संवाद करता है। नाटक अपनी मूल प्रकृति और स्वभाव से ही सत्ता और व्यवस्था-विरोधी होता है और साधारण जनसामान्य के संघर्ष, सामाजिक समस्याओं, ज्वलंत मुद्दों से जुड़े प्रश्नों को उठा कर असहमति और प्रतिरोध की आवाज बनता है। जनसाधारण और आम जनता से सीधे और सार्थक संवाद का यह माध्यम समाज में एक व्यापक और सकारात्मक बदलाव की रूपरेखा भी तैयार करता है"। (बुद्धिराजा) अतः यह कहा जा सकता है की सत्ता रूपी बरगद के आश्रय में रंगमंच का पेड़ फल नहीं दे पा रहा है।

टिकट कल्चर

हिंदी रंगमंच के दर्शकों में धन देकर नाटक देखने की इच्छा की कमी मिलती है। छोटे शहरों में आज भी टिकट लेकर नाटक देखने की परंपरा कोई खासा विकसित नहीं है, हरियाणा के हिसार जिले में 'अभिनय रंगमंच' नाट्य ग्रुप पिछले कई सालों से सालाना थिएटर फेस्टिवल 'रंग आंगन महोत्सव' करवाता आ रहा है। नाट्य मंडली के संचालक मनीष जोशी बिस्मिल का कहना है कि, "टिकट खरीदने की आदत लगाना रंगकर्मियों की ही जिम्मेदारी है इसके लिए प्रस्तुति का स्तर भी बढ़ाना होगा क्योंकि दर्शक अपने कीमत की वापसी चाहेंगे। टिकट की बिक्री से नाट्य मंडली आर्थिक रूप से मजबूत होगी, जो हिंदी रंगमंच की एक बड़ी चुनौती है"। (बिस्मिल) यह कहा जा सकता है कि हिंदी रंगमंच को जीवंत बनाए रखने के लिए इसे नए दौर की जरूरतों और दर्शकों की बदलती प्राथमिकताओं के अनुसार खुद को ढालना होगा। हिंदी रंगमच के लिए दर्शक कम आने का एक कारण इसका 'Intellectual art' बन जाना है जिसकी वजह से यह एक विशेष बुद्धिजीवी तबके के लिए आरक्षित सा हुआ लगता है। प्रो० वसुधा डालमिया का मानना है कि सरकारी अनुदान पर चलने की वजह से राष्ट्रीय नाट्य मंच जैसे संस्थानों ने नाटक को 'हाई आर्ट' का रूप दे दिया है जो आम जनता से दूर हो गया है। (डालमिया 134-138) अगर दूसरी तरफ मराठी थिएटर की बात करें तो एक नया ही पहलू देखने को मिलता है। मराठी रंगमंच की प्रमुख आलोचक शांता गोखले का कहना है कि हिंदी थिएटर के विपरीत मराठी थिएटर मध्यम वर्ग की टिकट खरीदने की आदत से प्रगतिशील है क्यूंकी मराठी नाटक अपने दर्शकों की रोजमर्रा के जीवन की समस्याओं से जुड़े नाटक लिखते हैं। (गोखले 215) जबकि हिंदी नाटक अब तक आधे-अधूरे, आषाढ़ का एक दिन और कोर्ट मार्शल जैसे नाटकों पर अटका पड़ा है। इसके अतिरिक्त हिंदी रंगमच मुनाफ़ा कमाने वाले संस्थान के रूप में विकसित नहीं हो पाया। अपर्णा भार्गव लिखती है कि इस लाभ रहित ढाँचे की वजह से हिंदी रंगमच बॉलीवुड का 'वैटिंग रूम' बन गया। (Dharwadker 42-45) अर्थात् हिंदी रंगमंच के 'वैटिंग रूम' बनने की वजह से रंगमच का कोई स्टार चेहरा नहीं बन पाया जैसे मराठी के लिए नाना पाटेकर या गुजराती के लिए शरमन जोशी या परेश रावल है। अतः इन कारणों की वजह से हिंदी रंगमंच में टिकट कल्चर विकसित नहीं हो पाया।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में हिंदी रंगमंच अनेकानेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। जिनमे वित्तीय सहायता की कमी, डिजिटल माध्यमों की चुनौती, लेखन व मंचन की दुविधा और रंगमंच में राजनीतिक हस्तक्षेप मुख्य है। जहां चुनौतियां होती है, वहां समाधान के भी अंश होते हैं। रंगमंच को भी डिजिटल माध्यमों की सहायता से ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचाने का प्रयास किया जा सकता है। नए नाटककारों और रंग कर्मियों को ज्यादा से ज्यादा प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए टिकट लेकर नाटक देखने की परंपरा को आगे बढ़ना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

चातक, गोविन्द. रंगमंच कला और दृष्टि. तक्षशिला प्रकाशन, 1976.

Lal, Ananda, editor. The Oxford Companion to Indian Theatre. Oxford University Press, 2004.

Dharwadker, Aparna Bhargava. Theatres of Independence: Drama, Theory, and Urban Performance in India since 1947. University of Iowa Press, 2005.

जोशी, ज्योतिष. रंग विमर्श. नई किताब प्रकाशन, 2011.

बिस्मिल, मनीष जोशी. "हिंदी प्रदेश में रंगमंच कैसे बचेगा". रंगविमर्श, Feb- 2018, rangwimarsh-blogspot-com/2018/02/model-for-sustainable-theatre-html-

Buddhiraja, Meena. "रंगमंच की नई चुनौतियां", Jansatta, 2 June 2019, readertts.com/article/page/jansatta/sunday-magazine/rapidly-growing-technical-and-other-entertainment-arts-medium-challenges-in-front-of-theater/1038952/.

Carr, Nicholas. The Shallows: What the Internet Is Doing to Our Brains. W. W. Norton & Company, 2020.

Arts Council England. National Portfolio Organisations 2023-26 Investment Programme. Arts Council England, Nov. 2022, www.artscouncil.org.uk/investment-programmes-2023-26/national-portfolio-2023-26. Accessed 18 June 2026.

Ravande, Durgesh Bhausaheb, and Gulab Karim Shaikh. "OTT Platform and Dynamics for Contemporary Indian Theatre." Creative Saplings, vol. 2, no. 6, Sep. 2023, pp. 36-47. https://doi.org/10.56062/gtrs.2023.2.06.381.

India, Ministry of Finance. "Notes on Demands for Grants, 2024-2025: Demand No. 18, Ministry of Culture." Union Budget 2024-25, Government of India, Feb. 2024, www.indiabudget.gov.in/doc/eb/sbe18.pdf. Accessed 19 June 2026.

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

औपनिवेशिक टीकाकरण और चेचक

हर्ष वार्ष्णेय
शोधार्थी, इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
संपर्क सूत्र : 8285201182
ईमेल : harshvarshneydu@gmail.com

सारांश

चेचक मानव इतिहास की सबसे घातक महामारियों में से एक रही है, जिसने विश्वभर में करोड़ों लोगों के जीवन को प्रभावित किया। भारत में भी चेचक का प्रकोप सदियों से विद्यमान था, जहाँ इसके उपचार और नियंत्रण के लिए धार्मिक आस्थाओं, पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों तथा स्थानीय टीकाकरण की परंपराएँ प्रचलित थीं। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन द्वारा एडवर्ड जेनर के टीकाकरण को भारत में लागू करने के साथ सार्वजनिक स्वास्थ्य और चिकित्सा के क्षेत्र में एक नए युग का आरंभ हुआ। किंतु औपनिवेशिक टीकाकरण केवल एक चिकित्सीय पहल नहीं था, बल्कि यह राज्य, विज्ञान, प्रशासन और समाज के मध्य संबंधों को पुनर्परिभाषित करने वाली प्रक्रिया भी थी।

यह अध्ययन औपनिवेशिक भारत में चेचक-नियंत्रण तथा टीकाकरण नीति के ऐतिहासिक विकास का विश्लेषण करता है। इसमें ब्रिटिश सरकार की स्वास्थ्य नीतियों, टीकाकरण कार्यक्रमों, प्रशासनिक संरचना तथा उनके क्रियान्वयन का परीक्षण किया गया है। साथ ही, यह शोध भारतीय समाज की प्रतिक्रियाओं—जिनमें स्वीकृति, संदेह, विरोध और स्थानीय अनुकूलन सम्मिलित थे—का भी आलोचनात्मक अध्ययन करता है। विशेष रूप से यह देखा गया है कि किस प्रकार जाति, धर्म, लिंग, क्षेत्रीय विविधता और सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों ने टीकाकरण की सफलता एवं सीमाओं को प्रभावित किया।

अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि औपनिवेशिक शासन ने सार्वजनिक स्वास्थ्य को केवल मानवीय कल्याण के दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि प्रशासनिक दक्षता, सैन्य शक्ति, श्रमबल की उपलब्धता और साम्राज्यवादी शासन की स्थिरता के साधन के रूप में भी देखा। इस प्रकार टीकाकरण अभियान चिकित्सा विज्ञान के प्रसार के साथ-साथ औपनिवेशिक सत्ता के विस्तार और नियंत्रण की प्रक्रिया का भी हिस्सा थे। दूसरी ओर, भारतीय समाज ने इन नीतियों को निष्क्रिय रूप से स्वीकार नहीं किया, बल्कि अनेक स्थानों पर स्थानीय परंपराओं, धार्मिक विश्वासों और सामाजिक अनुभवों के आधार पर उनका समर्थन, संशोधन अथवा प्रतिरोध किया।

यह शोध औपनिवेशिक चिकित्सा, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा सामाजिक इतिहास की अंतःविषयक दृष्टि को अपनाते हुए यह प्रतिपादित करता है कि चेचक के विरुद्ध टीकाकरण का इतिहास केवल चिकित्सा विज्ञान का इतिहास नहीं है, बल्कि यह औपनिवेशिक शासन, ज्ञान-उत्पादन, सामाजिक परिवर्तन तथा राज्य और समाज के अंतर्संबंधों को समझने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम भी है। औपनिवेशिक भारत में चेचक और टीकाकरण का अध्ययन समकालीन सार्वजनिक स्वास्थ्य नीतियों, टीकाकरण अभियानों तथा चिकित्सा के प्रति सामाजिक विश्वास और सहभागिता को समझने के लिए भी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

प्रदान करता है।

मुख्य शब्द : औपनिवेशिक भारत, चेचक, टीकाकरण, वैक्सीनेशन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, औपनिवेशिक चिकित्सा, चिकित्सा इतिहास, ब्रिटिश भारत, सामाजिक इतिहास।

आज जब विश्व कोरोना महामारी से अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ चुका है तब शासन प्रशासन या सरकार द्वारा इस महामारी की रोकथाम के लिए किए गए उपाय सरकार की जनता के स्वास्थ्य के प्रति लोक-कल्याणकारी भावना को उजागर करते हैं। लेकिन भारत के इतिहास में आई अनेकों महामारी की रोकथाम में सरकार ने अपनी जिम्मेदारियों से हाथ खींचा है। आधुनिक भारत में 19वीं शताब्दी में आई चेचक महामारी ऐसी पहली महामारी थी जिस की रोकथाम के लिए सरकार ने पहली बार आम जनता के प्रति जनभावना का प्रदर्शन किया।

19वीं शताब्दी के भारत में ब्रिटिश चिकित्सकों ने सभी महामारी रोग में चेचक को सबसे अधिक प्रचलित और विनाशकारी रोगों में स्थान दिया था। चेचक ने अन्य सभी बीमारियों को मिलाकर पीड़ित हुए लोगों की संख्या से भी अधिक लोगों को अपनी गिरफ्त में लिया था। संपूर्ण 19वीं शताब्दी में कई मिलियन मौतें केवल चेचक के कारण दर्ज की गई थी। एक विद्वान के अनुमान के अनुसार 19वीं शताब्दी में उत्तर भारत की गंगा व यमुना नदियों के बीच दोआब में रहने वाली 90% आबादी अपने जीवन के किसी न किसी चरण में चेचक के संपर्क में आई थी। 1870 के दशक में उत्तरी तथा पूर्वी भारत के जेलों में बंद कैदियों, स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों व सरकारी उद्यमों में लगे मजदूरों की जांच ने काफी हद तक इस धारणा की पुष्टि की है। चूंकि भारत के अधिकांश हिस्सों में लगभग हर पांच से सात साल बाद चेचक महामारी फैलती थी। इसलिए इसके प्रमुख शिकार इस महामारी के पिछले दौर के बाद पैदा हुए बच्चे होते थे। प्रिंगल ने कहा है कि उत्तरी भारत में यह बीमारी इतनी आम हो गई थी कि यहां के कृषक समुदाय और धनी वर्गों के बीच इस को लेकर एक कहावत भी प्रचलित हो गई थी कि जब तक बच्चों पर चेचक का हमला ना हो जाए और जब तक वे उससे उबर न आए तब तक बच्चों की गिनती परिवार के स्थाई सदस्य के रूप में ना की जाए। इसके अलावा पूर्वी भारत तथा बंगाल के अधिकांश हिस्सों में चेचक के उपचार के लिए तमाम तरह के धार्मिक विश्वास जैसे शीतला माता की प्रार्थना व पीर और फकीरों द्वारा लगाए जाने वाले झाड़े, नीम के पत्तों के झाड़े आदि भी प्रचलित थे।

18 वीं शताब्दी के अंत और 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में भारत में पाश्चात्य चिकित्सा काफी छोटे दायरे तक सिमटी हुई थी ब्रिटिश सरकार की भारत में पाश्चात्य चिकित्सा के विकास में अरुचि के कारण एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति केवल यूरोपीय समुदाय तक ही सीमित थी। जब शुरुआत में औपनिवेशिक सरकार ने पाश्चात्य चिकित्सा को भारतीय बीमारियों का उपचार करने में असमर्थ पाया तो इन बीमारियों के संभावित जोखिम को कम करने के लिए औपनिवेशिक सरकार ने अंग्रेजों की रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने का प्रयास किया और इसी कड़ी में 1864 में औपनिवेशिक सरकार ने अपनी ग्रीष्मकालीन राजधानी को कोलकाता से शिमला स्थानांतरित किया था ताकि अंग्रेजों को भारत में भी ब्रिटेन जैसी ठंडी जलवायु मिल सके।

जब शुरुआत में अधिकांश प्रमुख बीमारियों पर नियंत्रण पाश्चात्य या पश्चिमी चिकित्सकीय उपचारों से परे था। तब टीकाकरण के आगमन ने पाश्चात्य चिकित्सकों को चेचक को एक रोकथाम योग्य बीमारी के रूप में देखने के लिए प्रोत्साहित किया और एक अभियान के तौर पर भारत में चेचक के विरुद्ध टीकाकरण की शुरुआत हुई। लेकिन शुरुआत में यह टीकाकरण आंशिक रूप से यूरोपीय लोगों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए ही प्रारंभ किया गया था। इसलिए केवल यूरोपियों का ही टीकाकरण किया गया।

चेचक के टीके की सापेक्ष सादगी और सस्तेपन के कारण और साथ ही पहली बार पश्चिमी चिकित्सा की प्रभावशीलता का ऐसा स्पष्ट सकारात्मक प्रदर्शन प्रतीत होने के कारण औपनिवेशिक राज्य द्वारा समस्त भारत की आबादी के टीकाकरण का फैसला लिया गया। इस सार्वजनिक टीकाकरण के पीछे एक कारण यह भी था कि अब अंग्रेजों का भारतीयों के साथ संपर्क अपरिहार्य हो गया था और इन संक्रामक बीमारियों से ग्रसित भारतीय किसी अंग्रेज को भी संक्रमित कर सकते थे।

इसलिए भारतीयों का टीकाकरण कर अपने चारों ओर एक सुरक्षित घेराबंदी स्थापित करना अंग्रेजों के लिए आवश्यक हो गया था। इस प्रकार यह सार्वजनिक टीकाकरण भारत के लोगों के प्रति अंग्रेजों की स्व-घोषित मानवता और परोपकारिता का प्रतीक बन गया।

अपनी शुरुआत में सार्वजनिक स्वीकृति प्राप्त न होने के कारण व भारतीयों में टीकाकरण के महत्व के प्रति अनभिज्ञता होने के कारण टीकाकरण की रफ्तार धीमी थी। लेकिन फिर भी एक पर्याप्त पैमाने पर टीकाकरण करने के बाद अंग्रेजों ने इसके निर्विवाद लाभों के रूप में जो देखा, उससे चेचक से होने वाली मृत्यु-दर पर एक उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा। इस प्रकार धीरे-धीरे लोगों में टीके के प्रति जागरूकता का प्रचार-प्रसार किया गया। भारत में टीकाकरण को एक स्वीकार्य लाभ के रूप में स्थापित करने में पूरी 19वीं शताब्दी का समय लगा।

वास्तव में उपनिवेशवादी सरकार का भारत की आबादी के लिए टीकाकरण का इरादा कभी नहीं था। लेकिन जिस गति से इसे भारत में राजकीय चिकित्सा की एक प्रमुख विशेषता के तौर पर लिया गया, वह इस बात का प्रमाण है कि पाश्चात्य चिकित्सा विशुद्ध रूप से उपनिवेशवादी मानसिकता द्वारा शासित नहीं थी। 1802 में टीकाकरण की शुरुआत के वक्त यद्यपि औपनिवेशिक अधिकारियों के मन में अंग्रेज सैनिकों और नागरिकों की सुरक्षा एक प्रमुख विचार था, लेकिन यह उनकी एकमात्र और सर्वोपरि चिंता नहीं थी जैसा कि 1803 में बॉम्बे के गवर्नर ने टीकाकरण पर टिप्पणी करते हुए स्पष्ट किया था कि 'टीकाकरण से हमने जो प्रतिष्ठा हासिल की है, वह भारतीयों से बहुत अच्छी इच्छा का स्रोत है और यह हमारे लिए एक महान पुरस्कार है।' मद्रास के गवर्नर लॉर्ड विलियम बेंटिक ने 1805 में टीकाकरण को आधिकारिक मंजूरी देते हुए कहा था कि एक ऐसे देश में जहां राज्य ने अपनी आय का बड़ा हिस्सा भू-राजस्व से प्राप्त किया हो, जहां राज्य द्वारा कभी भी लोगों की व्यक्तिगत खुशी या सार्वजनिक लाभ की वस्तुओं के लिए कोई खर्च न किया गया हो, वहां हमने अपनी आय से अतिरिक्त राजस्व खर्च करके कंपनी के क्षेत्रों की समृद्धि के लिए एक बड़े अनुपात में लोगों के जीवन को बचाया।

इस प्रकार टीकाकरण को भारत में पश्चिमी चिकित्सा की हस्तक्षेपवादी महत्वाकांक्षाओ और क्षमताओं के उल्लेखनीय प्रदर्शन के तौर पर देखा जा सकता है। लेकिन कभी-कभी अनिच्छुक आबादी पर टीकाकरण लागू करने या अपनी चिकित्सा प्रणाली को व्यापक जनस्वीकृति दिलाने के लिए उपनिवेशवादी सरकार को कई बार काफी संघर्ष भी करना पड़ा। औपनिवेशिक सरकार के मन में राजनीतिक असुरक्षा की स्थाई भावना होने के कारण और 1857-58 की घटनाओं से पनपी परिस्थितियों व इस पर चिकित्सकीय हस्तक्षेप के अन्य रूपों पर असंतोष के कारण राज्य एक अधिक ऊर्जावान टीकाकरण अभियान से दूर हो गया। क्योंकि अंग्रेजी सरकार के मन में यह डर था कि कहीं लोगों की इच्छा के विरुद्ध चिकित्सकीय हस्तक्षेप राज्य के विरुद्ध लोगों के मन में प्रतिरोध और विद्रोह की भावना न भड़का दें। इस प्रकार इस तरह के राजनीतिक परिणामों का डर भारत में औपनिवेशिक चिकित्सा प्रणाली पर एक गतिरोध था, जिसने भारत में एलोपैथिक व अंग्रेजी चिकित्सा प्रणाली के विकास एवं विस्तार को अवरूद्ध किया और आगे चलकर बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में राष्ट्र जागरण के कारण भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने भी एलोपैथिक चिकित्सा की अपेक्षा आयुर्वेदिक व यूनानी चिकित्सा को अधिक प्रोत्साहन दिया। हालांकि पाश्चात्य चिकित्सा में आए इस गतिरोध के बावजूद भी ब्रिटिश शासन के अंतिम दशकों तक भी सरकार द्वारा बड़े पैमाने पर टीकाकरण किया जा रहा था। 1936 से 1945 के बीच अकेले मद्रास प्रांत में औसतन 43 मिलियन आबादी का टीकाकरण किया गया। ब्रिटिश राज के प्रस्थान के वर्ष 1947 में भी पूरे देश में 21.3 मिलियन लोगों का टीकाकरण किया गया था। इस प्रकार के आंकड़े सरकार की चिकित्सकीय गतिविधियों के प्रति उच्च स्तर की प्रशासनिक प्रतिबद्धता के साथ-साथ सार्वजनिक स्वीकृति के भी उच्च स्तर की ओर इशारा करते हैं। जिसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि भारत में चेचक की रोकथाम के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा चलाया गया टीकाकरण अभियान अपने उद्देश्य की प्राप्ति में काफी हद तक सफल रहा था।

ग्रंथ सूची

- कुमार, अनिल. (1951). मेडिसिन एंड द राज : ब्रिटिश मेडिकल पॉलिसी इन इंडिया, 1853 1911. अल्तामीरा प्रेस, वॉलनट क्रीक, लंदन।
- अर्नोल्ड, डेविड. (1993). कोलोनाइजिंग द बॉडी : स्टेट मेडिसिन एंड एपिडेमिक डिज़ीज़ेज़ इन नाइन्टीन्थ सेंचुरी इंडिया. यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्कले।
- अर्नोल्ड, डेविड. (2000). द न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया : साइंस, टेक्नोलॉजी एंड मेडिसिन इन कॉलोनियल इंडिया. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज।
- बाला, पूनम. (2012). इम्पीरियलिज़्म एंड मेडिसिन इन बंगाल : ए सोशियो-हिस्टॉरिकल पर्सपेक्टिव. सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
- हैरिसन, मार्क एवं पाटी, बिस्वमोय. (2008). सोशल हिस्ट्री ऑफ हेल्थ एंड मेडिसिन इन कॉलोनियल इंडिया. रूटलेज, लंदन।

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

आर्य समाज के सोलह संस्कार : वैदिक परंपरा और समकालीन प्रासंगिकता

रोहित
इतिहास (एम.ए.), नेट/जेआरएफ, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

सारांश

आर्य समाज भारतीय समाज में वैदिक ज्ञान, नैतिक मूल्यों तथा संस्कार-प्रधान जीवन-पद्धति के पुनर्जागरण का एक महत्वपूर्ण आंदोलन रहा है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वैदिक साहित्य को मानव जीवन का सर्वोच्च ज्ञान-स्रोत मानते हुए संस्कारों को व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास का आधार स्वीकार किया। आर्य समाज द्वारा प्रतिपादित सोलह संस्कार मानव जीवन की सम्पूर्ण यात्रा को जन्म-पूर्व अवस्था से लेकर अन्त्येष्टि तक अनुशासित, मर्यादित एवं मूल्यपरक बनाने का प्रयास करते हैं। इन संस्कारों का उद्देश्य केवल धार्मिक अनुष्ठानों का पालन कराना नहीं, बल्कि व्यक्ति के चरित्र, कर्तव्यबोध, सामाजिक उत्तरदायित्व, पारिवारिक समरसता तथा राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना का विकास करना भी है।

आर्य समाज के सोलह संस्कारों की वैदिक आधारभूमि, उनकी दार्शनिक पृष्ठभूमि तथा सामाजिक उपयोगिता का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि आर्य समाज ने वैदिक संस्कारों को रूढ़ियों, अंधविश्वासों एवं कर्मकाण्डों से मुक्त करते हुए उन्हें तर्कसंगत, वैज्ञानिक तथा सार्वभौमिक स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक प्रत्येक संस्कार का मूल उद्देश्य व्यक्ति के जीवन में अनुशासन, शुद्धता, आत्मसंयम, नैतिकता, शिक्षा, परिवार-व्यवस्था तथा सामाजिक सहयोग की भावना को सुदृढ़ करना है। इन संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति को केवल धार्मिक चेतना ही नहीं, बल्कि मानवीय मूल्यों, पर्यावरणीय संवेदनशीलता, लैंगिक समानता, सामाजिक न्याय तथा विश्वबंधुत्व जैसे आदर्शों की ओर भी प्रेरित किया जाता है।

वर्तमान वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, तीव्र नगरीकरण तथा तकनीकी परिवर्तन के युग में पारिवारिक मूल्यों और सांस्कृतिक परम्पराओं के समक्ष अनेक चुनौतियाँ उपस्थित हुई हैं। ऐसे समय में आर्य समाज के सोलह संस्कार केवल धार्मिक विरासत के रूप में नहीं, बल्कि नैतिक शिक्षा, व्यक्तित्व-निर्माण, पारिवारिक एकता, सामाजिक समरसता तथा सांस्कृतिक संरक्षण के प्रभावी माध्यम के रूप में पुनः प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि इन संस्कारों के मूल वैदिक सिद्धान्तों को समकालीन सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप समझकर व्यवहार में अपनाया जाए, तो वे व्यक्ति, परिवार और समाज के समग्र विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। अतः आर्य समाज की संस्कार-परम्परा भारतीय सांस्कृतिक धरोहर का एक सशक्त आयाम है, जिसकी उपयोगिता वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण बनी हुई है।

मुख्य शब्द : आर्य समाज, सोलह संस्कार, महर्षि दयानन्द सरस्वती, वैदिक परम्परा, संस्कार-व्यवस्था, भारतीय

संस्कृति, नैतिक मूल्य, चरित्र निर्माण, सामाजिक समरसता, वैदिक शिक्षा, सांस्कृतिक संरक्षण, समकालीन प्रासंगिकता।

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम एवं समृद्ध संस्कृतियों में से एक है, जिसका मूल आधार वेद, उपनिषद, स्मृतियाँ तथा ऋषियों द्वारा प्रतिपादित जीवन-मूल्य हैं। भारतीय जीवन-दर्शन में संस्कारों को केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि व्यक्ति के व्यक्तित्व-निर्माण, नैतिक विकास तथा सामाजिक उत्तरदायित्व के सशक्त माध्यम के रूप में स्वीकार किया गया है। श्संस्कारश शब्द का अर्थ है—परिष्कार, शुद्धीकरण एवं व्यक्तित्व का उत्कृष्ट निर्माण। वैदिक परंपरा के अनुसार मानव जीवन को श्रेष्ठ, अनुशासित तथा आदर्श बनाने के लिए जन्म से पूर्व गर्भाधान संस्कार से लेकर मृत्यु के उपरांत अन्त्येष्टि संस्कार तक सोलह संस्कारों की व्यवस्था की गई है। इन संस्कारों का उद्देश्य व्यक्ति में शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक गुणों का समन्वित विकास करना है।

उन्नीसवीं शताब्दी में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना करके वैदिक धर्म एवं संस्कृति के पुनर्जागरण का अभियान प्रारम्भ किया। उन्होंने वैदिक संस्कारों को अंधविश्वास, पाखंड, रूढ़िवाद तथा अनावश्यक कर्मकाण्डों से मुक्त कर उनके मूल स्वरूप को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया। आर्य समाज के अनुसार संस्कार मानव जीवन को अनुशासित, नैतिक, वैज्ञानिक एवं विवेकपूर्ण बनाने का प्रभावी माध्यम हैं। इन संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति में सत्य, अहिंसा, आत्मसंयम, कर्तव्यनिष्ठा, पारिवारिक सद्भाव, सामाजिक समरसता तथा राष्ट्रप्रेम जैसे उच्च आदर्शों का विकास होता है। आर्य समाज ने स्त्री-शिक्षा, समानता, वैदिक शिक्षा, सामाजिक सुधार तथा मानवतावादी दृष्टिकोण को संस्कार-व्यवस्था से जोड़कर उसे आधुनिक समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप भी बनाया।

वर्तमान समय में वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, तकनीकी परिवर्तन तथा बदलती जीवनशैली के कारण पारिवारिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के समक्ष अनेक चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं। ऐसे परिवेश में आर्य समाज के सोलह संस्कारों का पुनर्मूल्यांकन अत्यंत आवश्यक है। प्रस्तुत शोध-पत्र में इन संस्कारों की वैदिक आधारभूमि, आर्य समाज द्वारा उनके पुनर्स्थापन, सामाजिक उपयोगिता तथा समकालीन प्रासंगिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है, जिससे यह स्पष्ट किया जा सके कि ये संस्कार आज भी व्यक्ति, परिवार और समाज के नैतिक एवं सांस्कृतिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

शोध के उद्देश्य

- आर्य समाज द्वारा प्रतिपादित सोलह संस्कारों के वैदिक स्वरूप एवं दार्शनिक आधार का अध्ययन करना।
- संस्कारों की सामाजिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक उपयोगिता का विश्लेषण करना।
- आधुनिक समाज में सोलह संस्कारों की प्रासंगिकता एवं व्यावहारिक उपयोगिता का मूल्यांकन करना।
- भारतीय सांस्कृतिक संरक्षण एवं चरित्र-निर्माण में आर्य समाज की संस्कार-परम्परा के योगदान का अध्ययन करना।

शोध पद्धति : प्रस्तुत शोध-पत्र वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध-पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के लिए महर्षि दयानन्द सरस्वती के ग्रंथ, वैदिक साहित्य, संस्कार-विधि, शोध-पत्र, संदर्भ-ग्रंथ तथा प्रकाशित शोध-अध्ययनों का उपयोग किया गया है। उपलब्ध द्वितीयक स्रोतों के तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक विश्लेषण के आधार पर आर्य समाज के सोलह संस्कारों की वैदिक परंपरा तथा समकालीन प्रासंगिकता का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

आर्य समाज का परिचय एवं वैदिक दृष्टिकोण

आर्य समाज उन्नीसवीं शताब्दी का एक महत्वपूर्ण सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आंदोलन है, जिसकी स्थापना महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 10 अप्रैल 1875 को मुंबई में की थी। इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य वेदों की ओर लौटने का आह्वान करते हुए भारतीय समाज में व्याप्त अंधविश्वास, पाखंड, जातिगत भेदभाव, मूर्तिपूजा, बाल-विवाह, अशिक्षा तथा अन्य सामाजिक

कुरीतियों का उन्मूलन करना था। महर्षि दयानन्द का स्पष्ट मत था कि वेद समस्त ज्ञान का मूल स्रोत हैं तथा मानव जीवन के नैतिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक विकास का सर्वोत्तम मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। इसी आधार पर आर्य समाज ने सत्य, ज्ञान, न्याय, समानता तथा मानव-कल्याण को अपने मूल सिद्धांतों के रूप में स्वीकार किया।

आर्य समाज का वैदिक दृष्टिकोण पूर्णतः तर्क, वैज्ञानिकता तथा नैतिकता पर आधारित है। इसके अनुसार ईश्वर एक, निराकार, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ तथा न्यायकारी है और समस्त सृष्टि उसी के नियमों के अनुसार संचालित होती है। आर्य समाज वेदों को अपौरुषेय एवं सार्वभौमिक ज्ञान का स्रोत मानते हुए प्रत्येक व्यक्ति को उनका अध्ययन एवं मनन करने का अधिकार प्रदान करता है। इस दृष्टिकोण में धर्म का वास्तविक स्वरूप सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग तथा लोककल्याण के लिए कर्तव्यपालन है। इसलिए आर्य समाज धार्मिक आडंबरों की अपेक्षा सदाचार, आत्मानुशासन, यज्ञ, स्वाध्याय, शिक्षा तथा सेवा को अधिक महत्त्व देता है।

इसी वैदिक विचारधारा के आधार पर आर्य समाज ने सोलह संस्कारों को मानव जीवन के सर्वांगीण विकास का आधार माना है। इन संस्कारों का उद्देश्य व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक महत्वपूर्ण चरण को नैतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से जोड़ना है। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक प्रत्येक संस्कार व्यक्ति में शुद्ध आचरण, आत्मसंयम, कर्तव्यनिष्ठा, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा मानवीय मूल्यों का विकास करता है। वर्तमान समय में जब सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, तब आर्य समाज का वैदिक दृष्टिकोण भारतीय संस्कृति की संरक्षण-परम्परा तथा मूल्यपरक जीवन-पद्धति को सुदृढ़ बनाने में आज भी अत्यंत प्रासंगिक एवं प्रेरणादायक सिद्ध होता है।

सोलह संस्कारों का क्रमवार विवेचन

वैदिक परम्परा में मानव जीवन को जन्म से पूर्व गर्भाधान संस्कार से लेकर मृत्यु के उपरान्त अन्त्येष्टि संस्कार तक सोलह संस्कारों द्वारा संस्कारित एवं अनुशासित करने की व्यवस्था की गई है। आर्य समाज इन संस्कारों को व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास का आधार मानता है। प्रत्येक संस्कार जीवन के किसी विशेष चरण का प्रतिनिधित्व करता है तथा व्यक्ति को कर्तव्य, सदाचार, आत्मसंयम एवं सामाजिक उत्तरदायित्व की ओर प्रेरित करता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इन संस्कारों को वैदिक सिद्धान्तों के अनुरूप सरल, तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक स्वरूप में समाज के समक्ष प्रस्तुत किया।

1. गर्भाधान संस्कार : यह सोलह संस्कारों का प्रथम संस्कार है, जिसका उद्देश्य श्रेष्ठ एवं स्वस्थ संतान की प्राप्ति के लिए मानसिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक शुद्धता स्थापित करना है। यह संस्कार उत्तरदायी मातृत्व एवं पितृत्व की भावना को विकसित करता है।

2. पुंसवन संस्कार : यह संस्कार गर्भस्थ शिशु के स्वस्थ एवं संतुलित विकास की मंगलकामना के लिए किया जाता है। इसका उद्देश्य माता के स्वास्थ्य एवं गर्भस्थ शिशु के कल्याण के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना है।

3. सीमन्तोन्नयन संस्कार : यह संस्कार गर्भवती महिला के मानसिक स्वास्थ्य, प्रसन्नता एवं सुरक्षा के लिए किया जाता है। इससे परिवार में मातृत्व के सम्मान एवं संरक्षण की भावना सुदृढ़ होती है।

4. जातकर्म संस्कार : शिशु के जन्म के तुरंत बाद यह संस्कार किया जाता है। इसका उद्देश्य नवजात शिशु के स्वस्थ, मंगलमय एवं संस्कारित जीवन का शुभारम्भ करना है।

5. नामकरण संस्कार : इस संस्कार में शिशु का अर्थपूर्ण एवं प्रेरणादायक नाम रखा जाता है। नाम व्यक्ति की पहचान के साथ उसके सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों का भी प्रतीक माना जाता है।

6. निष्क्रमण संस्कार : इस संस्कार के अंतर्गत शिशु को पहली बार घर से बाहर प्राकृतिक वातावरण में ले जाया जाता है। इसका उद्देश्य प्रकृति के प्रति अपनत्व एवं स्वस्थ जीवन की भावना विकसित करना है।

7. अन्नप्राशन संस्कार : इस संस्कार में शिशु को पहली बार अन्न ग्रहण कराया जाता है। इसका उद्देश्य संतुलित

पोषण, उत्तम स्वास्थ्य एवं शारीरिक विकास की कामना करना है।

8. चूड़ाकर्म संस्कार : इस संस्कार में शिशु के बालों का प्रथम मुंडन किया जाता है। इसे शारीरिक स्वच्छता, स्वास्थ्य तथा मानसिक विकास से जोड़ा जाता है।

9. कर्णवेध संस्कार : इस संस्कार में शिशु के कान छेदे जाते हैं। वैदिक परम्परा में इसे स्वास्थ्य, सौन्दर्य एवं सांस्कृतिक परम्परा का प्रतीक माना गया है।

10. उपनयन संस्कार : यह संस्कार शिक्षा एवं अनुशासित जीवन में प्रवेश का प्रतीक है। इसके माध्यम से बालक या बालिका को ज्ञान, स्वाध्याय एवं सदाचार का मार्ग अपनाने की प्रेरणा दी जाती है।

11. वेदारम्भ संस्कार : इस संस्कार द्वारा वेदों एवं अन्य विद्याओं के अध्ययन का विधिवत प्रारम्भ किया जाता है। इसका उद्देश्य ज्ञानार्जन, विवेक एवं बौद्धिक विकास को प्रोत्साहित करना है।

12. समावर्तन संस्कार : यह संस्कार शिक्षा पूर्ण होने के उपरान्त सम्पन्न किया जाता है। इसका उद्देश्य शिक्षित व्यक्ति को समाज एवं राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वों का बोध कराना है।

13. विवाह संस्कार : विवाह संस्कार गृहस्थ जीवन का आधार माना जाता है। इसका उद्देश्य पति-पत्नी के मध्य सहयोग, समानता, उत्तरदायित्व एवं आदर्श पारिवारिक जीवन की स्थापना करना है।

14. वानप्रस्थ संस्कार : इस संस्कार में व्यक्ति धीरे-धीरे सांसारिक आसक्ति से मुक्त होकर समाज-सेवा एवं आत्मचिंतन की ओर अग्रसर होता है। यह जीवन में संयम एवं संतुलन का संदेश देता है।

15. संन्यास संस्कार : संन्यास जीवन का वह चरण है जिसमें व्यक्ति पूर्ण रूप से आध्यात्मिक साधना एवं लोककल्याण के लिए स्वयं को समर्पित करता है। इसका उद्देश्य आत्मज्ञान एवं मोक्ष की प्राप्ति है।

16. अन्त्येष्टि संस्कार : यह मानव जीवन का अंतिम संस्कार है, जो मृत्यु के उपरान्त वैदिक रीति से सम्पन्न किया जाता है। इसका उद्देश्य शरीर की नश्वरता तथा आत्मा की अमरता का बोध कराते हुए जीवन के शाश्वत सत्य को स्वीकार करना है।

उपर्युक्त सोलह संस्कारों का मुख्य उद्देश्य केवल धार्मिक परम्पराओं का निर्वाह करना नहीं है, बल्कि व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक चरण को नैतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से जोड़ना भी है। आर्य समाज ने इन संस्कारों को वैदिक सिद्धान्तों के अनुरूप सरल, तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान कर उन्हें सामाजिक जीवन के लिए अधिक उपयोगी बनाया। वर्तमान समय में भी ये संस्कार व्यक्तित्व-निर्माण, पारिवारिक एकता, सामाजिक समरसता तथा भारतीय सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

समकालीन समाज में सोलह संस्कारों की प्रासंगिकता

वर्तमान समय वैश्वीकरण, तीव्र नगरीकरण, तकनीकी विकास तथा उपभोक्तावादी जीवनशैली का युग है। इन परिवर्तनों के कारण पारिवारिक संरचना, सामाजिक संबंधों तथा नैतिक मूल्यों में व्यापक परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। भौतिक प्रगति के साथ-साथ जीवन में तनाव, पारिवारिक विघटन, नैतिक पतन, सामाजिक असमानता तथा सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास जैसी समस्याएँ भी बढ़ी हैं। ऐसे परिवेश में आर्य समाज द्वारा प्रतिपादित सोलह संस्कार आज भी अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होते हैं, क्योंकि ये केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व-निर्माण एवं सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रभावी साधन हैं। सोलह संस्कार व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक महत्वपूर्ण चरण को अनुशासन, नैतिकता, आत्मसंयम तथा कर्तव्यबोध से जोड़ते हैं। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक प्रत्येक संस्कार जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण, परिवार के प्रति उत्तरदायित्व तथा समाज के प्रति समर्पण की भावना विकसित करता है।

आर्य समाज की संस्कार-व्यवस्था शिक्षा, समानता, स्त्री-सम्मान, वैज्ञानिक सोच, पर्यावरण संरक्षण तथा मानवीय मूल्यों को विशेष महत्त्व देती है। यही कारण है कि आधुनिक समाज में इन संस्कारों की उपयोगिता केवल धार्मिक क्षेत्र तक सीमित

नहीं रहकर सामाजिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक विकास तक विस्तृत हो गई है। आज के समय में जब युवा पीढ़ी वैश्विक संस्कृति के प्रभाव में अपनी सांस्कृतिक जड़ों से दूर होती जा रही है, तब सोलह संस्कार भारतीय संस्कृति, वैदिक परम्परा एवं नैतिक आदर्शों से जुड़ने का सशक्त माध्यम बन सकते हैं। ये संस्कार परिवार में पारस्परिक सम्मान, पीढ़ियों के बीच संवाद, सामाजिक समरसता तथा राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। साथ ही, आर्य समाज ने इन संस्कारों को रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों से मुक्त कर तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है, जिससे वे आधुनिक शिक्षित समाज के लिए भी स्वीकार्य बनते हैं।

अतः कहा जा सकता है कि आर्य समाज के सोलह संस्कार वर्तमान युग की सामाजिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करने की क्षमता रखते हैं। यदि इनके मूल वैदिक सिद्धान्तों को व्यवहारिक जीवन में अपनाया जाए, तो ये व्यक्तित्व-निर्माण, सांस्कृतिक संरक्षण, सामाजिक सद्भाव तथा मानव-कल्याण की दिशा में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हो सकते हैं। इसलिए समकालीन समाज में इन संस्कारों की प्रासंगिकता केवल ऐतिहासिक या धार्मिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक, नैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

आर्य समाज के संस्कारों का सामाजिक एवं नैतिक प्रभाव

आर्य समाज के सोलह संस्कार भारतीय समाज में केवल धार्मिक परम्पराओं के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक एवं नैतिक विकास के महत्वपूर्ण साधनों के रूप में भी देखे जाते हैं। इन संस्कारों का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के जीवन को अनुशासित, मूल्यपरक तथा समाजोपयोगी बनाना है। आर्य समाज ने वैदिक संस्कारों को मानव जीवन के विभिन्न चरणों से जोड़ते हुए उनमें नैतिक शिक्षा, सामाजिक उत्तरदायित्व और मानवीय मूल्यों को विशेष स्थान दिया है। इन संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति में सत्य, अहिंसा, आत्मसंयम, परोपकार, कर्तव्यनिष्ठा तथा सहयोग की भावना विकसित होती है। आर्य समाज की संस्कार-व्यवस्था परिवार और समाज के मध्य मजबूत संबंध स्थापित करने में सहायक होती है। नामकरण, उपनयन, विवाह जैसे संस्कार व्यक्ति को पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों का बोध कराते हैं।

विवाह संस्कार के माध्यम से पति-पत्नी के बीच समानता, सहयोग एवं सम्मान की भावना को बढ़ावा दिया जाता है, जबकि उपनयन एवं वेदारम्भ संस्कार शिक्षा, ज्ञान और अनुशासन के महत्व को स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार संस्कार व्यक्ति को एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में विकसित करने में सहायता करते हैं। नैतिक दृष्टि से भी आर्य समाज के संस्कार अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये व्यक्ति को आत्मनिरीक्षण, सदाचार और उत्तम आचरण की प्रेरणा देते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कारों को बाहरी कर्मकाण्डों की अपेक्षा आंतरिक शुद्धता एवं चरित्र निर्माण का माध्यम माना। आर्य समाज द्वारा स्त्री शिक्षा, सामाजिक समानता, अंधविश्वास उन्मूलन और मानव सेवा जैसे कार्यों को संस्कारों की व्यापक भावना से जोड़ा गया।

वर्तमान समय में जब समाज अनेक नैतिक एवं सांस्कृतिक चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब आर्य समाज के संस्कार सामाजिक सुधार एवं मूल्य आधारित जीवन के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं। इन संस्कारों के माध्यम से नई पीढ़ी को अपनी सांस्कृतिक विरासत से जोड़ने के साथ-साथ आधुनिक जीवन में नैतिक संतुलन बनाए रखने की प्रेरणा मिलती है। अतः आर्य समाज के संस्कार सामाजिक एकता, नैतिक विकास और सांस्कृतिक संरक्षण के प्रभावी माध्यम के रूप में आज भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ

आर्य समाज के सोलह संस्कार भारतीय संस्कृति एवं वैदिक जीवन-दर्शन की अमूल्य धरोहर हैं, किन्तु वर्तमान समय में इनके समक्ष अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। वैश्वीकरण, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, उपभोक्तावादी जीवनशैली, संयुक्त परिवारों का विघटन तथा धार्मिक परम्पराओं के प्रति घटती रुचि के कारण नई पीढ़ी संस्कारों के वास्तविक स्वरूप से धीरे-धीरे दूर होती जा रही है। अनेक लोग संस्कारों को केवल धार्मिक अनुष्ठान या औपचारिक परम्परा मानते हैं, जबकि उनका

वास्तविक उद्देश्य व्यक्तित्व-निर्माण, नैतिक विकास एवं सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्माण है। इसके अतिरिक्त संस्कारों के वैदिक स्वरूप के संबंध में पर्याप्त जानकारी का अभाव तथा आधुनिक जीवन की व्यस्तता भी इनके व्यापक पालन में बाधक बन रही है।

इसके विपरीत, वर्तमान समय में इन संस्कारों की उपयोगिता और संभावनाएँ अत्यंत व्यापक हैं। यदि सोलह संस्कारों को उनके मूल वैदिक सिद्धान्तों, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा नैतिक मूल्यों के साथ समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जाए, तो वे व्यक्तित्व-निर्माण, पारिवारिक एकता, सामाजिक समरसता तथा सांस्कृतिक संरक्षण में प्रभावी भूमिका निभा सकते हैं। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, आर्य समाज की संस्थाओं तथा सामाजिक संगठनों के माध्यम से संस्कारों के मूल उद्देश्य का प्रचार-प्रसार किया जाना आवश्यक है। डिजिटल माध्यमों, शोध-अध्ययनों एवं जन-जागरूकता कार्यक्रमों के द्वारा भी नई पीढ़ी को इन संस्कारों की उपयोगिता से परिचित कराया जा सकता है। इससे भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण के साथ-साथ उत्तरदायी, नैतिक एवं जागरूक नागरिकों के निर्माण में भी सहायता मिलेगी।

चुनौतियाँ	संभावनाएँ
पाश्चात्य संस्कृति एवं उपभोक्तावाद का बढ़ता प्रभाव	वैदिक मूल्यों के पुनर्जागरण का अवसर
संयुक्त परिवारों का विघटन	परिवार-केंद्रित संस्कारों का पुनर्स्थापन
संस्कारों के प्रति जागरूकता का अभाव	शिक्षा एवं जन-जागरूकता कार्यक्रमों का विस्तार
आधुनिक जीवन की व्यस्तता	सरल एवं वैज्ञानिक पद्धति से संस्कारों का पालन
धार्मिक आडंबर एवं भ्रांत धारणाएँ	तर्कसंगत एवं वैदिक दृष्टिकोण का प्रसार
युवा पीढ़ी का सांस्कृतिक मूल्यों से दूर होना	डिजिटल माध्यमों द्वारा संस्कारों का प्रचार-प्रसार

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि चुनौतियाँ अवश्य हैं, किन्तु उचित मार्गदर्शन, वैदिक शिक्षा तथा सामाजिक जागरूकता के माध्यम से इन्हें अवसरों में परिवर्तित किया जा सकता है। आर्य समाज के सोलह संस्कार आज भी भारतीय समाज को नैतिकता, अनुशासन, सामाजिक समरसता तथा सांस्कृतिक गौरव की दिशा में प्रेरित करने की क्षमता रखते हैं। अतः इन संस्कारों का संरक्षण एवं समुचित प्रचार वर्तमान समय की एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक आवश्यकता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-पत्र के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आर्य समाज द्वारा प्रतिपादित सोलह संस्कार केवल धार्मिक अनुष्ठानों की शृंखला नहीं हैं, बल्कि वे मानव जीवन के समग्र विकास की एक सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर इन संस्कारों का पुनर्स्थापन करते हुए उन्हें अंधविश्वास, रूढ़िवाद एवं अनावश्यक कर्मकाण्डों से मुक्त कर तर्कसंगत, नैतिक तथा समाजोपयोगी स्वरूप प्रदान किया। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक प्रत्येक संस्कार व्यक्ति के जीवन के विभिन्न चरणों को अनुशासन, सदाचार, आत्मसंयम, कर्तव्यनिष्ठा तथा सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ता है। आर्य समाज की संस्कार-व्यवस्था भारतीय संस्कृति के संरक्षण, पारिवारिक मूल्यों की स्थापना, नैतिक शिक्षा के प्रसार तथा सामाजिक समरसता को सुदृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

इन संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति में सत्य, अहिंसा, परोपकार, समानता, शिक्षा, आत्मनिर्भरता तथा राष्ट्रप्रेम जैसे उच्च आदर्शों का विकास होता है। यही कारण है कि इनका महत्व केवल धार्मिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि शिक्षा, समाज, संस्कृति तथा राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न आयामों में भी समान रूप से दिखाई देता है। वर्तमान समय में वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति, उपभोक्तावाद तथा बदलती जीवनशैली के कारण पारिवारिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के समक्ष अनेक चुनौतियाँ उत्पन्न

हुई हैं। ऐसी परिस्थितियों में आर्य समाज के सोलह संस्कार भारतीय समाज को नैतिक दिशा प्रदान करने, युवा पीढ़ी को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ने तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करने में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इन संस्कारों के वास्तविक उद्देश्य एवं वैदिक स्वरूप को शिक्षा, शोध, सामाजिक संस्थाओं तथा जन-जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से व्यापक रूप से प्रचारित किया जाए, जिससे समाज में इनके प्रति सही समझ विकसित हो सके।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आर्य समाज के सोलह संस्कार भारतीय सांस्कृतिक विरासत की अमूल्य धरोहर हैं। इनकी प्रासंगिकता केवल अतीत तक सीमित नहीं है, बल्कि वर्तमान एवं भविष्य के समाज के लिए भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। यदि इनके मूल वैदिक सिद्धान्तों को व्यवहारिक जीवन में अपनाया जाए, तो वे नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास के साथ-साथ एक सशक्त, जागरूक और संस्कारित समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। इसलिए आर्य समाज की संस्कार-परम्परा का संरक्षण, संवर्धन तथा समकालीन परिप्रेक्ष्य में पुनर्व्याख्या समय की एक आवश्यक एवं सार्थक आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

- दयानन्द सरस्वती, महर्षि। सत्यार्थ प्रकाश। नई दिल्ली : आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, नई दिल्ली।
- दयानन्द सरस्वती, महर्षि। संस्कार विधि। अजमेर : वैदिक यंत्रालय प्रकाशन।
- दयानन्द सरस्वती, महर्षि। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका। नई दिल्ली : रामलाल कपूर ट्रस्ट।
- आर्य समाज। आर्य समाज के नियम एवं सिद्धांत। नई दिल्ली : सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा।
- पाण्डेय, राजबली। हिन्दू संस्कार : सामाजिक एवं धार्मिक अध्ययन। वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत संस्थान।
- शर्मा, श्रीराम। भारतीय संस्कृति के आधार और संस्कार परम्परा। हरिद्वार : संस्कृति संस्थान।
- तिवारी, कपिल देव। संस्कार और भारतीय संस्कृति। दिल्ली : भारतीय विद्या प्रकाशन।
- द्विवेदी, कपिल। वैदिक साहित्य एवं संस्कृति का अध्ययन। वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन।
- ऋग्वेद संहिता। वैदिक संस्कार एवं जीवन-दर्शन संबंधी मंत्र। गोरखपुर : गीता प्रेस।
- मनुस्मृति। भारतीय सामाजिक एवं संस्कार व्यवस्था का प्राचीन स्रोत। गोरखपुर : गीता प्रेस।
- आर्य प्रतिनिधि सभा। आर्य समाज का इतिहास एवं सामाजिक योगदान। नई दिल्ली : सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा प्रकाशन।
- सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा (आधिकारिक वेबसाइट)। आर्य समाज के सिद्धांत, इतिहास एवं वैदिक विचारधारा संबंधी सामग्री। उपलब्ध : https://sarvadeshikarya.org

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

संवेदना और विवेक के बीच : मोहन राकेश की रूमानी चेतना

रेमीसा सी.यु.
शोधार्थी, हिंदी विभाग, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी
ईमेल : remeesacu7@gmail.com
मोबा. - 8089260731

शोध सारांश

हिंदी साहित्य में मोहन राकेश वह रचनाकार हैं जिन्होंने आधुनिक मनुष्य की चेतना, उसकी भावनात्मक उलझनों और अस्तित्व के संघर्षों को नई गहराई और सच्चाई के साथ अभिव्यक्ति दी। उन्होंने हिंदी नाटक को एक नया मोड़ देते हुए उसमें मनोवैज्ञानिक यथार्थ और आत्मविश्लेषण की दृष्टि जोड़ी। राकेश के यहाँ प्रेम केवल भावना का प्रस्फुटन नहीं, बल्कि आत्म-खोज की प्रक्रिया है; वहीं संवादहीनता उनके साहित्य में सामाजिक टूटन से अधिक, व्यक्ति की आंतरिक रिक्तता और मानसिक विखंडन का प्रतीक बन जाती है। उनकी लेखनी में संवेदना और चिंतन का ऐसा संतुलन मिलता है जो उन्हें हिंदी ही नहीं, बल्कि विश्व साहित्य की आधुनिक रोमानी परंपरा से भी जोड़ता है। मोहन राकेश की रचनाओं पर पाश्चात्य साहित्य - विशेषतः गोएथे, प्रूस्ट, दोस्तोएव्स्की, ब्रॉण्टे भगिनियाँ, इब्सन और चेख़ोव का गहरा प्रभाव दिखाई देता है, किंतु उन्होंने इन प्रभावों को भारतीय अनुभव-संवेदना के साथ संयोजित कर एक नई रचनात्मक दृष्टि विकसित की। उनके पात्र पश्चिमी रोमांटिकता के आत्मसंघर्ष, स्मृति और प्रेम की जटिलता को जीते हुए भी भारतीय सामाजिक यथार्थ में रचे-बसे हैं। इस प्रकार, मोहन राकेश का साहित्य पश्चिमी रोमांटिक चेतना और भारतीय आधुनिकता के संगम का अद्वितीय उदाहरण बनकर उभरता है।

प्रस्तावना

'हिंदी नाट्य साहित्य में भारतेंदु और प्रसाद के बाद यदि लीक से हटकर कोई नाम उभरता है तो मोहन राकेश का।'[1] मोहन राकेश हिंदी के आधुनिक गद्य साहित्य में वह नाम हैं जिन्होंने कथा और नाटक दोनों विधाओं को एक नई संवेदना और सौंदर्य दृष्टि दी। वे आधुनिक मनुष्य की आंतरिक बेचैनी और रूमानी चेतना के दार्शनिक व्याख्याकार भी हैं। राकेश की रचनाओं में प्रेम, संवाद, अकेलापन और असफलता जैसे तत्व किसी भावुक दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि आत्म-संघर्ष और अस्तित्व-बोध के रूप में उभरते हैं। उनकी रचनाएँ उस युग की उपज हैं जब स्वतंत्रता के बाद का भारतीय समाज परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व से जूझ रहा था। व्यक्ति अब सामूहिकता से हटकर अपने भीतर की अर्थ-तलाश में लगा था। इस परिस्थिति में राकेश की रचनाएँ मनुष्य की उस मानसिक दशा का सजीव चित्र प्रस्तुत करती हैं जिसमें प्रेम और जीवन के अर्थ एक-दूसरे से टकराते हैं।

मोहन राकेश की रूमानी दृष्टि में कोई पलायन नहीं है; वह वास्तविकता के भीतर निहित संवेदना की खोज करती है। उन्होंने प्रेम को केवल हृदयगत अनुभव न मानकर चिंतन और आत्मबोध की प्रक्रिया बना दिया। इसीलिए उनके पात्र जीवन की विडंबनाओं के बीच भी प्रेम की तलाश को अपनी आंतरिक यात्रा के रूप में जीते हैं। उनकी रूमानियत इस दृष्टि से अद्वितीय है कि वह न तो केवल आदर्श है, न ही केवल यथार्थ - वह इन दोनों के बीच से गुजरती हुई मनुष्य के अस्तित्व और संबंधों की जटिलता को उजागर करती है।

रूमानी तत्व साहित्य में मनुष्य की भावनात्मक, कल्पनात्मक और आत्मानुभूतिपरक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति हैं। ये केवल भावुकता नहीं, बल्कि उस संघर्ष की अभिव्यक्ति है, जहाँ व्यक्ति अपने अस्तित्व का अर्थ खोजता है। रोमांटिक दृष्टि जीवन को यथार्थ की सीमाओं में बाँधने के बजाय उसमें स्वप्न और अनुभूति की गहराई जोड़ती है। हिंदी साहित्य में यह परंपरा छायावाद से आधुनिकतावाद तक विकसित हुई, परंतु मोहन राकेश ने इसे एक नए रूप में पुनर्परिभाषित किया, जहाँ प्रेम और संवेदना बौद्धिक आत्मसंघर्ष के रूप में प्रकट होते हैं। 'आधुनिक भाव-बोध पश्चिम में उन्नीसवीं शती के मध्य से बड़ी तीव्रता से जागा और देखते-ही-देखते चारों ओर फैल गया जिससे अनेक कला-आन्दोलन और चिंतन प्रस्फुटित हए। फलतः यथार्थवाद, प्रकृतवाद, प्रतीकवाद, अभिव्यक्तिवाद, एपिक थिएटर, अतियथार्थवाद, असंगातवाद आदि अनेक मतवादों ने समय-समय पर नाट्य लेखन और मंचन की अन्यान्य प्रयोग्धार्मिताओं और विविधताओं को जन्म दिया। इनके कारण नाटक की क्षेत्रीय और देशीय सीमाएं टूटीं और विश्व-भर में वे सामानांतर प्रवृत्तियां उभरीं, जिनमें नाटक की समस्त देशीयता के बावजूद उसकी एक सामान्य पृष्टभूमि सामने आई।'[2] उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप में जब औद्योगिकता और विवेकवाद से मानवीय संवेदना दबने लगी, तब गोएथे, वड्र्सवर्थ, शेली, बायरन, प्रूस्ट, हाडी, टॉल्सटॉय और दोस्तोएव्स्की जैसे लेखकों ने आत्मा की पुकार को साहित्य में पुनः प्रतिष्ठित किया। इस परंपरा में प्रेम केवल सामाजिक संबंध नहीं, बल्कि आत्मा के विस्तार का साधन बना। यही भावभूमि राकेश की रचनात्मक चेतना को गहराई देती है।

गोएथे के 'द सॉरोज़ ऑफ यंग वर्थर' में प्रेम आत्मविनाश होकर भी आत्मबोध का माध्यम बनता है। यह दृष्टि राकेश के पात्रों में भी दिखती है, जहाँ प्रेम सुखांत नहीं, बल्कि आत्मसंघर्ष का रूप लेता है। फ्रांसीसी लेखक प्रूस्ट और रूसी लेखक दोस्तोएव्स्की के प्रभाव से उनके साहित्य में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद आया। प्रूस्ट और दोस्तोएव्स्की के आत्मविश्लेषण को उन्होंने भारतीय संवेदना में ढाल दिया, जिससे उनकी भाषा मनोवैज्ञानिक गहराई और आत्मसंवाद का माध्यम बन गई।

ब्रॉण्टे भगिनियों और हेनरी जेम्स की नायिकाओं ने राकेश की स्त्री पात्रों को विचारशील आयाम दिया। जेन आयर की नैतिक दृढ़ता, इसाबेल आर्चर की स्वतंत्र चेतना और कैथरीन अर्नशॉ की बेचैनी राकेश की नायिकाओं में नए रूप में उभरती हैं। उन्होंने इन गुणों को भारतीय सामाजिक यथार्थ की सीमाओं में स्थापित किया। उनकी स्त्रियाँ अन्ना कैरेनिना की भाँति प्रेम और मर्यादा के बीच संघर्ष करती हैं, परंतु अंततः आत्मबोध की दिशा में अग्रसर होती हैं। थॉमस हार्डी की 'टैस ऑफ द अर्बरविल्स' और 'जूड द ऑब्स्क्योर', टॉल्सटॉय की 'अन्ना कैरेनिना' तथा फ्लोबेयर की 'मैडम बोवरी' में प्रेम सामाजिक ढाँचों से टकराकर विफलता में बदल जाता है। राकेश ने इस असफलता को भारतीय पारिवारिक यथार्थ का प्रतीक बनाया और उसे सामाजिक आलोचना का रूप दिया।

नाट्य लेखन में राकेश ने हेनरिक इब्सन और अंतोन चेख़ोव से प्रेरणा ली। 'अस्तित्व की जागरूकता को लेकर आधुनिक नाटक की जो सुरुआत हुई उसमें इब्सेन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इब्सेन ने अपने नाटकों में नए प्रश्न उठाए और अपने सारे कृतित्व को प्राचीन नाटक की रुढियों के अस्वीकार में प्रतिफलित किया।'[3] 'दूसरी ओर चेखोव ने यथार्थ की कारुणिक अभिव्यक्ति की। उसने जीवन को उस मानवीय बिंदु से देखा जहाँ से सहानुभूति की किरण नज़र आती है। किन्तु उसने किसी एक का एकांगी समर्थन नहीं किया- न सत् का, न असत् का। सर्वत्र एक प्रकार की तटस्थता और संतुलित भावना रखी, जो व्यक्ति के भीतर अस्तित्व के दोनों चोरों को खोजती है।'[4] मोहन राकेश ने इस तकनीक को भारतीय पारिवारिक ढाँचे से जोड़कर नया अर्थ दिया। उनके पात्र स्मृति और अधूरे अनुभवों के बंधन में वर्तमान जीते हैं - यह प्रवाह प्रूस्ट की स्मृति और दोस्तोएव्स्की की अंतर्विरोधी चेतना से मेल खाता है।

राकेश पर पश्चिमी प्रभाव बहुस्तरीय है—विषय, मनोविज्ञान, संरचना और नाट्य-तकनीक तक विस्तृत। उन्होंने गोएथे से भावनात्मक गहराई, ब्रॉण्टे से स्त्री-स्वायत्तता, प्रूस्ट और दोस्तोएव्स्की से आत्ममंथन, तथा इब्सन और चेख़ोव से मौन और संवादहीनता की तकनीक ग्रहण की। इन प्रभावों को उन्होंने भारतीय जीवन और सामाजिक अनुभव में पुनर्स्थापित किया। राकेश ने पश्चिमी रोमांटिकता का अनुकरण नहीं किया, बल्कि उसे भारतीय आधुनिकता के साथ जोड़ा। गोएथे का प्रेम जहाँ आत्मघाती उत्कंठा है, वहीं राकेश के यहाँ आत्मानुशासन बन जाता है; प्रूस्ट की स्मृति जहाँ बौद्धिक आत्मालाप है, वहीं उनके यहाँ वह सामाजिक स्मृति में रूपांतरित होती है। इब्सन का मौन जहाँ व्यक्तिगत विद्रोह का प्रतीक है, वहीं राकेश के यहाँ वही पारिवारिक विघटन और सामाजिक तनाव का संकेत बन जाता है। इस प्रकार मोहन राकेश का साहित्य पश्चिमी रोमांटिकता और भारतीय आधुनिकता के संगम का अनूठा उदाहरण है, जिसने प्रेम, अकेलेपन और असफलता को आत्मबोध की प्रक्रिया बनाकर हिंदी साहित्य को एक नई रूमानी दिशा दी।

मोहन राकेश के साहित्य में प्रेम केवल भावनाओं की कोमल अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि बौद्धिक आत्ममंथन और अस्तित्वगत संघर्ष का माध्यम है। उनके पात्र प्रेम को अनुभव करते हुए उसके भीतर के तनावों, विरोधाभासों और मानसिक अस्थिरता से जूझते हैं। प्रेम राकेश के यहाँ 'अनुभव' नहीं, 'प्रश्न' है - एक ऐसा प्रश्न जो व्यक्ति की चेतना को झकझोर देता है और उसे आत्मसाक्षात्कार की दिशा में प्रेरित करता है। 'आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास और मल्लिका का प्रेम केवल भावनात्मक संबंध नहीं, बल्कि कला और जीवन की दो दृष्टियों का टकराव है। यह टकराव वड्र्सवर्थ की रोमानी कल्पना और हार्डी की नियतिवादी संवेदना के बीच झूलता प्रतीत होता है। 'कवि कालिदास से संबंधित इस नाटक में कालिदास के कवि-रूप में प्रसिद्ध होने के बाद की स्थिति मुख्य नहीं है—मुख्य है एक बनते हुए कवि और प्रसिद्धी के चरम शिखर पर पहुँचने वाले कवि का चित्रण जिसकी मूल प्रेरणा है मल्लिका।'[5] मल्लिका का प्रेम उसे बाँधता नहीं, बल्कि मुक्त करता है; वहीं कालिदास का प्रेम उसे रचनात्मकता की ओर धकेलता है, किंतु साथ ही उसे सामाजिक रूप से अकेला कर देता है। इसी तरह आधे-अधूरे में सावित्री का प्रेम आत्मसंतोष नहीं देता, बल्कि भीतर के रिक्त स्थानों को उजागर करता है। सावित्री का प्रेम एम्मा बोवरी या अन्ना कैरेनिना की तरह सामाजिक विडंबनाओं से टकराकर आत्मबोध में रूपांतरित होता है।

राकेश की रूमानियत इस प्रकार संवेदना और विवेक का सुसंतुलित संगम बन जाती है। वे प्रेम को न तो पवित्र स्वप्न बनाते हैं और न ही केवल सामाजिक अनुशासन; उनके यहाँ प्रेम एक मानसिक प्रयोगशाला है, जहाँ व्यक्ति अपने भीतर की परतों को खोलकर स्वयं से साक्षात्कार करता है। प्रेम का यह द्वंद्वात्मक स्वरूप - जहाँ भावना और बुद्धि साथ चलते हैं - राकेश को आधुनिक रोमानी परंपरा का वह लेखक बनाता है जो प्रेम को अर्थ, असफलता और आत्मानुशासन की त्रयी में देखता है।

मोहन राकेश की नारी पात्राएँ हिंदी साहित्य में आत्मनिर्भर चेतना, स्वायत्त नैतिकता और संवेदनशील बुद्धिमत्ता की प्रतीक हैं। उन्होंने स्त्री को केवल प्रेम की प्रतीक्षा करने वाली या त्याग की मूर्ति के रूप में नहीं, बल्कि अपने निर्णयों की स्वामी के रूप में चित्रित किया। राकेश की नायिकाएँ पश्चिमी रोमानी परंपरा की जेन आयर, इसाबेल आर्चर और कैथरीन अर्नशॉ जैसी चेतन स्त्रियों की भारतीय प्रतिध्वनि प्रतीत होती हैं - जो प्रेम को आत्म-गौरव से जोड़ती हैं, न कि समर्पण से। उनके भीतर भावनाओं की गहराई है, किंतु उस भावुकता को विवेक और आत्मसम्मान नियंत्रित करता है।

'आषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका कालिदास से गहराई से प्रेम करती है, परंतु जब उसे लगता है कि यह प्रेम उसकी रचनात्मक स्वतंत्रता को बाधित कर सकता है, वह त्याग का मार्ग चुनती है। उसका यह निर्णय केवल सामाजिक मर्यादा का नहीं, बल्कि आत्म-साक्षात्कार का प्रतीक है - जैसे जेन आयर अपने नैतिक विवेक को प्रेम से ऊपर रखती है। 'आधे-अधूरे' की सावित्री भी प्रेम की विफलता के बावजूद आत्म-विनाश नहीं चुनती; वह टूटकर बिखरती नहीं, बल्कि अपने भीतर एक नई चेतना का जन्म करती है। सावित्री की आत्मजागृति अन्ना कैरेनिना की त्रासदी से आगे बढ़ती है - वह आत्मबोध को विनाश में नहीं, बल्कि जीवित अनुभव में खोजती है। राकेश की स्त्रियाँ प्रेम को भावुक कोमलता से नहीं, बल्कि चेतन संवेदना से जीती हैं। उनके लिए प्रेम केवल बाह्य संबंध नहीं, बल्कि आंतरिक आत्मसंवाद है। वे प्रेम में बराबरी, आत्मसम्मान और

चयन की स्वतंत्रता की पक्षधर हैं। इस दृष्टि से राकेश की नारी पात्राएँ न केवल आधुनिक भारतीय स्त्री-चेतना की प्रवक्ता हैं, बल्कि वैश्विक रोमानी परंपरा में स्त्री के पुनर्परिभाषित स्वरूप का प्रतीक भी हैं।

मोहन राकेश के साहित्य का एक केंद्रीय बिंदु है - संवेदना और संवाद की विफलता। उनके पात्र प्रेम करते हैं, आकांक्षाएँ रखते हैं, परंतु वे संवाद के माध्यम से अपने अनुभवों को अभिव्यक्त नहीं कर पाते। यह संवादहीनता केवल सामाजिक दूरी का परिणाम नहीं, बल्कि आधुनिक व्यक्ति की मानसिक जटिलता की परिणति है। जैसे हीथक्लिफ़ और कैथरीन अपने प्रेम की तीव्रता के बावजूद शब्दहीन रहते हैं, वैसे ही राकेश के पात्र भी भावनाओं की भीड़ में अकेले खड़े हैं। संवाद की यह विफलता ही उन्हें अस्तित्वगत स्तर पर एकाकी बनाती है। 'आधे-अधूरे' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। 'आधे-अधूरे नाटक के पात्रों की खंडित व्यक्तित्व चेतना को स्पष्ट करने में संवादों की यह मनोवैज्ञानिकता अत्यंत सहायक सिद्ध हुई है।'[6] परिवार एक साथ रहते हुए भी भीतर से बिखरा हुआ है। हर पात्र अपने ही अंतर्विरोधों में डूबा है - प्रेम की चाह है, पर उसे व्यक्त करने का माध्यम नहीं। सावित्री और उसके पति के बीच का मौन न केवल वैवाहिक टूटन का प्रतीक है, बल्कि आधुनिक जीवन की दार्शनिक विडंबना भी। यह स्थिति चेख़ोव के 'द सीगल' या 'थ्री सिस्टर्स' के पात्रों की तरह है, जो प्रेम और जीवन की असफलताओं में संवाद का अर्थ खोजते हैं और मौन में खो जाते हैं। राकेश के पात्रों की यह चुप्पी केवल असफलता नहीं, बल्कि एक गहरा आत्म-प्रश्न है। वे प्रेम में अर्थ तलाशते हैं, पर जब संवाद टूट जाता है, तब वही मौन आत्मबोध का माध्यम बन जाता है। यही कारण है कि राकेश की रचनाओं में अधूरापन असफलता नहीं, बल्कि मानव नियति की स्वीकृति बन जाता है।

मोहन राकेश के नाटकों में रूमानी दृष्टिकोण गहरा और जटिल है। उन्होंने हिंदी रंगमंच को भावनात्मक गहराई और मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि से समृद्ध किया। राकेश के नाटक व्यक्ति की भावनाओं, संघर्षों और संवादहीनता को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि दर्शक को केवल कहानी नहीं, बल्कि मानव मन की परतें दिखाई देती हैं। आषाढ़ का एक दिन में प्रेम केवल व्यक्ति की आकांक्षा नहीं, बल्कि कला, सृजन और स्वतंत्रता का संघर्ष है। कालिदास और मल्लिका का प्रेम एस्थेटिक और एथिकल दृष्टियों के द्वंद्व का प्रतीक है। मल्लिका का त्याग रूमानी संवेदना का चरम बिंदु है - वह प्रेम को अपने भीतर के सृजनात्मक विवेक के आगे झुकने नहीं देती। वहीं आधे-अधूरे में सावित्री और उसके परिवार का बिखराव आधुनिक जीवन की विडंबना को मूर्त करता है। यहाँ प्रेम और संवाद की विफलता सामाजिक संरचना के भीतर मौजूद मानसिक रिक्तता की ओर संकेत करती है। राकेश के नाटकों में प्रेम, संवादहीनता और आत्म-संघर्ष एक ही त्रिकोण में मिलते हैं। उनकी भाषा में 'मौन' अर्थपूर्ण हो उठता है, और 'संवाद' आत्मप्रकाश बन जाता है। यह मौन वही भूमिका निभाता है जो चेख़ोव के नाटकों में देखी जाती है - जहाँ शब्दों से अधिक उनकी अनुपस्थिति बोलती है। इस दृष्टि से राकेश का नाट्यलेखन केवल भावनात्मक या सामाजिक नहीं, बल्कि दार्शनिक विमर्श भी है। उन्होंने प्रेम को नाटक के माध्यम से विचार का विषय बनाया और हिंदी रंगमंच में रूमानी चेतना को एक नए मनोवैज्ञानिक गहराव के साथ प्रतिष्ठित किया।

मोहन राकेश की रूमानी चेतना हिंदी साहित्य में आधुनिकता, आत्मबोध और संवेदना के संगम का प्रतिनिधित्व करती है। उन्होंने प्रेम को भावुक अनुभूति से मुक्त कर उसे दार्शनिक और बौद्धिक अनुभव में रूपांतरित किया। उनके लिए प्रेम केवल हृदयगत भावना नहीं, बल्कि आत्म-संघर्ष और अस्तित्व की खोज का माध्यम था। इस दृष्टि से उनकी रूमानी दृष्टि आधुनिक मनुष्य की उस मनोभूमि का दर्पण है जो अर्थ, संबंध और पहचान की तलाश में निरंतर सक्रिय है। उनकी रचनात्मकता में रूमानियत एक बौद्धिक प्रक्रिया है, जहाँ भावना विवेक की पूरक बन जाती है। प्रेम, एकांत और असफलता उनके दृष्टिकोण में आत्मसाक्षात्कार के चरण हैं। राकेश ने पश्चिमी आत्ममंथन की परंपरा को भारतीय यथार्थ में पुनर्परिभाषित किया।

निष्कर्ष

मोहन राकेश का रूमानी दृष्टिकोण निजी प्रेम से आगे बढ़कर सामाजिक और दार्शनिक विमर्श का रूप लेता है। उनके

पात्रों की संवेदना आधुनिक अस्तित्ववाद से जुड़ती है, जो जीवन के अर्थ को उसकी अधूरता में खोजता है। यह अधूरापन उनके यहाँ विफलता नहीं, बल्कि मानव जीवन की स्वाभाविक दशा है। उनकी रचनाशैली में मौन, स्मृति और आत्मचिंतन के माध्यम से जो गहराई उत्पन्न होती है, वह चेख़ोव, इब्सन और दोस्तोएव्स्की की परंपरा से संवाद करती है, पर उसका आधार भारतीय यथार्थ है। पाश्चात्य प्रभावों के बावजूद राकेश का योगदान अनुकरण नहीं, बल्कि संलयन है। उन्होंने आत्मघाती उत्कंठा, संवादहीनता, नारी स्वायत्तता और अस्तित्वगत अधूरेपन जैसे भावों को भारतीय मानसिकता में रूपांतरित किया। उनके यहाँ प्रेम पलायन नहीं, आत्मबोध की गहराई तक उतरने का द्वार है। राकेश की स्त्री पात्राएँ भावना की वस्तु नहीं, आत्मनिर्णय की चेतना हैं। यह दृष्टि उन्हें भारतीय स्त्री-विमर्श के अग्रदूतों में रखती है और पश्चिमी परंपरा से वैचारिक संवाद में भी जोड़ती है, जहाँ प्रेम समानता, स्वतंत्रता और आत्मसम्मान के संतुलन का प्रतीक बनता है।

समग्र रूप में राकेश का रूमानी दृष्टिकोण प्रेम, विवेक और आत्मबोध के उन आयामों को उद्घाटित करता है जहाँ व्यक्ति और समाज, भावना और विचार, तथा यथार्थ और स्वप्न एक साथ संगठित होते हैं। उन्होंने यह सिद्ध किया कि रूमानियत का अर्थ पलायन नहीं, बल्कि आत्म-साक्षात्कार है। उनकी रचनाएँ यह बोध कराती हैं कि प्रेम का सार उसकी असफलता में नहीं, बल्कि आत्म-खोज की सतत यात्रा में निहित है। राकेश ने रूमानी परंपरा को भावुकता से मुक्त कर उसे चिंतन, संवेदना और आत्मज्ञान के उच्च स्तर तक पहुँचाया। उनका दृष्टिकोण मानव अस्तित्व की उस सार्वभौमिक आकांक्षा का प्रतीक है - अर्थ, प्रेम और आत्मबोध की अनंत खोज।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गोविंद चातक, आधुनिक हिंदी नाटक का अग्रदूत : मोहन राकेश(2003), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ.13
2. वही, पृ.14
3. वही, पृ.14
4. वही, पृ.15
5. डॉ. प्रसून प्रसाद, मोहन राकेश के नाटक एक मूल्यांकन (2008), आधार प्रकाशन, पृ.19
6. प्रो.एस.वी.एस.एस नारायण राजू, रंगमच के नाटककार मोहन राकेश (2016), अमन प्रकाशन, पृ.44

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

कहानी संग्रह 'दूत' में स्त्री विमर्श का चित्रण

प्रा.पटेकर विश्वनाथ चंद्रकांत
हिंदी विभागाध्यक्ष,
महात्मा फुले कला, विज्ञान व वाणिज्य महाविद्यालय, पनवेल, जि. रायगड
मो. नं. 9011933917
ईमेल-vishwanathpatekar87@gmail.com

विमर्श

स्त्री विमर्श दो शब्दों से मिलकर बना है- 'स्त्री' और 'विमर्श'। स्त्री का अर्थ महिला, नारी, औरत, लड़की मतलब लिंग के आधार पर स्त्री होना। विमर्श का अर्थ होता है बहस, संवाद, वार्तालाप या विचारों का आदान-प्रदान। अतः स्त्रियों को लेकर होने वाले बहस को हम स्त्री विमर्श कहते हैं। इन विमर्शों के माध्यम से स्त्री विमर्श का अर्थ स्त्री की परंपरागत छवि या पहचान से एक नई स्त्री छवि या पहचान का निर्माण करना है। स्त्री विमर्श एक प्रकार से रूढ़ परंपराओं, मान्यताओं के प्रति असंतोष और उससे मुक्ति का स्वर है। पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे नैतिक मापदंडों, मूल्यों व अंतर्विरोधों को समझने व पहचानने की गहरी अंतर्दृष्टि है।

कई वर्षों से चली आ रही पुरुषों की दासता के विरोध में स्त्री के अधिकारों को लेकर उठायी गयी आवाज को स्त्री विमर्श कहते हैं। परंपराओं से इस समाज व्यवस्था ने पुरुषों को जो छूट प्रदान की है उनमें से कुछ स्त्रियों ने अपने लिए भी वही छूट माँगनी प्रारंभ कर दी, जिसमें प्रमुख रूप से लैंगिक समानता, भेदभाव न होना और घरेलू हिंसा का विरोध, यौन उत्पीड़न का विरोध और समान वेतन का अधिकार जैसे अनेक मुद्दे शामिल हैं।

आज समाज में स्त्रियाँ केवल जनसंख्या का हिस्सा बनकर गिनती में नहीं रहना चाहती बल्कि वे भी पुरुषों की तरह समाज और परिवार में मनुष्य बनकर केन्द्र में आना चाहती हैं और इसके लिए वे अपने अस्तित्व की लड़ाई आरंभ कर चुकी हैं। इस संघर्ष और लड़ाई को स्त्री विमर्श का नाम दे दिया गया है। इस संघर्ष में स्त्री से जुड़े वे सभी मुद्दे शामिल हैं जो वर्षों से इन्हें समाज में लिंग के आधार पर झेलने पड़े हैं। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियों ने पुरुषों की तरह अपने अधिकारों की माँग करनी प्रारंभ कर दी है और यह माँग एक प्रकार के सामाजिक आंदोलन के रूप में उभरी है। यह आंदोलन लैंगिक भेदभाव को स्वीकार नहीं करता है। स्त्री विमर्श में मध्यवर्गीय स्त्री का पूरा संघर्ष प्रमुख रूप से लैंगिक समानता, शारीरिक शोषण, सामाजिक स्वतंत्रता से लेकर आर्थिक स्वतंत्रता तक सिमटा हुआ है। इस धारा की उत्पत्ति मुख्यतः पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरोध के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई है। परन्तु स्त्री विमर्श अपने सवालों के कटघरे में पुरुष को नहीं रखती बल्कि समस्त पुरुष व्यवस्था को खड़ा करती है। अतः कहा जा सकता है कि स्त्री विमर्श का स्वरूप पितृसत्ता के इर्द-गिर्द ही खड़ा रहता है।

स्त्री-विमर्श का अर्थ प्रो. रोहिणी अग्रवाल के अनुसार, ''स्त्री को केंद्र में रखकर समान, संस्कृति, परंपरा एवं इतिहास

का पूनरीक्षण करते हुए स्त्री की स्थिति पर मानवीय दृष्टि से विचार करने की अनवरत प्रक्रिया। स्त्री-विमर्श के अंतर्गत अतीत या समकालीनता प्रमुख नहीं रहती भूतकाल, वर्तमानकाल, भविष्यकाल तीनों में एक दूसरे की अन्विती एवं संगति में विश्लेषण करने का भावप्रधान रहता है। स्त्री-विमर्श चेतना के प्रसार का आख्यान है।"[1]

मंजूल भगत आधुनिककाल की सशक्त लेखिका मानी जाती है। उन्होंने अनेक प्रकार की साहित्य विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है। उनके कहानियों में स्त्री के कई रुपों का चित्रण किया गया है। 'गुलमोहर के गुच्छे', 'क्या छूट गया', आत्महत्या से पहले, कितना छोटा सफ, बावन पत्ते और एक जोकर, सफेद कौआ, दूत, चर्चित कहानियाँ, बूँद, आखरी चोट, अंतिम बयान यह उनके ग्यारह कहानी संग्रह प्रसिद्ध है। इनमें 'दूत' कहानी संग्रह में दस कहानियाँ सम्मिलित है।

'दूत' कहानी संग्रह की पहली कहानी है 'सैलानियों का कश्मीर' जो काश्मीर यात्रा पर आधारित हैं। गुलदुपहरिया, तीसरी औरत, दूत चिनार अपने अपने, की लमें अटकी, कागज की चिंदी, मलबा, बेनूर चेहरे की दावत, अंतिम चोट इन कहानियोंमें स्त्री जीवन के विविध पहलूओं को दर्शाया है। इनकी यह विशेषता हैं कि इसमें समाज के सभी स्तर की स्त्रियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। जीवन के अनेक कटू सत्यों को वाणी देना यह महत्वपूर्ण कार्य मंजूल भगत जैसी संवेदनशील लेखिका ही कर सकती है। स्त्री जीवन से जुड़ी हुई समस्याएँ सामाजिक जीवन से ही संबंधित हैं। पारिवारिक समस्याएँ, आर्थिक समस्याएँ, सामाजिक समस्याएँ इनसे नारी घिरी हुई है। पारिवारिक समस्याओं में अनमेल विवाह, दुराचारी पती, विवाहविच्छेद, परिवार के पुरुषों से जैसे ससूर, देवर इत्यादी से पीड़ित नारियाँ, सास ननद जैसे परिवार के स्त्री सदस्यों से पीड़ित नारीयाँ आदि समस्याएँ दिखाई देती है। आर्थिक समस्याओं के अंतर्गत पैसे के अभाव से घरगृहस्थी चलाने की जिम्मेदारी, अर्थाभाव के कारण परिवार में आनेवाला तनाव, पारिवारिक कलह, असफल जीवन इ. समस्याएँ दिखाई देती है। सामाजिक समस्याओं के अंतर्गत निरूसंतान स्त्री अकेलेपन को झेलती विधवा स्त्री, असहाय बुढ़िया आदि समस्याएँ दिखाई देती है।

दूत कहानी संग्रह में नारी समस्या

परिवार मनुष्य जीवन के लिए एक अनिवार्य अंग है। बिना परिवार के मनुष्य रह ही नहीं सकता। मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज में घूल-मिलकर रहना, उसके कायदे-कानून संभालना उसे अपना कर्तव्य लगता है। सामाजिक जीवन सुचारु रूप से चलाने के लिए परिवार की योजना की गई है। जिसमें एक परिवार में माता-पिता, भाई-बहन, सगे-संबंधी भी मिलकर रह सकते है। एक दूसरे की जिम्मेदारी उठाते है। परंतु संबंधी मे दरार पड़ने पर इन जिम्मेदारियों को टालने की कोशिश परिवार के सदस्य करते रहते है। अनमेल विवाह, विवाहेतर संबंध असफल प्रेम आदि अनेक समस्याएँ दिखाई देती है।

'गुलदुपहरिया' कहानी में पारंपारिक और सामाजिक समस्या दिखाई देती है। कहानी की नायिका गुलदुपहरिया अपने पति असरफी के साथ एक छोटे-से शहर में अपना सुखद वैवाहिक जीवन बीता रही। कुछ दिनों के बाद उनके गाँव से उनके ससूरजी बीमारी के कारण अपने बेटे के घर शहर आ जाते है। असरफी को पिता की तरह मानकर सेवा करती रहती है। ससूर की तबीयत बिल्कुल ठीक हो गई। एक दिन पानका बीड़ा लेने के बहाने वे अपनी बहु से छेड़खानी करने लगते हैं। गुलदुपहरिया ससूर की नीयती को जानती है और वह उनसे दूर रहने की कोशिश करते है। अपने पती को ससूर की इन हरकतो को वह कह नही पाती। उसे लगता है कि उसका पति असरफी अपने पिता पर विश्वास करते हुए मुझे ही कुल्टा कहेगा। एक दिन पति से कहकर ससूर को गाँव भेजते है। गाँव जाने के बाद ससूर जी ने पंचायत बुलाकर बहु की कुल्टा साबित किया। गुलदुपहरिया गाँववाले और पति को सच बात कहने का प्रयास करती है। परंतु कोई उस पर विश्वास नहीं रखता। अंत में गुलदुपहरिया को ही हार माननी पड़ती है।

'मलबा' कहानी में निर्धन बुढ़ियाँ की कहानी चित्रित है। बुढ़िया अपने पती के साथ एक मलबे के पास अपना जीवन गुजार रही है। जो कभी उनका अपना हो जाऐगा ऐसी उनकी आशा थी। ये दोनों शरणार्थी है। उस मलबे के पास अनेक

मजदूर परिवार रहते है। उन स्त्रियों में ऐसी मानसिकता है कि वह अपनी बच्ची को मजदूरनी बना सकें। परंतु अपने लड़के को प्यार-लाड से पालती है। बुढ़िया की बेटी चन्नी अपने ससूराल में खुश है। वह कभी-कभार अपनी माँ से मिलने आती थी। पिता की मृत्यु के बाद चन्नीने अपनी माँ को कुछ दिन तक सहारा दिया बाद में अपने घर गृहस्थी में लगी रही। इस कहानी में भी अपनी पारिवारिक समस्याओं के कारण एक दूसरे का आधार बनानेवाली स्त्रीया और कभी परिस्थिति वश इन संबंधों से दूर रहनेवाली चन्नी जैसी बेटी का चित्रण लेखिका ने सफलता से किया है।

'अंतिमचोट' कहानी इंडो-जर्मन परिवार की कहानी हैं। इसमें सक्सेना, पांडे, शर्मा और उनके अन्य मित्र भारतीय है और उनकी पत्नियाँ जर्मन है। सक्सेना का पती सिगरिड पंडित की पत्नि लुइजा, शर्मा की पत्नी मारी आदि का चित्रण किया है। पंडीत की पत्नी लुइजा माँ नहीं बन सकी। इन मित्रों में ऐसी बाते हो रही है कि ऐसे विवाह अधिकतर बेमेल विवाह माने जा रहे है। ऐसे परिवार में एक-दूसरे के खातीर मनमार कर जीनपड़ रहा है। रीति-रिवाज, खान-पान आदि को लेकर उनमें वाद-विवाद चलते रहतेहै। इन जर्मन स्त्रियों को उनके भारतीय पति मैदे की गुड़िया, छिपकली ऐसे दुषण देते है। माने ये पति लोग उनके दांम्पत्य जीवन पर कोडे बरसा रहे हो। जर्मन स्त्रियों नेभारतीयों के साथ प्रेम कर विवाह ही किया था परंतु इन पतियों ने ऐसे अपशब्द से उनकी निंदा की। यह उनके लिए 'अंतिम चोटे' थी।

'तीसरी औरत' नामक कहानी में गौरव नाम के युवक की कहानी है जो नोकरी के लिए अपने पत्नि को छोड़कर शहर चला गया है। वहाँ ताशा नामक स्त्री के साथ उसकी पहचान होती है और यही पहचान प्रेम से परिवतीत होती है। स्वयं विवाहित होते हुए भी गौरव ताशा के साथ रहने लगता है। ताशा के घरवालों को भी ताशा का यह व्यवहार पसंद नहीं है। परंतु गौरव और ताशा एक साथ ही रहते है। गाँव में गौरव की पत्नि को इस बात का पता चलता।, तब वह कुछ हंगामा खड़ा करती है, परंतु छोटे-छोटे बच्चों की जिम्मेदारी को देखकर इस परिस्थिति को स्वीकार करती है। कुछ वर्षो के बाद गौरव के बेटे की शादी होती है। उस शादी के वक्त ताशा बधाई देने के लिए गौरव के गाँव जाती है, तब वहाँ गौरव ताशा को अनदेखा करते हुए किसी तीसरी औरत के साथ गपशप में शामिल है। आहत ताशा गौरव से दूर रहने की सोचने लगती है। गौरव आकर अपनी असहायता जताते हुए कहता है, अब तो घर में मेरी बहु आ गई हैं 'अब मैं तुम्हारे साथ रह नहीं सकता। यहाँ की दो स्त्रियों की अलग-अलग व्यथाएँ स्पष्ट है। एक गौरव की पत्नि जो शादी शुदा होकर भी अपने पति के दूसरी औरत के साथ के संबंध को स्वीकार करती है। तो दूसरी औरत गौरव की प्रेमिका ताशा गौरव के साथ किसी अन्य स्त्री को देखकर आहत ही जाती है। वह गौरव को छोड़ देती है। स्वतंत्र रूप में जीने का निर्णय लेती है।

'दूत' कहानी की तनू शराबी पति के व्यवहार से आहत है। यह नारी चेतना की उत्कृष्ट कहानी है। 'चिनार अपने-अपने' में चित्रित रेशम निःसंतान औरत है, जिसे समाज में बॉझपन का ठप्पा लगा दिया और उसे परिवार में किसी भी प्रकार का स्थान नहीं दिया गया। अकेलापन कोशिश कर नपुसक पती को झेलती पत्नी आदि का दुख उसे सहना पड़ता है। इसी कहानी में चाँद नामक स्त्री अपनी बेटी मिहका के साथ आनंद से रहती है। परंतु बेटी का विवाह होने के बाद मिहका को दुःख भरी जिंदगी ही गुजारनी पड़ती है। इसलिए वह अपनी माँ चाँद के पास वापस आती है। इसमें पुरुषों की शिकार बनी इन नारीयों का चित्रण मन को झकझोर देता है।

इस प्रकार मंजूल भगत ने अपनी कहानियों में स्त्री मन की व्यथा, कारण और सामाजिक स्थिति आदि के परिप्रेक्ष्य में नारी मन का प्रभावी चित्रण किया है। नारी पारिवारिक संबंधों में आनेवाली कटुता के कारण तनावग्रस्त रहती है। चाहे वह नारी मध्यवर्ग की हो, निम्नवर्ग की हो या उच्चवर्ग की हो। इनकी व्यथा एक सी है जो वास्तविक है। ये नारीयाँ समाज के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ी हैं इनकी समस्याएँ पाठकों को करने के लिए बाध्य करती है। मंजूल भगत की कहानियाँ विविध प्रश्नों का मातोआलेख हैं। इस आलेख को गहराई से मापना आवश्यक है। यहाँ की चित्रित नारियाँ कथा कहानियों की काल्पनिकता नहीं हैं। बल्कि समाज का प्रतिबिंब प्रतीत होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रोहिणी अग्रवाल-सामाजिक उपन्यासों में नारी राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष, 1983, पृ. 26
2. मंजूल भगत -दूत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली वर्ष, 1992, पृ. 16
3. मंजूल भगत -दूत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली वर्ष, 1992, पृ. 23
4. मंजूल भगत -दूत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली वर्ष, 1992, पृ. 29
5. मंजूल भगत -दूत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली वर्ष, 1992, पृ. 36

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

किशोरियों के मासिक चक्र पर आहार एवं जीवनशैली का प्रभाव : एक अध्ययन

Dr. Trupti Khanang
Guest Lecturer, Department of Home Science
Govt- Danteshwari PG Mahila Mahavidyalaya, Jagdalpur, Chhattisgarh, India

सारांश (Abstract)

किशोरावस्था मानव जीवन की एक महत्वपूर्ण विकासात्मक अवस्था है, जिसमें शारीरिक, मानसिक एवं हार्मोनल परिवर्तन तीव्र गति से होते हैं। इस अवस्था में किशोरियों के स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण संकेतक उनका मासिक चक्र है। वर्तमान समय में असंतुलित आहार, जंक फूड का अधिक सेवन, अनियमित भोजन, शारीरिक गतिविधि की कमी, अपर्याप्त नींद तथा मानसिक तनाव जैसी जीवनशैली संबंधी आदतें किशोरियों के मासिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती हैं। प्रस्तुत रिसर्च पेपर का उद्देश्य 18-21 वर्ष की किशोरियों में आहार एवं जीवनशैली तथा मासिक चक्र के बीच संबंध का अध्ययन करना था। अध्ययन के लिए 50 किशोरियों का चयन यादृच्छिक नमूना विधि द्वारा किया गया। प्राथमिक आँकड़ों के संकलन हेतु प्रश्नावली एवं व्यक्तिगत साक्षात्कार का उपयोग किया गया। अध्ययन में दैनिक भोजन की आदतों, जंक फूड के सेवन, जल सेवन, नींद, तनाव, शारीरिक गतिविधि तथा मासिक चक्र की नियमितता से संबंधित जानकारी एकत्रित की गई।

प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण आवृत्ति एवं प्रतिशत विधि द्वारा किया गया। अध्ययन में पाया गया कि 40% किशोरियाँ संतुलित आहार का सेवन करती थीं, जबकि 36% किशोरियाँ जंक फूड का सेवन करती थीं और 24% किशोरियों का भोजन अनियमित था। तनाव के संदर्भ में 38% प्रतिभागियों में मध्यम स्तर तथा 32% में उच्च स्तर का तनाव पाया गया।

अध्ययन से यह संकेत मिलता है कि संतुलित आहार, नियमित शारीरिक गतिविधि, पर्याप्त नींद एवं तनाव प्रबंधन किशोरियों के समग्र स्वास्थ्य तथा मासिक चक्र के लिए महत्वपूर्ण हैं।

मुख्य शब्द (Keywords) : किशोरियाँ, आहार, जीवनशैली, मासिक चक्र, तनाव, जंक फूड, पोषण, स्वास्थ्य

1. परिचय (Introduction)

किशोरावस्था बचपन और वयस्कता के बीच संक्रमण की अवस्था है। इस अवधि में शरीर में अनेक शारीरिक एवं हार्मोनल परिवर्तन होते हैं। 18-21 वर्ष की आयु को उत्तर किशोरावस्था (Late Adolescence) के संदर्भ में देखा जा सकता है। इस अवस्था में किशोरियों के लिए पर्याप्त ऊर्जा एवं पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है।

मासिक चक्र किशोरियों के प्रजनन स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण संकेतक है। एक सामान्य मासिक चक्र सामान्यतः 21 से 35 दिनों के बीच हो सकता है। मासिक चक्र की नियमितता पर हार्मोनल स्थिति के साथ-साथ पोषण, तनाव, शारीरिक गतिविधि, नींद एवं दैनिक जीवनशैली का प्रभाव पड़ सकता है।

वर्तमान समय में किशोरियों में फास्ट फूड, जंक फूड एवं पैकेज्ड खाद्य पदार्थों का सेवन बढ़ रहा है। इन खाद्य पदार्थों में पोषक तत्वों की अपेक्षाकृत कमी तथा वसा, नमक एवं शर्करा की अधिकता हो सकती है। दूसरी ओर, अनियमित भोजन आयरन एवं अन्य आवश्यक पोषक तत्वों की कमी, शारीरिक गतिविधि का अभाव तथा मानसिक तनाव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं।

किशोरियों में आयरन, कैल्शियम, प्रोटीन एवं विभिन्न विटामिनों की पर्याप्त मात्रा महत्वपूर्ण है। विशेष रूप से मासिक धर्म के कारण आयरन की आवश्यकता पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। संतुलित आहार किशोरियों के विकास, ऊर्जा एवं सामान्य स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायक होता है।

जीवनशैली में शारीरिक गतिविधि, पर्याप्त नींद और तनाव प्रबंधन भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वर्तमान डिजिटल जीवनशैली में लंबे समय तक स्क्रीन देखने देर रात तक जागने और शारीरिक गतिविधि की कमी जैसी आदतें किशोरियों के स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती हैं।

अतः किशोरियों के आहार एवं जीवनशैली तथा मासिक चक्र के बीच संबंध को समझना आवश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक लघु प्रयास है।

2. अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

किशोरियों में मासिक चक्र से संबंधित अनियमितता, अत्यधिक या कम रक्तस्राव तथा मासिक धर्म के दौरान दर्द जैसी समस्याएँ देखी जा सकती हैं। इन समस्याओं के पीछे अनेक कारण हो सकते हैं। आहार एवं जीवनशैली उनमें से महत्वपूर्ण परिवर्तनीय कारक हो सकते हैं।

अध्ययन का महत्व निम्नलिखित है–

1. किशोरियों में संतुलित आहार के प्रति जागरूकता बढ़ाने में सहायता।
2. जंक फूड एवं अनियमित भोजन की आदतों के प्रति जागरूकता।
3. आयरन एवं अन्य आवश्यक पोषक तत्वों के महत्व को समझना।
4. नियमित शारीरिक गतिविधि एवं पर्याप्त नींद को प्रोत्साहित करना।
5. तनाव प्रबंधन के महत्व को समझना।
6. किशोरियों के मासिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता विकसित करना।
7. भविष्य में स्वास्थ्य एवं पोषण संबंधी शैक्षणिक कार्यक्रमों के लिए आधार प्रदान करना।

3. अध्ययन के उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

1. 18-21 वर्ष की किशोरियों की आहार संबंधी आदतों का अध्ययन करना।
2. किशोरियों की जीवनशैली एवं शारीरिक गतिविधियों का अध्ययन करना।
3. किशोरियों में तनाव के स्तर का अध्ययन करना।
4. किशोरियों के मासिक चक्र की नियमितता एवं उससे संबंधित समस्याओं का अध्ययन करना।
5. आहार एवं जीवनशैली का मासिक चक्र पर पड़ने वाले संभावित प्रभाव का अध्ययन करना।
6. किशोरियों में स्वस्थ आहार एवं स्वस्थ जीवनशैली के प्रति जागरूकता बढ़ाने हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

4. शोध पद्धति (Research Methodology)

4.1 शोध डिजाइन

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक (Descriptive) प्रकृति का लघु सर्वेक्षण अध्ययन है।

4.2 अध्ययन की जनसंख्या

अध्ययन में 18-21 वर्ष की किशोरियों को अध्ययन की जनसंख्या के रूप में शामिल किया गया।

4.3 नमूना एवं नमूना चयन

अध्ययन हेतु कुल 50 किशोरियों का चयन किया गया। प्रतिभागियों का चयन यादृच्छिक नमूना विधि द्वारा किया गया।

4.4 आँकड़ों के स्रोत

प्राथमिक स्रोत :

प्रश्नावली, व्यक्तिगत साक्षात्कार एवं प्रतिभागियों से प्राप्त व्यक्तिगत जानकारी।

द्वितीयक स्रोत :

पुस्तकें, शोध-पत्र, जर्नल एवं विश्वसनीय ऑनलाइन स्रोत।

4.5 आँकड़ा संग्रहण उपकरण

अध्ययन हेतु संरचित प्रश्नावली का उपयोग किया गया। प्रश्नावली में निम्नलिखित बिंदुओं को शामिल किया गया—

- दैनिक भोजन की आदतें
- संतुलित आहार का सेवन
- जंक फूड का सेवन
- भोजन की नियमितता
- जल सेवन
- नींद की अवधि
- शारीरिक गतिविधि
- तनाव का स्तर
- मासिक चक्र की नियमितता
- मासिक धर्म के दौरान दर्द एवं अन्य समस्याएँ

4.6 आँकड़ों का विश्लेषण

प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण आवृत्ति एवं प्रतिशत विधि द्वारा किया गया। परिणामों को सारणी एवं प्रतिशत के रूप में प्रस्तुत किया गया।

5. परिणाम एवं चर्चा (Results and Discussion)

तालिका 1: अध्ययन में शामिल किशोरियों का आयु वितरण

क्रमांक	आयु	संख्या	प्रतिशत
1	18 वर्ष	15	30%
2	19 वर्ष	12	24%
3	20 वर्ष	13	26%
4	21 वर्ष	10	20%
कुल		**50**	**100%**

व्याख्या : तालिका से स्पष्ट है कि अध्ययन में 18 वर्ष की किशोरियों का प्रतिशत सर्वाधिक 30% था। 20 वर्ष की किशोरियाँ 26%, 19 वर्ष की 24% तथा 21 वर्ष की किशोरियाँ 20% थीं।

तालिका 2 : किशोरियों के आहार का स्वरूप

क्रमांक	आहार की श्रेणी	संख्या	प्रतिशत
1	संतुलित आहार	20	40%
2	जंक फूड का सेवन	18	36%
3	अनियमित भोजन	12	24%
कुल		**50**	**100%**

व्याख्या : अध्ययन में 40% किशोरियाँ संतुलित आहार का सेवन करती थीं। 36% किशोरियों में जंक फूड के सेवन की आदत पाई गई, जबकि 24% किशोरियों का भोजन अनियमित था। इससे यह संकेत मिलता है कि किशोरियों के एक महत्वपूर्ण वर्ग में स्वस्थ आहार संबंधी आदतों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

तालिका 3 : किशोरियों में तनाव का स्तर

क्रमांक	तनाव का स्तर	संख्या	प्रतिशत
1	निम्न	11	22%
2	मध्यम	19	38%
3	उच्च	16	32%
4	सामान्य	04	08%
कुल		**50**	**100%**

व्याख्या : अध्ययन में सर्वाधिक 38% किशोरियों में मध्यम स्तर का तनाव पाया गया। 32% किशोरियों में उच्च स्तर का तनाव था। 22% में निम्न तथा 8% में सामान्य तनाव स्तर पाया गया। इससे स्पष्ट होता है कि अध्ययन समूह में तनाव एक महत्वपूर्ण जीवनशैली कारक था।

6. चर्चा (Discussion)

अध्ययन के निष्कर्षों से यह संकेत मिलता है कि किशोरियों का आहार एवं जीवनशैली उनके स्वास्थ्य के महत्वपूर्ण घटक हैं। संतुलित आहार लेने वाली किशोरियों की संख्या 40% थी, जबकि 60% किशोरियाँ या तो जंक फूड का सेवन करती थीं अथवा उनका भोजन अनियमित था। यह स्थिति किशोरियों में पोषण संबंधी जागरूकता बढ़ाने की आवश्यकता को दर्शाती है। किशोरावस्था में आयरन, प्रोटीन, कैल्शियम एवं विटामिन जैसे पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा आवश्यक होती है। विशेष रूप से मासिक धर्म के कारण आयरन की पर्याप्तता महत्वपूर्ण है। हरी पत्तेदार सब्जियाँ, दालें, अंकुरित अनाज, तिल, दूध एवं दूध से बने पदार्थ तथा अन्य पौष्टिक खाद्य पदार्थ संतुलित आहार का हिस्सा होने चाहिए।

अध्ययन में तनाव का स्तर भी महत्वपूर्ण पाया गया। मध्यम एवं उच्च तनाव वाले प्रतिभागियों का संयुक्त प्रतिशत 70% था। अध्ययन के संदर्भ में यह माना जा सकता है कि शैक्षणिक दबाव, करियर संबंधी चिंता तथा सामाजिक परिस्थितियाँ किशोरियों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती हैं। तनाव प्रबंधन के लिए योग, ध्यान, नियमित शारीरिक गतिविधि

एवं पर्याप्त नींद जैसी स्वस्थ आदतों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

आहार एवं जीवनशैली के विभिन्न घटकों का मासिक चक्र पर प्रभाव व्यक्ति-विशेष के अनुसार अलग-अलग हो सकता है। अतः मासिक चक्र की अनियमितता को केवल आहार या जीवनशैली का परिणाम नहीं माना जाना चाहिए। हार्मोनल असंतुलन एवं अन्य चिकित्सीय कारण भी इसके लिए जिम्मेदार हो सकते हैं। लगातार या गंभीर मासिक समस्याओं की स्थिति में चिकित्सकीय परामर्श आवश्यक है।

7. निष्कर्ष (Conclusion)

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि 18-21 वर्ष की किशोरियों के स्वास्थ्य में आहार एवं जीवनशैली की महत्वपूर्ण भूमिका है। अध्ययन में 40% किशोरियाँ संतुलित आहार का सेवन करती थीं, जबकि 36% किशोरियाँ जंक फूड का सेवन करती थीं और 24% किशोरियों का भोजन अनियमित था।

अध्ययन में तनाव का स्तर भी महत्वपूर्ण पाया गया तथा अधिकांश प्रतिभागियों में मध्यम से उच्च स्तर का तनाव देखा गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि किशोरियों के स्वास्थ्य के लिए केवल पोषण ही नहीं, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य, पर्याप्त नींद, नियमित शारीरिक गतिविधि एवं तनाव प्रबंधन पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

स्वस्थ एवं संतुलित आहार, पर्याप्त आयरन एवं अन्य आवश्यक पोषक तत्वों का सेवन, नियमित शारीरिक गतिविधि, पर्याप्त नींद तथा तनाव प्रबंधन किशोरियों के समग्र स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में सहायक हो सकते हैं। हालांकि, मासिक चक्र संबंधी समस्याओं के अनेक कारण हो सकते हैं और इस अध्ययन के आधार पर कारणात्मक संबंध स्थापित नहीं किया जा सकता।

8. सुझाव (Suggestions)

1. किशोरियों को संतुलित एवं पोषक आहार के महत्व के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए।
2. जंक फूड एवं अत्यधिक प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों के सेवन को सीमित करने के लिए जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।
3. आयरन एवं आयरन युक्त खाद्य पदार्थों के सेवन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
4. किशोरियों को नियमित शारीरिक गतिविधि के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।
5. पर्याप्त एवं नियमित नींद की आदत विकसित करने के लिए जागरूकता दी जानी चाहिए।
6. तनाव प्रबंधन हेतु योग, ध्यान एवं अन्य सकारात्मक गतिविधियों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
7. विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर मासिक स्वास्थ्य एवं पोषण शिक्षा कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।
8. मासिक चक्र में लगातार अनियमितता या अत्यधिक दर्द जैसी समस्या होने पर योग्य स्वास्थ्य विशेषज्ञ से परामर्श लेने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।
9. किशोरियों एवं अभिभावकों के लिए मासिक स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।
10. भविष्य में बड़े नमूना आकार के साथ विस्तृत अध्ययन किया जाना चाहिए ताकि आहार, जीवनशैली और मासिक चक्र के बीच संबंध का अधिक वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सके।

9. अध्ययन की सीमाएँ (Limitations)

1. अध्ययन का नमूना आकार केवल 50 किशोरियों तक सीमित था।
2. अध्ययन में 18-21 वर्ष की आयु वर्ग को ही शामिल किया गया।
3. आँकड़े प्रतिभागियों द्वारा दी गई जानकारी पर आधारित थे।

4. अध्ययन के निष्कर्षों को सभी किशोरियों पर सामान्यीकृत नहीं किया जा सकता।
5. मासिक चक्र को प्रभावित करने वाले सभी चिकित्सीय एवं हार्मोनल कारकों का विस्तृत परीक्षण नहीं किया ग

संदर्भ (References)

1. World Health Organization (WHO). Adolescent Health and Development: Resources and Guidelines.
2. Ghai, O.P. Essential Pediatrics. CBS Publishers & Distributors.
3. ICMR-NIN. Dietary Guidelines for Indians. National Institute of Nutrition, Hyderabad.
4. Park, K. Park's Textbook of Preventive and Social Medicine. Banarsidas Bhanot.
5. Gopalan, C., Rama Sastri, B.V. & Balasubramanian, S.C. Nutritive Value of Indian Foods. National Institute of Nutrition.
6. विभिन्न प्रासंगिक शोध-पत्र एवं पोषण तथा किशोर स्वास्थ्य से संबंधित जर्नल।
7. अध्ययन हेतु प्रयुक्त प्रश्नावली एवं प्राथमिक आँकड़े।

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

'पेररियात्तवर' : बेनाम दलित जीवन की दास्तान

डॉ. मिन्नु जोसेफ
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
सेंट. तेरेसास कॉलेज (स्वायत्त) एर्णाकुलम
मो नं- 7356585177
ई-मेल- minnuj96@gmail.com

पेररियात्तवर (बेनाम) डॉ. बिजू द्वारा निर्देशित 2015 में रिलीज़ हुई एक मलयालम फिल्म है। यह फिल्म समाज के हाशिए पर रहनेवाले लोगों के दर्द को चित्रित करती है। यह सिनेमा एक नगर पालिका में काम करने वाले पिता और बेटे के संघर्षपूर्ण जीवन की कहानी है। ये दो जिंदगियाँ समाज की निम्नतम जीवनश्रेणी में स्वाभाविक रूप से गिनी जाती हैं। पिता (सुराज वेंजारामूडु) नगर पालिका में अस्थायी सफाईकर्मी का काम करता है। उसका साथी चामी (इंद्रेंस), जो आदिवासी समुदाय से आता है, वह भी उसके साथ ही काम करता है। उनका काम शहर की गंदगी को इकट्ठा करना और उसे दूर किसी गांव में ले जाकर फेंकना है। कई बार पिता अपने बेटे (गोवर्धन) को भी अपने साथ ले जाता है। टूटी-फूटी गाड़ी में उनकी यात्रा के दौरान, उन्हें अलग-अलग तरह के अनुभवों और लोगों का सामना करना पड़ता है। ये फिल्म उन्हीं घटनाओं और उनके जीवन संघर्षों को दिखाती है।

फिल्म निर्देशक ने इस बार भी हाशिए पर जीने वाले लोगों की जिंदगी को ही केंद्र में रखा है, और वह भी एकदम अंतर्राष्ट्रीय फिल्म महोत्सवों की विशिष्ट 'अजेंडा' के साथ। फिल्म का विषय, संरचना, और यहां तक कि एंड क्रेडिट में इस्तेमाल किए गए रियल फुटेज तक, सब कुछ उसी दिशा में सोचा और बनाया गया है। अपने बेटे (मास्टर गोवर्धन) के साथ कचरा ढोने वाले ट्रक में काम करते हुए, नायक हाशिए पर पड़े कई अन्य जीवनों से रूबरू होते हैं। जब फिल्म की बात करें, तो उनके प्रस्तुत किए गए सामाजिक मुद्दे निश्चित रूप से ध्यान आकर्षित करते हैं, लेकिन उनकी फिल्मों में सिनेमाई शिल्पकला की कमी स्पष्ट होती है।

फिल्म में विस्थापन, लिंग असमानता, हाशिएकरण और शहरीकरण जैसे तमाम तीसरी दुनिया के मुद्दों को जगह दी गई है। लेकिन इनमें से कोई भी विषय उस गहराई और तीव्रता के साथ प्रस्तुत नहीं किया गया जो दर्शक को अंदर तक झकझोर सके। फिल्म एक सोशियो-पॉलिटिकल भाषण जैसा प्रतीत होती है, जो किसी भी मुद्दे पर सटीकता से प्रहार करने के बजाय केवल उनके अस्तित्व की ओर इशारा करती है। यह फिल्म डॉक्टर बिजू की शैली की विशेषता को उजागर करती है। लेकिन यह दृष्टिकोण सिनेमाई दृष्टि से उतना प्रभावी नहीं है।

फिल्म का नायक आदिवासियों के बीच पहुंचता है। हालांकि उसके जीवन में कोई बड़ा बदलाव नहीं दिखता, लेकिन जंगल और शहर के बीच सामाजिक विषमता और कचरे से भरे समाज का यथार्थ सामने आता है। जंगल से बहनेवाली नदी में प्लास्टिक बोत्तलें देखकर नायक हैरान हो जाता है। वहाँ रहने वाले कहते हैं "ये सब शहर के लोग ही करते हैं। वीकेंड पर यहाँ आते हैं, शराब पीते हैं, खाना खाते हैं, और सारा कचरा यहीं छोड़कर चले जाते हैं।"[1] यह केवल जंगल की बात

नहीं है। शहर का कचरा गाँव ले जाकर फेंकते हैं, जिससे गाँव में रहने वालों को विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं। जब गाँववाले इसके खिलाफ विरोध करते हैं, तो सिनेमा में एक सफाईकर्मी भी यह सवाल पूछता है कि "शहर का कचरा गांव में क्यों डाला जाता है, शहर का सारा कचरा आबादी वाले गाँवों में लाना सही नहीं है।"[2] यह समाज की एक नग्न सच्चाई है। नायक की मुलाकात वहाँ एक नेता से होती है, जो खुद भी हाशिए पर पड़े लोगों का प्रतिनिधित्व करता है। नायक उस नेता में अपने जैसे वंचितों की छवि देखता है। लेकिन जहाँ नायक इन समस्याओं को मूक रूप से सहन करता है, वहीं वह नेता अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत है। आदिवासी नेता का किरदार कृष्णन बालकृष्णन ने निभाया है। फिल्म के अंत में आदिवासियों के भूमि अधिकारों के लिए जन आंदोलन की ओर संकेत किया गया है। कहानी वहीं विराम लेती है जहाँ नायक और वंचितों का संघर्ष ज़ारी रहता है। यह चित्र 19 फरवरी 2003 को केरल के मुथंगा आदिवासियों के आन्ध्दोलन की याद दिलाती है। गोलीबारी की कर्कश आवाज़ों में कहानी थमती नहीं, बल्कि नायक का बेटा अपनी मां से बातें करता रहता है, भले ही पिता उसे सुनने में असमर्थ हो। सुराज को इस फिल्म ने राष्ट्रीय पुरस्कार दिलाया। यह फिल्म आम लोगों के जीवन के यथार्थ को आईना दिखाने का काम करती है। इसे सर्वश्रेष्ठ पर्यावरण फिल्म के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला। न्यूयॉर्क, जर्मनी, रूस, तेहरान, और मॉन्ट्रियल जैसे फिल्म समारोहों में इसे चयनित किया गया। मास्टर गोवर्धन, जिन्होंने फिल्म में सुराज के बेटे की भूमिका निभाई, को तेहरान फिल्म फेस्टिवल में क्रिस्टल सिमॉर्ग पुरस्कार मिला। वहीं, एम. जे. राधाकृष्णन को रूस के कज़ान फिल्म फेस्टिवल में सर्वश्रेष्ठ छायाकार का पुरस्कार मिला। अंबलक्करा ग्लोबल फिल्म्स के बैनर तले एडवोकेट अनिल कुमार अंबलक्करा द्वारा निर्मित इस फिल्म में सुराज के साथ इंद्रेंस, कृष्णन बालकृष्णन, कलिंगा शशि, नेडुमुडी वेणु, सोना नायर, जैसे कलाकारों ने मुख्य पात्रों का किरदार निभाया है। फिल्म का संपादन कार्तिक जोगेश ने किया है।

'पेररियात्तवर' - एक सच्ची राजनीतिक फिल्म है। सचिदानंदन ने अपनी पुस्तक 'अनुभवम, यात्रा, ओरमा' (प्रकाशनः ओलिव) में उल्लेख किया है कि जिसे हम आज 'सिनेमैटिक' कहते हैं, वह शैली शेक्सपियर, होमर, वाल्मीकि और एझुत्तच्चन जैसे रचनाकारों में भी देखने को मिलती है। समय और स्थान की सीमाओं को तोड़ते हुए, स्वप्न जैसी स्थिति में ले जाने वाली प्रस्तुतियां और एक फ्रेम में बसी छवियां, जो देखे या पढ़े जाने के बाद भी मन को झकझोरती हैं, सिनेमा के मॉन्टाज की परिभाषा से पहले ही मौजूद थीं। सचिदानंदन का यह अवलोकन 'पेररियात्तवर' की सिनेमैटिक शैली को पूरी तरह परिभाषित करता है। फिल्म का एक दृश्य ऐसा है जो इसे सीधे राजनीति से जोड़ देता हैरू एक ट्रैफिक जाम में दो टिपर लॉरियां खड़ी हैं—एक में मजदूर भरे हुए हैं, तो दूसरी में वध के लिए ले जाए जा रहे जानवर। जब एक फ्रेम से दूसरे फ्रेम में यह दृश्य खिसकता है, तो फिल्म का राजनीतिक दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। ष्पेररियात्तवरष् हाल के समय में मलयालम सिनेमा की सबसे प्रभावशाली राजनीतिक फिल्मों में से एक है। यह साहसिकता के साथ उन गुमनाम लोगों की कहानी कहती है जो शहरी कचरे के बीच कीड़े-मकोड़ों की तरह जीने को मजबूर हैं। नायक औए बेटा नगर के मलबे और कचरे के बीच एक 'पोरंबोक' (सरकार भूमि) में रहते हैं। उनकी दिल छू लेने वाली भावनाओं और संघर्षों के साथ-साथ, फिल्म उनके आसपास के लोगों के जीवन को भी जोड़ते हुए आगे बढ़ती है। यह उन लोगों की कहानी है, जिन्हें विकास ने बेदखल कर दिया है—ऐसे लोग जो शहरी कचरे को सहकर और उसमें काम करते हुए अपना अस्तित्व खो चुके हैं। फिल्म गहराई से केरल की वर्तमान राजनीतिक स्थिति और समाज के हाशिए पर पड़े जीवनों का अध्ययन करती है। यह दिखाती है कि कैसे सरकारी दमन ने दलितों, आदिवासियों, और अन्य कमजोर समूहों को पीड़ितों और शरणार्थियों में बदल दिया है। साथ ही, तेज रफ्तार शहरीकरण के कारण पर्यावरण को पहुंचे घावों पर भी फिल्म ध्यान केंद्रित करती है। 'पेररियात्तवर' निस्संदेह देखे जाने योग्य फिल्म है। यह तीव्र राजनीतिक और पर्यावरणीय मुद्दों पर चर्चा करते हुए भी अपनी शैली को सरल बनाए रखती है। फिल्म एक छोटे बच्चे के नजरिए से प्रस्तुत की गई है, जो इसे और अधिक प्रभावशाली बनाता है। सचिदानंदन ने जिस शसिनेमैटिकश की बात की है, यह फिल्म उस अवधारणा को पूरी तरह चरितार्थ करती है। फर्जी नॉस्टैल्जिया वाली फिल्मों के स्थान पर 'पेररियात्तवर' जैसी सच्ची और ईमानदार फिल्म को गंभीरता से लिया जाना चाहिए। दलित पहचान को सिर्फ कृत्रिम काले रंग और नकली दांतों से दिखाने वाले सिनेमा लेखकों के लिए भी यह फिल्म एक सबक है।

फिल्म में ऐसा बहुत कुछ नहीं है जो दर्शकों का ध्यान लंबे समय तक बांध सके। मार्मिक पल बहुत ही कम हैं और बीच-बीच में आते हैं। तकनीकी दृष्टि से भी फिल्म खास प्रभाव नहीं छोड़ती। हालांकि, सूरज वेंजारामूडु ने एक सीधे-सादे और शांत विधुर के कमजोरियों को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है। पूरी कास्ट में सबसे प्रभावशाली प्रदर्शन वयोवृद्ध नेडुमुडी वेणु का है, जिन्होंने एक शराबी और अपंग गैराज मालिक की भूमिका निभाई है। अभिनय के मामले में, ऐसा कुछ खास नहीं है जो दर्शकों का ध्यान आकर्षित कर सके। फिल्म की सोच पर कोई सवाल नहीं उठाया जा सकता। यह सफाई कर्मचारियों और समाज के अन्य हाशिए पर पड़े वर्गों के जीवन को दिखाने का प्रयास करती है, जो आमतौर पर फिल्मों में अनदेखा कर दिया जाता है। विषय निश्चित रूप से ध्यान देने योग्य है। 'पेररियात्तवर' एक फीकी और बोझिल अनुभव देती है, जिसे अक्सर 'एनजीओ फिल्ममेकिंग' कहा जाता है। और उम्मीद है कि डॉ. बिजू की अगली फिल्म भी एक सामाजिक मुद्दे पर आधारित है।

सन्दर्भ

1. पेररियात्तवर, निर्देशक- डॉ. बिजू, मलयालम, 2015
2. पेररियात्तवर, निर्देशक- डॉ. बिजू, मलयालम, 2015

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

आत्मनिर्भर भारत और भारतीय ज्ञान परंपरा : आर्थिक राष्ट्रवाद से वैश्विक नेतृत्व तक

हर्षा जैन
पीएच.डी. शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
भारती विश्वविद्यालय, पुलगांव चौक, दुर्ग (छत्तीसगढ़)
ईमेल : harshajain033@gmail.com
संपर्क : 9406323000
पता : गंगा हार्डवेयर, मेन रोड, कोंडागांव-494226

सारांश

यह शोध-पत्र आत्मनिर्भर भारत की अवधारणा का विश्लेषण भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ में प्रस्तुत करता है। अध्ययन का उद्देश्य यह प्रतिपादित करना है कि आत्मनिर्भरता केवल आर्थिक राष्ट्रवाद की नीति नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक सभ्यतागत दृष्टि है जो नैतिक शासन, समावेशी विकास, रणनीतिक स्वायत्तता और वैश्विक उत्तरदायित्व से जुड़ी है। भारतीय ज्ञान परंपरा में धर्म आधारित अर्थनीति, लोकसंग्रह, स्वदेशी, विकेंद्रीकरण तथा वसुधैव कुटुम्बकम् जैसे सिद्धांत आर्थिक गतिविधियों को सामाजिक न्याय और नैतिक दायित्व से जोड़ते हैं। यह अध्ययन गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है और राजनीतिक अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर भारत की वैचारिक पुनर्व्याख्या प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द : आत्मनिर्भर भारत, भारतीय ज्ञान परंपरा, आर्थिक राष्ट्रवाद, राजनीतिक अर्थव्यवस्था, वैश्विक नेतृत्व, स्वदेशी, रणनीतिक स्वायत्तता।

1. प्रस्तावना

वैश्वीकरण के वर्तमान युग में राष्ट्र-राज्यों की भूमिका निरंतर परिवर्तित हो रही है। महामारी, भू-राजनीतिक संघर्ष और आपूर्ति श्रृंखला संकट ने यह स्पष्ट किया कि अत्यधिक बाह्य निर्भरता राष्ट्रीय संप्रभुता को प्रभावित कर सकती है। आत्मनिर्भर भारत इसी संदर्भ में रणनीतिक स्वायत्तता, आर्थिक सुदृढ़ीकरण और सभ्यतागत आत्मबोध की पहल है। राजनीति विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में यह केवल आर्थिक सुधार कार्यक्रम नहीं, बल्कि राज्य की नीतिगत स्वतंत्रता और वैचारिक पुनर्संरचना का प्रयास है।

2. साहित्य समीक्षा

आर्थिक राष्ट्रवाद पर उपलब्ध साहित्य राष्ट्रीय उद्योगों की सुरक्षा और घरेलू पूंजी निर्माण पर बल देता है। वैश्वीकरण समर्थक मुक्त व्यापार को विकास का माध्यम मानते हैं, जबकि आलोचनात्मक दृष्टिकोण निर्भरता और असमानता की ओर

संकेत करता है। भारतीय राजनीतिक चिंतन में अर्थव्यवस्था को नैतिकता से पृथक नहीं माना गया है। समकालीन अध्ययनों में आत्मनिर्भर भारत की नीतिगत संरचना पर चर्चा मिलती है, परंतु भारतीय ज्ञान परंपरा के साथ इसके वैचारिक संबंध पर अपेक्षाकृत सीमित कार्य हुआ है।

3. सैद्धांतिक रूपरेखा

भारतीय ज्ञान परंपरा अर्थ को धर्म के अधीन रखती है, जिससे आर्थिक गतिविधि सामाजिक उत्तरदायित्व से जुड़ती है। लोकसंग्रह, स्वदेशी और विकेंद्रीकरण के सिद्धांत आत्मनिर्भरता को नैतिकता और सामूहिक कल्याण से जोड़ते हैं। यह मॉडल मुक्त बाजार और पूर्ण राज्य-नियंत्रण के बीच संतुलित राजनीतिक अर्थव्यवस्था प्रस्तुत करता है।

4. आत्मनिर्भर भारत : नीतिगत विश्लेषण

आत्मनिर्भर भारत पाँच प्रमुख स्तंभों—अर्थव्यवस्था, अवसंरचना, प्रणाली, जनसांख्यिकी और मांग—पर आधारित है। उत्पादन प्रोत्साहन योजनाएँ, डिजिटल शासन सुधार, स्टार्टअप प्रोत्साहन और स्थानीय उद्योगों का सुदृढ़ीकरण इसके प्रमुख आयाम हैं। यह मॉडल प्रतिस्पर्धात्मक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देता है, जिसका उद्देश्य वैश्विक प्रतिस्पर्धा में सक्षम बनना है।

5. भारतीय ज्ञान परंपरा और राजनीतिक अर्थव्यवस्था

भारतीय ज्ञान परंपरा समग्र विकास की पक्षधर है। अर्थ केवल संसाधनों का संचय नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, पर्यावरण संतुलन और नैतिक शासन का साधन है। ग्राम आधारित अर्थव्यवस्था, स्थानीय उत्पादन और सामुदायिक सहयोग आत्मनिर्भरता के मूल आधार हैं। यदि आधुनिक नीति-निर्माण में इन सिद्धांतों को समाहित किया जाए, तो आत्मनिर्भरता समावेशी और सतत विकास का माध्यम बन सकती है।

6. आर्थिक राष्ट्रवाद से वैश्विक नेतृत्व तक

रणनीतिक स्वायत्तता वैश्विक नेतृत्व की पूर्वशर्त है। जब कोई राष्ट्र आंतरिक रूप से सुदृढ़ होता है, तभी वह वैश्विक मंच पर प्रभावी भूमिका निभा सकता है। डिजिटल भुगतान प्रणाली, औषधि उत्पादन, और सांस्कृतिक कूटनीति में भारत ने उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा का 'वसुधैव कुटुम्बकम्' सिद्धांत आत्मनिर्भरता को संकीर्ण राष्ट्रवाद बनने से रोकता है और वैश्विक सहयोग को प्रोत्साहित करता है।

7. आलोचनात्मक विश्लेषण

आत्मनिर्भरता के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ हैं—वैश्विक प्रतिस्पर्धा, तकनीकी क्षमता, संसाधन निवेश और नीतिगत समन्वय। यदि इसे संरक्षणवाद के रूप में लागू किया गया तो यह दक्षता को प्रभावित कर सकता है। अतः आत्मनिर्भरता को संतुलित परस्पर निर्भरता के रूप में समझना आवश्यक है।

8. नीतिगत सुझाव

1. भारतीय ज्ञान आधारित आर्थिक अनुसंधान केंद्रों की स्थापना।
2. पारंपरिक उद्योगों का डिजिटलीकरण और वैश्विक विपणन।
3. शिक्षा में भारतीय आर्थिक चिंतन का समावेश।
4. सतत विकास नीतियों में पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान का एकीकरण।

5. अंतरराष्ट्रीय मंचों पर वैकल्पिक भारतीय विकास मॉडल का प्रस्तुतीकरण।

9. निष्कर्ष

आत्मनिर्भर भारत एक व्यापक वैचारिक परियोजना है जो भारतीय ज्ञान परंपरा से प्रेरित है। यदि इसे संतुलित और नैतिक ढंग से लागू किया जाए, तो भारत आर्थिक राष्ट्रवाद से आगे बढ़कर वैश्विक नेतृत्व की भूमिका निभा सकता है। यह केवल आर्थिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि सभ्यतागत आत्मविश्वास और रणनीतिक स्वायत्तता की अभिव्यक्ति है।

संदर्भ (APA 7 शैली)

Acharya, A. (2014). The End of American World Order. Polity Press.

Bhagavad Gita. (2012). (Eknath Easwaran, Trans.). Nilgiri Press.

Government of India. (2020). Atmanirbhar Bharat Abhiyan: Economic Relief Package. Ministry of Finance, Government of India.

Government of India. (2021). Production Linked Incentive (PLI) Scheme Guidelines. Ministry of Commerce and Industry.

Kangle, R. P. (Ed.). (2010). The Kautiliya Arthasastra (Vols. 1-3). Motilal Banarsidass.

Keohane, R. O., & Nye, J. S. (2012). Power and Interdependence (4th ed.). Pearson Education.

List, F. (2005). The National System of Political Economy. Cosimo Classics. (Original work published 1841).

Mehta, P. B. (2020). India's Political Economy after Liberalization. Oxford University Press.

Polanyi, K. (2001). The Great Transformation: The Political and Economic Origins of Our Time. Beacon Press.

Rodrik, D. (2011). The Globalization Paradox: Democracy and the Future of the World Economy. W. W. Norton.

Sen, A. (1999). Development as Freedom. Oxford University Press.

Srinivasan, T. N. (2008). India's Economic Reforms and Development. Oxford University Press.

World Bank. (2022). World Development Report 2022: Finance for an Equitable Recovery. World Bank Publications.

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

अनुसूचित जनजाति एवं विवाह संस्कार

डॉ. स्नेह लता शिवहरे
असिस्टेंट प्रो.समाजशास्त्र
खुनखुन जी गर्ल्स डिग्री कॉलेज,
चौक, लखनऊ

सारांश

भारत में अनुसूचित जनजातियों की विवाह प्रणाली अनूठी और विविध है, जो एक जनजाति से दूसरी जनजाति में भिन्न होती है, और प्रत्येक जनजाति के अपने विशिष्ट रीति-रिवाज, अनुष्ठान और प्रथाएँ होती हैं। इनमें से अधिकांश जनजातियाँ अंतर्विवाही विवाह प्रणाली का पालन करती हैं, जहाँ विवाह एक ही जनजाति या समुदाय के भीतर होते हैं, जबकि कुछ जनजातियाँ बहिर्विवाह प्रथा का पालन करती हैं, जहाँ विवाह जनजाति के बाहर होते हैं। अनुसूचित जनजातियों में विवाह प्रणाली में अक्सर परिवार, कुल और सामुदायिक संबंधों पर ज़ोर दिया जाता है, और विवाह अक्सर वर और वधू के परिवारों द्वारा तय किए जाते हैं। परंतु जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हो रहा है वैसे-वैसे अनुसूचित जनजातियों के विवाह संस्कारों में परिवर्तन दिखाई पड़ रहा है। आधुनिक सभ्यता ने अनुसूचित जनजातियों के विवाह संस्कार में काफी परिवर्तन किया है।

Keywords- अनुसूचित जनजाति,आधुनिक विकास, विवाह प्रणाली, बहिर्विवाह, सांस्कृतिक विरासत, अंतर्विवाह।

अनुसूचित जनजाति—अनुसूचित जनजाति वे जनजातियाँ हैं जिन्हें भारत के संविधान के अनुच्छेद 342 के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा अधिसूचित किया गया है। इन जनजातियों की अपनी विशिष्ट संस्कृति, भाषा, परंपराएँ और सामाजिक पहचान होती है।अर्थात् अनुसूचित जनजातियाँ भारत के उन मूलनिवासी समुदायों को संदर्भित करती हैं जिन्हें भारतीय संविधान के तहत सरकार द्वारा मान्यता और संरक्षण प्राप्त है। ये जनजातियाँ ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर रही हैं और मुख्यधारा के समाज से बहिष्कृत रही हैं, और सरकार ने उनके सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक विकास को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न उपाय लागू किए हैं। वर्तमान में 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में 705 अनुसूचित जनजातियाँ हैं, जो देश की लगभग 8.6% जनसंख्या (10.45 करोड़) हैं। अनुसूचित जनजातियाँ कुछ लाभों और आरक्षणों की हकदार हैं, जैसे शैक्षणिक संस्थानों, सरकारी नौकरियों और विधानसभाओं में आरक्षित सीटें। सरकार ने अनुसूचित जनजातियों के जीवन स्तर में सुधार के लिए विभिन्न कार्यक्रम और योजनाएँ भी शुरू की हैं, जिनमें स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा और आर्थिक सशक्तिकरण से संबंधित पहल शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, सरकार ने इन समुदायों के कल्याण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से नीतियों और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन की देखरेख के लिए राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना की है। कुल मिलाकर, अनुसूचित जनजातियों को मान्यता देना भारत की मूलनिवासी आबादी के अधिकारों और सम्मान को बढ़ावा देने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

अनुसूचित जनजाति की परिभाषा - अनुसूचित जनजाति की कुछ प्रमुख परिभाषा निम्नलिखित है—

डी. एन. मजूमदार के अनुसार—

''जनजाति परिवारों या परिवार-समूहों का ऐसा समूह है जिसका एक सामान्य नाम होता है, जो एक निश्चित भू-भाग में निवास करता है, एक समान भाषा बोलता है तथा विवाह, व्यवसाय और सामाजिक संबंधों से संबंधित कुछ निश्चित नियमों का पालन करता है।''

गिलिन एवं गिलिन के अनुसार-

''जनजाति स्थानीय आदिवासियों का ऐसा समूह है जो एक सामान्य क्षेत्र में निवास करता है, समान भाषा बोलता है तथा समान संस्कृति का पालन करता है।''

डब्ल्यू. एच. आर. रिवर्स के अनुसार-

''जनजाति एक सरल प्रकार का सामाजिक समूह है जिसके सदस्य एक सामान्य भाषा बोलते हैं तथा युद्ध या अन्य सामान्य उद्देश्यों के लिए मिलकर कार्य करते हैं।"

अनुसूचित जनजातियों मे विवाह -

भारत में विभिन्न अनुसूचित जनजातियों में विवाह प्रणाली विविध और विविधतापूर्ण है, जो प्रत्येक जनजाति की विशिष्ट सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक विशेषताओं को दर्शाती है। जहाँ कुछ जनजातियों में विवाह की प्रथाएँ समान हैं, वहीं कुछ जनजातियों की विशिष्ट प्रथाएँ हैं जो उन्हें एक-दूसरे से अलग करती हैं। इस लेख में, हम भारत की कई अनुसूचित जनजातियों की विवाह प्रणालियों का अन्वेषण करेंगे और उनकी अनूठी विशेषताओं और परंपराओं पर प्रकाश डालेंगे।

1. संथाल जनजाति

संथाल जनजाति भारत की सबसे बड़ी अनुसूचित जनजातियों में से एक है, जो मुख्य रूप से झारखंड, पश्चिम बंगाल और ओडिशा राज्यों में पाई जाती है। संथालों की एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है, और उनकी विवाह प्रणाली उनके सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। संथाल विवाह आमतौर पर वर और वधू के परिवारों द्वारा किसी मध्यस्थ या बिचवानी की मदद से तय किए जाते हैं। वर और वधू अलग-अलग कुलों से होने चाहिए, और विवाह आमतौर पर एकपत्नीत्व वाला होता है। संथालों में 'वधू मूल्य' नामक एक अनूठी प्रथा है, जिसमें वर का परिवार सम्मान के प्रतीक के रूप में और विवाह को अंतिम रूप देने के लिए वधू के परिवार को एक निश्चित राशि या सामान देता है।

2. गोंड जनजाति

गोंड जनजाति मुख्यतः मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और महाराष्ट्र राज्यों में पाई जाती है। गोंडों की एक विशिष्ट विवाह पद्धति है, जहाँ दूल्हा-दुल्हन का विवाह 'फूल माई' नामक एक साधारण समारोह में होता है। इस समारोह में दूल्हा-दुल्हन के बीच फूलों और पान के पत्तों का आदान-प्रदान होता है, जो उनके मिलन का प्रतीक है। गोंड ष्घर जवाईष नामक एक प्रथा भी निभाते हैं, जिसमें दुल्हन शादी के बाद कुछ दिनों तक अपने माता-पिता के साथ रहती है और फिर अपने पति के परिवार में शामिल हो जाती है। यह प्रथा दुल्हन को अपने नए परिवार और परिवेश में ढलने में मदद करती है।

3. भील जनजाति

भील जनजाति राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र राज्यों में पाई जाती है। भीलों की एक अनूठी विवाह पद्धति है, जहाँ दूल्हा-दुल्हन का विवाह ष्आखा तीजष् नामक समारोह में होता है। इस समारोह में देवी आखा की पूजा और दूल्हा-दुल्हन के बीच वचनों का आदान-प्रदान शामिल होता है। भील 'लेविरेट विवाह' नामक एक प्रथा भी निभाते हैं, जिसमें एक विधवा का विवाह उसके दिवंगत पति के भाई से होता है। यह प्रथा पारिवारिक संबंधों को बनाए रखने में मदद करती है और विधवा और उसके बच्चों के कल्याण को सुनिश्चित करती है।

4. मुंडा जनजाति

मुंडा जनजाति मुख्यतः झारखंड राज्य में पाई जाती है। मुंडाओं की एक विशिष्ट विवाह पद्धति है, जहाँ वर और वधू का विवाह 'सरहुल' नामक समारोह में होता है। इस समारोह में वन के देवी-देवताओं की पूजा और वर-वधू के बीच उपहारों का आदान-प्रदान शामिल होता है। मुंडा 'दूल्हा-दुल्हन' नामक एक प्रथा भी निभाते हैं, जहाँ वर और वधू को समान माना जाता है और उनसे एक सुखी और समृद्ध जीवन बनाने के लिए मिलकर काम करने की अपेक्षा की जाती है।

5. उरांव जनजाति

उरांव जनजाति झारखंड, पश्चिम बंगाल और ओडिशा राज्यों में पाई जाती है। उरांवों की एक अनूठी विवाह पद्धति है, जहाँ वर और वधू का विवाह 'सोहराई' नामक समारोह में होता है। इस समारोह में वन के देवी-देवताओं की पूजा और वर-वधू के बीच उपहारों का आदान-प्रदान शामिल होता है। उरांव 'खड़ी विवाह' नामक एक प्रथा भी निभाते हैं, जहाँ वर और वधू का विवाह बिना किसी विस्तृत अनुष्ठान या समारोह के एक साधारण समारोह में होता है।

6. हो जनजाति

हो जनजाति मुख्यतः झारखंड राज्य में पाई जाती है। हो जनजाति की एक विशिष्ट विवाह पद्धति है, जिसमें दूल्हा-दुल्हन का विवाह 'मकर संक्रांति' नामक समारोह में होता है। इस समारोह में सूर्य देव की पूजा और दूल्हा-दुल्हन के बीच उपहारों का आदान-प्रदान शामिल होता है। हो जनजाति के लोग ष्सगाई विवाहष् नामक एक प्रथा भी अपनाते हैं, जिसमें दूल्हा-दुल्हन की सगाई वास्तविक विवाह से पहले एक समारोह में होती है।

7. खारिया जनजाति

खारिया जनजाति झारखंड, पश्चिम बंगाल और ओडिशा राज्यों में पाई जाती है। खारिया जनजाति की एक अनूठी विवाह पद्धति है, जिसमें दूल्हा-दुल्हन का विवाह 'बहा परब' नामक समारोह में होता है। इस समारोह में वन देवी-देवताओं की पूजा और दूल्हा-दुल्हन के बीच उपहारों का आदान-प्रदान शामिल होता है। खारिया जनजाति ष्घर घराईष् नामक एक प्रथा भी अपनाती है, जिसमें दुल्हन शादी के बाद कुछ दिनों तक अपने माता-पिता के साथ रहती है और फिर अपने पति के परिवार में शामिल हो जाती है।

निष्कर्षतः, भारत में विभिन्न अनुसूचित जनजातियों में विवाह प्रणाली विविध और विविधतापूर्ण है, जो प्रत्येक जनजाति की विशिष्ट सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक विशेषताओं को दर्शाती है। जहाँ कुछ जनजातियों में समान विवाह प्रथाएँ हैं, वहीं अन्य जनजातियों की विशिष्ट प्रथाएँ उन्हें एक-दूसरे से अलग करती हैं। संथाल, गोंड, भील, मुंडा, उरांव, हो और खारिया जनजातियों की विवाह प्रणालियाँ भारत की अनुसूचित जनजातियों में पाई जाने वाली कई अनूठी और आकर्षक विवाह प्रथाओं के कुछ उदाहरण मात्र हैं।

इन जनजातियों की विवाह प्रणालियाँ न केवल संबंधित व्यक्तियों के लिए महत्वपूर्ण हैं, बल्कि सामाजिक सद्भाव और सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। विवाह समारोह और अनुष्ठान अक्सर संगीत, नृत्य और भोज के साथ होते हैं, जो समुदाय को एक साथ लाते हैं और सामाजिक बंधनों को मजबूत करते हैं। इन जनजातियों की विवाह प्रणालियाँ अक्सर उनके आर्थिक और पर्यावरणीय संदर्भ से भी निकटता से जुड़ी होती हैं, क्योंकि कई जनजातियाँ कृषि से अपना जीवन निर्वाह करती हैं और अपनी आजीविका के लिए जंगलों पर निर्भर रहती हैं।

अनुसूचित जनजातीय पर आधुनिक विकास का प्रभाव

भारत में अनुसूचित जनजातियों की विवाह प्रणालियाँ उनकी सांस्कृतिक विरासत का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, और

इन अनूठी रीति-रिवाजों और परंपराओं के संरक्षण और संवर्धन के प्रयास किए जाने चाहिए। संथाल और गोंड जैसी कुछ जनजातियों में, विवाह को दो परिवारों के बीच एक पवित्र बंधन माना जाता है, और पूरा समुदाय विवाह समारोह में शामिल होता है, जिसमें विभिन्न अनुष्ठान और रीति-रिवाज शामिल होते हैं, जैसे उपहारों का आदान-प्रदान, पवित्र नृत्य और पारंपरिक गीतों का गायन। भील और मुंडा जैसी अन्य जनजातियों में विवाह के प्रति अधिक अनौपचारिक दृष्टिकोण है, जहाँ जोड़े अक्सर भागकर शादी कर लेते हैं या अपने परिवार या समुदाय की औपचारिक भागीदारी के बिना विवाह कर लेते हैं। अनुसूचित जनजातियों के बीच विवाह प्रणाली विवाह की आयु के संदर्भ में भी भिन्न होती है, कुछ जनजातियाँ लड़कियों की शादी अपेक्षाकृत कम उम्र में करने की अनुमति देती हैं, जबकि अन्य उन्हें वयस्क होने तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, अनुसूचित जनजातियों की विवाह प्रणाली में महिलाओं की भूमिका भी महत्वपूर्ण है, कई जनजातियाँ महिलाओं को उच्च स्तर की स्वायत्तता और स्वतंत्रता प्रदान करती हैं, जिससे उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में भाग लेने और संपत्ति का मालिक होने की अनुमति मिलती है। हालांकि, इन अनूठी और विविध विवाह प्रणालियों के बावजूद, अनुसूचित जनजातियों को गरीबी, शिक्षा की कमी और सामाजिक असमानता सहित कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जो विवाह की संस्था और समुदाय की समग्र भलाई को प्रभावित कर सकती हैं। कुल मिलाकर, भारत में अनुसूचित जनजातियों के बीच विवाह प्रणाली एक जटिल और बहुआयामी संस्था है, जो इन समुदायों की समृद्ध सांस्कृतिक विविधता और विरासत को दर्शाती है इन विवाह प्रणालियों का अन्वेषण अनुसूचित जनजातियों के रीति-रिवाजों, परंपराओं और मूल्यों की एक आकर्षक झलक प्रस्तुत करता है, और इन समुदायों की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और संवर्धन के महत्व को रेखांकित करता है, साथ ही उनके सामने आने वाली सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों का समाधान करते हुए, सभी के लिए एक अधिक समतापूर्ण और न्यायपूर्ण समाज की दिशा में कार्य करने की आवश्यकता पर भी बल देता है। इसके अतिरिक्त, विवाह प्रणाली को सुदृढ़ बनाने और अनुसूचित जनजातियों के समग्र कल्याण को बढ़ावा देने में शिक्षा और आर्थिक विकास के महत्व को पहचानना और प्रत्येक जनजाति की विशिष्ट आवश्यकताओं और संदर्भों के अनुरूप रणनीतियाँ विकसित करना आवश्यक है, ताकि इन अनूठी और मूल्यवान सामाजिक प्रणालियों को जारी रखने में सहायता मिल सके।ऐसा करके हम भारत के सांस्कृतिक परिदृश्य की विविधता और समृद्धि को बनाए रखने में मदद कर सकते हैं, तथा यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि इन जनजातियों की अनूठी सांस्कृतिक प्रथाएं भावी पीढ़ियों से लुप्त न हों।

सन्दर्भ सूची

1. "Tribal Marriage Customs and Rituals" by R. N. Pati, published by Sarup Book Publishers, New Delhi, (2018).
2. "Scheduled Tribes of India: Marriage, Family, and Kinship" by L. K. Mahapatra, published by Kalpaz Publications, New Delhi, (2015).
3. "The Gond Tribe: A Study of their Marriage and Family" by R. K. Sharma, published by Anmol Publications, New Delhi, (2012).
4. "Tribal Women and Marriage" by A. K. Singh, published by Rawat Publications, Jaipur, (2010).
5. "Marriage and Family among the Santhals" by S. C. Sinha, published by Concept Publishing Company, New Delhi, (2006).
6. "The Scheduled Tribes of India" by B. K. Roy Burman, published by Mittal Publications, New Delhi, (2005).
7. "Tribal Marriage and Family" by P. K. Mohapatra, published by Gian Publishing House, New Delhi, (2004).
8. "संस्कृति और विवाह : अनुसूचित जनजातियों के संदर्भ में", डॉ. संदीप गुप्ता, नईमस प्रकाशन, (2019).

9. "मध्यप्रदेश में अनुसूचित जनजातियों का विवाह प्रथा", डॉ. रामेश्वर सिंह, आदिवासी अध्ययन संस्थान, (2018).
10. "विवाह और भारतीय समाज", डॉ. शारदा शुक्ला, राजकमल प्रकाशन, (2016).
11. "अनुसूचित जनजाति : एक सांस्कृतिक अध्ययन", डॉ. एच.एल. यादव, ज्ञानकोश प्रकाशन, (2015).
12. भारतीय अनुसूचित जनजातियाँष, डॉ. जोगिंदर सिंह, राष्ट्रीय प्रकाशन, नई दिल्ली, (2010).

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

त्र्यम्बक शैव शास्त्र के प्रचार-प्रसार में आचार्य भट्ट कल्लट का योगदान

टीना कुमारी
(शोध छात्रा)
संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।

प्रो. सुषमा देवी
(कला-संकायाध्यक्षा)
संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।

शोधसार- 'त्र्यम्बक शैव शास्त्र' जिसे वर्तमान समय में काश्मीर शैव दर्शन या अद्वैत काश्मीर शैव दर्शन के नाम से जाना जाता है, के प्रचार-प्रसार में मुख्य रूप से आचार्य वसुगुप्त, सोमानन्द, भट्ट-कल्लट, उत्पलदेव एवं अभिनवगुप्त का नाम आता है। प्रस्तुत शोधपत्र में आचार्य भट्ट कल्लट का त्र्यम्बक शैव शास्त्र के प्रचार-प्रसार में क्या योगदान रहा है, इस विषय पर प्रकाश डाला गया है।

कूट शब्द- त्र्यम्बक, शैव, शास्त्र, अद्वैत, स्पन्द, विभूति, निष्पन्द, प्रकाण्ड, आध्यात्मिक, अनुमोदन, उन्मुक्त, शैवी-टीका, प्रबुद्ध, शिवशासन, द्वैत-शैव, द्वैताद्वैत।

प्रस्तावना : 'शास्ति च त्रायते च शिष्यते अनेन'। अर्थात् जो शिक्षा हमें अनुशासन प्रदान कर हमारी रक्षा करती है उसे 'शास्त्र' कहते है। 'शास्त्र' शब्द 'शासु अनुशिष्टौ' धातु से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है- 'अनुशासन' या 'उपदेश करना'। व्यापक अर्थ में देखा जाए तो किसी विशिष्ट विषय या पदार्थसमूह से सम्बन्धित वह समस्त ज्ञान जो सही क्रम से एकत्रित कर रखा गया हो, शास्त्र कहलाता है। दूसरे शब्दों में देखा जाए तो शास्त्र वे ग्रन्थ हैं जो लोगों में अनुशासन एवं उनके हित के लिए बनाए गए हों। साधारणतः शास्त्र में बताए गए काम विधेय माने गए हैं तथा जो बातें शास्त्रों में वर्जित है, वे त्याज्य एवं निषिद्ध मानी जाती हैं। शास्त्रों में शिक्षाशास्त्र, वास्तुशास्त्र, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदि का समावेश होता है।

त्र्यम्बक शैव शास्त्र का संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय

त्र्यम्बक शैव शास्त्र एक ऐसा शास्त्र है जो वैदिक धर्म को स्वीकार करने के उपरान्त भी अपने शुद्ध आगमिक स्वभाव को अपनाए रखता है। काश्मीर के शैवाचार्यों के अनुसार भगवान् शिव ने स्वयं इस शैव धर्म को संसार में प्रकट किया था। भगवान् शिव की आज्ञा से ही कलियुग में तीन सिद्ध पुरुष अमर्दक, श्रीनाथ तथा त्र्यम्बक प्रकट हुए। इनमें से अमर्दक ने द्वैत-शैव का, श्रीनाथ ने द्वैताद्वैत का तथा त्र्यम्बक ने अद्वैत-शैव का उपदेश किया। त्र्यम्बक का पूरा नाम त्र्यम्बकादित्य है और यही त्र्यम्बकादित्य ही त्र्यम्बक शैव शास्त्र के प्रवर्तक भी माने गए हैं। त्र्यम्बकादित्य ने त्र्यम्बक शैव शास्त्र की अद्वैतप्रधान मठिका को अपनी पुत्री के द्वारा आरम्भ कारवाया था, इसलिए उस शाखा को (त्र्यम्बक) अर्धत्र्यम्बक मठिका के नाम से जाना जाता था। आचार्य सोमानन्द, आचार्य उत्पलदेव एवं आचार्य अभिनवगुप्त इस मठिका के प्रधान गुरु थे।

प्राचीन समय में यह विद्या केवल ऋषियों के पास थी, और इसकी दीक्षा भी केवल योग्य अधिकारियों को ही दी जाती थी, आगमों के अनुसार इस रहस्य विद्या के प्रवर्तक एवं प्रचारक महामुनि दत्तात्रेय, महर्षि अगस्त्य, भगवान् परशुराम एवं भगवान्

दुर्वासा आदि सिद्ध पुरुष रह चुके हैं। भगवान् श्री कृष्ण को भी इस रहस्य विद्या का ज्ञान महर्षि दुर्वासा द्वारा प्राप्त था, इसलिए तो भगवद्गीता में इस शैवी विद्या के सिद्धान्तों एवं शाम्बी उपासना के रहस्यों का विवेचन हो पाया है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि अद्वैत शैव दर्शन के सिद्धान्त एवं उसके साधना के रहस्य, गुरु शिष्य परम्पराओं से अनादि काल से ही चलते आ रहे हैं, और वर्तमान समय में भगवान् शिव की प्रेरणा से प्रेरित होकर महर्षि दुर्वासा ने अपने शिष्य त्र्यम्बकादित्य द्वारा इस रहस्य विद्या को पुनः प्रारम्भ करवाया। इसे "काश्मीर शैव दर्शन" एवं "अद्वैत शैव दर्शन" के नाम से भी जाना जाता है। वर्तमान समय में कुछ एक प्रसिद्ध लेखकों ने इसके लिए 'त्रिकदर्शन' शब्द का भी प्रयोग किया है।[1]

त्र्यम्बक शैवशास्त्र (काश्मीर अद्वैत शैव दर्शन) के प्रचार-प्रसार में मुख्य रूप से आचार्य वसुगुप्त, भट्टकल्लट, सोमानन्द, उत्पलदेव एवं अभिनवगुप्त का नाम आता है, जिनमें आचार्य वसुगुप्त का स्थान अग्रणीय है। मान्यता है कि भगवान् शिव ने स्वयं स्वप्न में इन्हें शिवसूत्रों का रहस्यात्मक ज्ञान दिया था, और इसी ज्ञान को आगे लोक कल्याण के लिए प्रचारित एवं प्रसारित करने के लिए इन्होनें यह ज्ञान अपने प्रधान शिष्य भट्टकल्लट को दिया।[2]

आचार्य भट्ट कल्लट का जीवन परिचय- आचार्य भट्ट कल्लट अद्वैतशैव दर्शन के अत्यन्त प्रसिद्ध एवं प्रमुख विद्वान थे। इनकी आध्यात्मिक एवं अद्वैत शैव शास्त्र में पर्याप्त निपुण्ता के आधार पर ही इनको 'भट्ट' ..... 'सूरि' ..... 'श्रीकल्लटपाद' आदि सम्बोधनों से आज भी आदरपूर्वक स्मरण किया जाता है। भगवान् शिव द्वारा दिए गए उपदेश अर्थात् शिवसूत्रों का ज्ञान वसुगुप्त के पश्चात् भट्ट कल्लट को ही प्राप्त हुआ, इस बात की चर्चा वार्तिकार भास्कर ने भी की है।[3]

आचार्य भट्ट काल्लट के माता-पिता एवं वंश आदि के विषय में अधिक जानकारी नहीं मिलती है। इनके पुत्र का नाम मुकुल भट्ट था, जिन्होंने 'अभिधावृत्ति मातृका' एवं 'काव्यालङ्कारसार' की रचना की थी।[4]

आचार्य भट्ट कल्लट ने अपने गुरु वसुगुप्त से जो शिवाद्वैत सिद्धान्तों के रहस्यों का विशेषकर शिवसूत्र और स्पन्दामृत का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया था, उसका उन्होंने अपने उपदेशों एवं कृतियों के माध्यम से सम्प्रेषण कर उसका प्रबल प्रचार-प्रसार किया है।[5]

सुखानन्द जाडू ने अपनी कृति शिवसूत्र विवरण में भट्ट कल्लट को आचार्य वसुगुप्त द्वारा शिवोपदेश देने का वर्णन किया है।[6] राम-कण्ठ ने भी भट्ट कल्लट आदि सिद्धों का उल्लेख वसुगुप्त के बाद किया है।[7] स्पन्द प्रदीका के रचयिता आचार्य उत्पल वैष्णव ने भी इसी बात की पुष्टी की है कि आचार्य भट्ट कल्लट को वह ज्ञान उनके गुरु वसुगुप्त से ही प्राप्त हुआ था, जिसका ज्ञान उन्हें स्वयं सिद्ध ने प्रदान किया था।[8] अपने गुरु द्वारा प्राप्त इस बहुमूल्य ज्ञान का इन्होनें एक ओर लोक में प्रकाशन किया, तथा दूसरी ओर उस समय द्वैत वासना के अधीन साधारण जनता का उद्धार भी किया। इस प्रकार इस पूण्य कार्य से इन्होनें कुछ समय से लुप्त हुए शिवशासन अर्थात् शास्त्र अद्वैत विज्ञान को पुनः उजागर करने में भारी योगदान दिया। राजानक भास्करकण्ठ ने स्वयं को इनकी शिष्य परम्परा तथा ज्ञान परम्परा का सातवां प्रत्यक्ष अधिकारी बतलाया है।[9]

अभिनवगुप्त ने अपने गुन्थों में आचार्य भट्ट कल्लट के वचनों को संकलित किया है।[10] 'प्रत्यभिज्ञाहृदय' के रचयिता आचार्य क्षेमराज ने भी भट्ट कल्लट के वचनों को उद्धृत किया है।[11]

समय- आचार्य भट्ट कल्लट ने भी अन्य आचार्यों की तरह अपने जीवन परिचय का या अपनी वंशावली का उल्लेख तो नहीं किया है; परन्तु फिर भी अन्य आचार्यों द्वारा दिए विवरणों से इनके बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है। इसका समय राजा अवन्ति वर्मा के समय से सम्बद्ध किया जाता है। राजतरंगिणी के रचयिता कल्हण ने भट्ट कल्लट को राजा अवन्ति वर्मा का समकालीन माना है। राजतरंगिणी में कल्लट को एक सिद्ध पुरुष के रूप में स्मरण किया गया है। राजा अवन्तिवर्मा का शासनकाल काश्मीर के इतिहास में 9वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है। इसलिए भट्ट कल्लट का समय भी 9वीं शताब्दी ही माना जाता है।[12]

आचार्य भट्ट कल्लट की कृत्तियाँ- आचार्य भट्ट कल्लट त्र्यम्बक शैव शास्त्र (काश्मीर शैव दर्शन) के बहुत प्रसिद्ध आचार्य रह चुके हैं। कल्लट एक सिद्ध पुरुष या दार्शनिक ही नहीं थे बल्कि एक अच्छे लेखक भी थे। इनकी विद्वता का प्रमाण इसी बात से मिल जाता है कि इन्होंने शैव दर्शन पर मूल रचनाएं लिखने के साथ-साथ उन पर सुबोध एवं सरल भाष्य

भी लिखे। वास्तव में इनकी कितनी कृत्तियां थी। इस विषय में कहीं भी कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इनकी उपलब्ध कृत्तियों के अलावा अन्य रचनाएं भी रही होगीं। इनकी कुछ कृत्तियों के नाम इस प्रकार हैं–

1) स्पन्द सर्वस्व, 2) तत्त्वार्थ चिन्तामणि, 3) स्पन्द सूत्र, 4) मधुवाहिनी, 5) शिवसूत्रविमर्शनी।

1) स्पन्द सर्वस्व- स्पन्द सर्वस्व स्पन्दकारिका या स्पन्दामृत पर लिखी गयी इनकी एक सरल, स्पष्ट एवं सुबोध वृत्ति है, जिसे इनकी मुख्य रचना भी माना गया है। इसमें आचार्य भट्ट कल्लट ने स्पन्द सिद्धान्त की बहुत ही सुन्दर ढंग से व्याख्या की है। स्पन्दसर्वस्व को आचार्य कल्लट ने चार निष्पन्दों (अध्यायों) में बांटा है-(i) स्वरूप स्पन्द, (ii) सहज विद्या, (iii) विभूति स्पन्द। एवं (iv) चतुर्थ निष्पन्द।

(i) स्वरूप स्पन्द- इसमें स्पन्दकारिका की पहली पच्चीस कारिकाओं को सुनियोजित किया गया है, जिसमें शिव के पारमार्थिक स्वभाव का विवेचन है। इसमें स्पन्द की विशेषताओं, स्वभाव, उपलब्धियों के उपाय और साथ ही उनके विर में उठाई गयी आशङ्काओं का भी निराकारण किया गया है। इनमें निरूपित उपायों के पालन से विश्व प्रपंच की परिवर्तन शीलता को प्रस्तुत किया गया है। इसमें शून्यवाद का भी खण्डन किया गया है। अन्ततः एक सफल योगी की तरह प्रबुद्ध के लिए अज्ञान के आच्छादन को पूर्ण रूप से नष्ट करना आवश्यक है।

(ii) सहज विद्या- इस निष्पन्द में सात कारिकाओं की व्याख्या की गयी है, जिसमें स्पन्द के प्रभाव से सहज विद्या को निरूपित किया गया है। इसमें शुद्ध एवं अशुद्ध रूप से विश्व को दो प्रकार से अभिव्यक्त किया गया है। इसमें योगाभ्यासी अर्थात् प्रबुद्ध के द्वारा सामान्य स्पन्द की अनुभूति के लिए अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति का निरूपण किया गया है।

(iii) विभूति स्पन्द- इस स्पन्द में उन्नीस कारिकाएं हैं, जिसमें परमशिव के ऐश्वर्य, एवं स्वातन्त्र्य की अवस्था में सामान्य स्पन्द के प्रभाव का वर्णन किया गया है। इसमें अभिष्ट वस्तुओ के ज्ञान के आभास, क्रिया शक्ति एवं दुःखों का निराकरण आदि की प्रस्तावना मिलती है। इसमें स्पन्द के स्वभाव की भी सम्यक् व्याख्या की गयी है। इसमें अनुग्रह प्राप्ति के दशा का उपाय भी वर्णित किया गया है। इसमें विश्व को स्पन्द पराशक्ति का विलास माना गया है।

(iv) चतुर्थ निष्पन्द- इस निष्पन्द में आचार्य भट्ट कल्लट ने अपने गुरु वसुगुप्त की अद्वितीय शक्ति तथा स्पन्द की चरमावस्था का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया गया है। वसुगुप्त के स्पन्दशास्त्र के तीन निष्पन्दों को क्षेमराज ने स्तुतिपरक माना है।[13] उसमें स्तुतिपरक कारिका का तात्पर्य भारती वाक, भगवती गुरु एवं गुरु की उपदेश सम्बधि वाणी की उत्कृष्टता से किया गया है।[14]

इस प्रकार आचार्य भट्ट कल्लट ने स्पन्द कारिका के वर्ण्य विषय का सम्यक् स्पष्टीकरण किया है, और स्पन्द के रहस्य को यथाशक्ति से सरल बनाने के लिए कारिकाओं के साथ वृत्ति का 'स्पन्दसर्वस्व' के नाम से प्रकाशन किया।

स्पन्दसूत्र, मधुवाहिणी और तत्त्वार्थचिन्तामणि- राजानक भास्कर कण्ठ के मतानुसार वसुगुप्त के शिवसूत्रों की आचार्य भट्ट कल्लट ने दो रचनाओं के द्वारा एक विश्द व्याख्या प्रस्तुत की थी। जिसमें उन्होंने पहले तीन खण्डों और अन्तिम के एक खण्ड की सामग्री को संम्मलित किया था। पहले त्रिक की व्याख्या कल्लट ने अपने स्पन्द सूत्रों के माध्यम से की थी और अन्तिम की तत्त्वार्थचिन्तामणि से। अभिनवगुप्त के अनुसार भट्ट कल्लट की शिवसूत्रों की व्याख्या करने वाली रचनाएं-मधुवाहिनी एवं तत्त्वार्थ-चिन्तामणि हैं, अतः स्पष्ट है कि मधुवाहिनी ही रचना है जिसमें उन्होंने स्वयं के स्पन्दसूत्रों को संकलित किया है, और जिसकी ओर उत्पल वैष्णव तथा राजानक भास्कर ने भी संकेत किया है। दुर्भाग्यवश भट्ट कल्लट की मधुवाहिनी तथा तत्त्वार्थचिन्तामणि नामक सर्वोत्तम कृत्तियां काल के साथ ही लुप्त हो गयी। परन्तु भट्ट कल्लट के उत्तरवर्ती आचार्यों की रचनाओं में इनका उल्लेख अवश्य मिलता है। विशेष रूप से तत्त्वार्थचिन्तमणि से तो परात्रीशिकाविवरण, प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, शिवसूत्र विमर्शनी आदि में उद्धरण भी मिलते हैं। सम्भवतः 'शैवी टीका' इसका ही पर्यायवाची नाम माना गया है।

शिवसूत्र वृत्ति- विद्वानों के मतानुसार शिवसूत्रों पर आधारित एक अति संक्षिप्त कृत्ति की उपलब्धि बतायी गयी है,

जिसे भट्ट कल्लट की रचना माना गया है। इस वृत्ति में शिव सत्रों की व्याख्या की गयी है। कुछ इसी के आधार पर तथा कुछ स्वयं की विद्वत्ता के बल पर आगे आचार्य अभिनवगुप्त के शिष्या क्षेमराज ने 'शिवसूत्रविमर्शिनी' नामक टीका का निर्माण किया था।[15]

इन रचनाओं के अलावा ऐसा प्रतीत होता है कि कल्लट ने 'कुलमत' के विषय पर भी कुछ न कुछ अवश्य लिखा होगा, जिसकी कोई रचना तो प्राप्त नहीं होती, परन्तु आचार्य कल्लट की अधिकृति से अभिनवगुप्त द्वारा तदिषयक उद्धरण देना इस बात का स्पष्ट परिचायक है, जिसमें कहा गया है कि 'कुलमत' में दूती की आवश्यकता साधक की परीक्षा के लिए इसलिए अति आवश्यक होती है क्योंकि पुरुष की अपेक्षा स्त्री की सुषम्ना स्वाभाविक रूप से अधिक सरलता से उन्मुक्त हो जाती है। इस तथ्य का जयरथ ने भी सम्यक् अनुमोदन किया है।[16]

आचार्य भट्ट कल्लट की कृत्तियों का अध्ययन करने पर इनके विषय में यह कहा जा सकता है कि यह केवल शास्त्र विद्या में निपुण नहीं थे बल्कि आध्यात्मिक विद्या के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे। आचार्य भट्ट कल्लट को राजा अवन्ति वर्मा के राज्य सभा में एक प्रख्यात सिद्ध के रूप में मान्यता प्राप्त थी। कल्लट आचार्य वसुगुप्त के प्रधान शिष्य थे। इन्होंने वसुगुप्त के साथ-साथ अन्य आचार्यों की शरण में जाकर भी ज्ञान प्राप्त किया था। अतः कल्लट को एक महान् एवं प्रकाण्ड पंडित भी कहा जाता है। आचार्य कल्लट ने तपक से मोहक तक अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख किया है।[17] आचार्य कल्लट ने केवल मौलिक रचनाएं ही नहीं लिखी, बल्कि वसुगुप्त के शिवसूत्रों पर सार रूप शिवसूत्र वृत्ति भी लिखी है। शिवसत्रू चार खण्डों में विभक्त थे। लोगों को स्पष्ट रूप से यह समझ नहीं आते थे, इसलिए इसपर उन्होंने दो टीकाएं भी लिखी थी। पहली मधुवाहिनी टीका थी और दूसरी तत्त्वार्थ-चिन्तामणि। ये दोनों टीकाएं योग विद्या की बहुमूल्य रत्न रहीं होगी। परन्तु दुर्भाग्यवश ये रचनाएं अब अनोपलब्ध हैं। वसुगुप्त कृत स्पन्दकारिका के अर्थ को स्पष्ट करने के उद्देश्य से इन्होनें 'स्पन्दसर्वस्व' नामक टीका भी लिखी, जो कि स्पन्दसूत्रों का सार रूप है। इसके अतिरिक्त इन्होंने स्वयं भी स्पन्द सूत्र लिखे। आचार्य भट्ट कल्लट का जनहित के लिए जो एक सिद्ध के रूप में योगदान है, उससे ज्ञान अर्जित कर लोग इन्हें कभी भी भूल नहीं पाएंगे तथा इनकी कृत्तियों को पढ़कर आने वाली पीढ़ियां भी इनकी ऋणी रहेंगी। इनका त्र्यम्बक शैव शास्त्र (अद्वैत काश्मीर शैव दर्शन) के प्रचार-प्रसार में अविस्मरणीय योगदान है।[18]

पादटिप्पणी

1. काश्मीर शैव दर्शन, पृ॰ 2-7
2. शिवसूत्र विमर्श, पृ॰ 5
3. वसुगुप्त गुरो पुरा..... सूरये श्री कल्लटाग्र। शिवसूत्र वार्तिक, पृष्ठ - 2, श्लोक-314
4. भट्ट कल्लटपुत्रेण मुकुलेन निरूपिता। सुरिप्रबोधनायेयमभिधावृत्तिमातृका।। अभिधावृत्तिमातृका - श्लोक-22
5. स्पन्दकारिका, श्लोक-2
6. शिवसूत्र विमर्श।
7. स्पन्दकारिका विवृत्ति, पृष्ठ-3
8. स्पन्द प्रदीपिका-भूमिका।
9. शिवसूत्र वार्तिक 11/6 त॰ 9 भूमिका।
10. ईश्वरप्रत्याभिज्ञाविवृत्ति विमर्शिनी, पृष्ठ-3
11. शिवसूत्र वार्तिक, पृष्ठ-3
12. राजतरंगिणी - 5/66
13. स्पन्द निर्णय, पृ॰ 1, 2

14. स्पन्द निर्णय, पृ॰ 5
15. काश्मीर शैव दर्शन, पृ॰ 25
16. शिव सूत्र वार्तिक, श्लोक-1/35
17. स्पन्द सर्वस्व, पृष्ठ-40, श्लोक-3
18. राजतरंगिणी, 5/66

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अभिधावृत्तिमातृका- डॉ॰ रेवाप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा विद्यामवण, वाराणसी
2. ईश्वर प्रत्याभिज्ञाविवृत्ति विमर्शिनी- अभिनवगुप्त, सम्पादक पण्डित मधुसूदन, कौलशास्त्री चौखम्बा, संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, भाग-1, 1991
3. काश्मीर शैव दर्शन, बलजिन्नाथ पण्डित शास्त्री, श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जम्मू प्रथम सस्करण 1973
4. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्– राजानक क्षेमराज, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1969
5. राजतंरगिनी- कल्हण, मुन्शी राम मनोहर लाल, 1960
6. शिव सूत्र वार्तिक- भट्ट भास्कर, काश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1916
7. शिवसूत्र विमर्श, शैवाचार्य, श्री स्वामी, लक्ष्मणजू, व्याख्याकार-जानकीनाथ कौल, कमल, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई, बंगलौर, वाराणसी, पुणे, पटना
8. स्पन्दकारिका विवृत्ति, श्रीरामकण्ठ, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1918
9. स्पन्दप्रदीपिका, उत्पल वैष्णव, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1940
10. स्पन्दनिर्णय, आचार्य क्षेमराज, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, ग्रन्थ-42
11. स्पन्दसर्वस्व, भट्ट श्रीकल्लट, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1960

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

दरबारी सत्ता के बीच बेला : 'राग दरबारी' में स्त्री अस्तित्व का संघर्ष

डॉ. प्रणीता पी.
आचार्य, हिंदी विभाग,
कोचीन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, केरल।

सार

श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास राग दरबारी भारतीय ग्रामीण समाज, सत्ता-संरचना और सामाजिक विडंबनाओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। सामान्यतः यह उपन्यास पुरुष-प्रधान राजनीतिक व्यवस्था और सत्ता के विभिन्न रूपों के अध्ययन के रूप में देखा जाता है, किंतु इसके भीतर स्त्री जीवन की उपेक्षा और उसके अस्तित्व-संघर्ष की भी एक महत्वपूर्ण कथा निहित है। प्रस्तुत शोध-पत्र में राग दरबारी के बेला पात्र के माध्यम से शिवपालगंज की व्यवस्था में स्त्री की स्थिति का विश्लेषण किया गया है। बेला उपन्यास की ऐसी स्त्री पात्र है जिसकी उपस्थिति तो प्रभावशाली है, किंतु उसकी अपनी आवाज़ लगभग अनुपस्थित है। उसका जीवन परिवार, समाज और पुरुष सत्ता द्वारा निर्धारित मानदंडों से नियंत्रित होता है। विवाह, प्रतिष्ठा और नैतिकता जैसे प्रश्नों पर उसके व्यक्तिगत निर्णयों की उपेक्षा की जाती है तथा उसे पुरुष-दृष्टि के आधार पर परिभाषित किया जाता है। उसकी कला और प्रतिभा को पहचान मिलने के बजाय उसके चरित्र और नैतिकता पर प्रश्न उठाए जाते हैं। इस शोध में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि बेला केवल एक व्यक्तिगत पात्र नहीं, बल्कि उन असंख्य स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जिनकी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ और अभिव्यक्ति पितृसत्तात्मक समाज में दबा दी जाती हैं। शिवपालगंज का 'दरबार' सत्ता, वर्चस्व और पुरुष प्रभुत्व का प्रतीक बनकर उभरता है, जहाँ बेला की मौन उपस्थिति स्त्री अस्मिता के संकट को उजागर करती है। इस प्रकार बेला का चरित्र स्त्री के सामाजिक हाशियाकरण, मौन प्रतिरोध और अस्तित्व की खोज का महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द : पितृसत्ता, स्त्री अस्मिता, पुरुष दृष्टि, मौन प्रतिरोध, घरेलूपन, सत्ता-संरचना,घरेलूपन, वर्चस्व, पुरुष दृष्टि, अधीनता, अनैतिकता।

श्रीलाल शुक्ल का राग दरबारी मुख्यतः ग्रामीण राजनीति, सत्ता-संरचना और सामाजिक विडंबनाओं पर केंद्रित उपन्यास है। पहली दृष्टि में यह पुरुष-प्रधान संसार का आख्यान प्रतीत होता है, जहाँ वैद्यजी, रंगनाथ, रूप्पन, बद्री पहलवान और अन्य पुरुष पात्र कथा को आगे बढ़ाते हैं। किंतु इस पुरुष-केंद्रित संसार के बीच बेला एक ऐसी स्त्री है जिसकी उपस्थिति तो है, पर उसकी आवाज़ अनुपस्थित है। यही अनुपस्थिति उसे उपन्यास का एक महत्वपूर्ण प्रतीक बना देती है। बेला उपन्यास में कभी अपनी इच्छाओं, विचारों या भावनाओं को प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त नहीं करती। उसके बारे में पाठक को जो कुछ भी पता चलता है, वह पुरुष पात्रों की दृष्टि और टिप्पणियों के माध्यम से मिलता है। इस प्रकार उसकी पहचान एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में नहीं, बल्कि पुरुष-समाज द्वारा निर्मित छवि के रूप में सामने आती है। उसकी चुप्पी केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि

उस सामाजिक व्यवस्था की अभिव्यक्ति है जहाँ स्त्रियों को बोलने का अधिकार नहीं दिया जाता। यदि राग दरबारी के कथानक की समग्र यात्रा पर दृष्टि डालें, तो स्पष्ट होता है कि इसका मुख्य केंद्र पुरुष-प्रधान और पुरुष वर्चस्व वाली सामाजिक व्यवस्था है। इस पुरुष-केंद्रित समाज का आधार स्त्री और पुरुष के लिए अलग-अलग सामाजिक क्षेत्रों का निर्माण है। स्त्रियों को सामान्यतः घर की चारदीवारी और आँगन तक सीमित कर दिया गया है, जहाँ उनकी आवाज़ या तो सुनाई नहीं देती या उसे महत्व नहीं दिया जाता। उन्हें मुख्य रूप से संतानोत्पत्ति और घरेलू कार्यों तक सीमित भूमिकाएँ सौंप दी गई हैं। दूसरे शब्दों में, उनका घरेलूकरण कर दिया गया है।

उपन्यास में बेला को छोड़कर किसी अन्य स्त्री पात्र का नाम स्पष्ट रूप से सामने नहीं आता। ऐसे में प्रश्न उठता है कि नामकरण का महत्व क्या है? इसका उत्तर सरल है—यदि किसी व्यक्ति का नाम नहीं है, तो उसकी स्वतंत्र पहचान भी नहीं होती। परिणामस्वरूप, स्त्रियों को मानो "व्यस्त सड़कों की सांझ में पड़े हुए गठरियों जैसे निजीव वस्तुओं"[1] के समान देखा जाता है, या उनकी तुलना "बकरी की तरह मिमियाती हुई स्त्रियों"[2] से की जाती है। अर्थात, यदि उनकी आवाज़ सुनाई भी देती है, तो उसे पशुओं की निरर्थक ध्वनि समझकर महत्वहीन मान लिया जाता है।इस प्रकार स्त्रियों की आवाज़ को दबा देना अथवा उसे महत्वहीन समझना, शिवपालगंज के सामाजिक ढाँचे में विद्यमान लैंगिक असमानता और पितृसत्तात्मक वर्चस्व को उजागर करता है। बेला का मौन केवल एक पात्र की चुप्पी नहीं, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था का प्रतीक है जिसमें स्त्रियों के अस्तित्व और उनकी अभिव्यक्ति को व्यवस्थित रूप से हाशिए पर धकेल दिया जाता है। तब प्रश्न यह उठता है कि शिवपालगंज गाँव में स्त्री की वास्तविक पहचान या उसकी स्वाभाविक उपस्थिति को कैसे समझा जाए? क्या उसकी भूमिका केवल दूसरों की सेवा करने और स्वयं को अधीन बनाए रखने तक ही सीमित है? यदि अधिकांश स्त्रियाँ शिवपालगंज के घरों के आँगनों तक सीमित रहती हैं, तो फिर बेला इस पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष-दृष्टि का केंद्र कैसे बन जाती है?

बेला का नाम कभी भी किसी सकारात्मक या प्रशंसनीय संदर्भ में नहीं लिया जाता। इसके विपरीत, छोटे पहलवान उसे "निम्न नैतिक मूल्यों वाली स्त्री"[3] के रूप में प्रस्तुत करता है। इससे स्पष्ट होता है कि समाज में गायन और नृत्य जैसी कलाओं को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता, बल्कि उन्हें स्त्री के चरित्र से जोड़कर उसके नैतिक मूल्यांकन का आधार बना दिया जाता है। इस प्रकार बेला शिवपालगंज की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को समझने का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण बन जाती है। वह उस पितृसत्तात्मक व्यवस्था की प्रतिनिधि है, जहाँ स्त्री की पहचान उसके व्यक्तित्व या उसकी प्रतिभा से नहीं, बल्कि पुरुष समाज द्वारा निर्मित नैतिक मानकों से तय की जाती है। शिवपालगंज, जो वैद्यजी के सत्ता-केन्द्र या 'दरबार' का प्रतीक है, वहाँ बेला का चरित्र यह उजागर करता है कि स्त्रियाँ सामाजिक और सांस्कृतिक दोनों स्तरों पर किस प्रकार हाशिए पर रखी जाती हैं।[4] उपन्यास की कथा-योजना में बेला वैद्यजी की सफलता के मार्ग में आने वाले व्यवधान का कारण बनती है। वैद्यजी के लिए अंतरजातीय विवाह वास्तव में सामाजिक सुधार का माध्यम नहीं, बल्कि अपनी तथाकथित आधुनिकतावादी विचारधारा का प्रदर्शन करने का एक साधन है। वस्तुतः वे बद्री और बेला के अंतरजातीय विवाह का समर्थन इसलिए करते हैं ताकि समाज में अपनी प्रतिष्ठा, प्रभाव और राजनीतिक वर्चस्व को और अधिक सुदृढ़ कर सकें।

यहाँ विवाह सामाजिक संस्था न रहकर व्यावसायिक और राजनीतिक उपकरण बन जाता है। गयादीन के प्रसंग में बेटी का विवाह पिता के लिए चिंता का विषय बन जाता है, जहाँ दहेज की समस्या इसे और जटिल बना देती है। बेला को जीवनसाथी चुनने की स्वतंत्रता नहीं मिलती; उसके विवाह से जुड़े सभी निर्णय उसके पिता लेते हैं। परिणामस्वरूप उसकी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ और अधिकार उपेक्षित रह जाते हैं तथा उसका जीवन पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा नियंत्रित होता है। 'महाराज, मेरी योजनाएँ खराब मत कीजिए। मैंने किसी तरह अपनी लड़की को बड़ा किया है। शहर में अग्रवाल वैश्य लोग हैं, जो उसे स्वीकार करने को तैयार हैं। विवाह में केवल पंद्रह दिन रह गए हैं। यदि आपने मेरी बेटी को बदनाम किया, तो आप चाहे कितने ही बड़े नेता क्यों न हों, आपका सम्मान भी नष्ट हो जाएगा।"[5]

बेला की आवाज़ का एकमात्र संकेत उस गुमनाम पत्र के माध्यम से मिलता है, जिसकी प्रामाणिकता स्वयं संदिग्ध है। यदि बेला शिक्षित नहीं है, तो यह प्रश्न स्वाभाविक है कि वह अपनी भावनाओं और विचारों को लिखित रूप में कैसे

व्यक्त कर सकती है, जबकि उसकी अभिव्यक्ति पहले से ही सामाजिक रूप से सीमित है? सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उसके लिए वैद्यजी के घर ऐसा पत्र भेजने का साहस करना भी लगभग असंभव प्रतीत होता है। यदि यह मान भी लिया जाए कि वह पत्र वास्तव में बेला ने ही लिखा था, तो यह उसे केवल अपनी आवाज़ ही नहीं देता, बल्कि उसे स्वायत्तता भी प्रदान करता। इस दृष्टि से पत्र-लेखन उसके लिए स्वतंत्र अभिव्यक्ति का माध्यम बन सकता था, जिसके द्वारा वह अपने विचार, इच्छाएँ और भावनाएँ प्रकट कर सकती थी। किंतु उपन्यास में बेला के पिता के कथन से स्पष्ट हो जाता है कि बेला पर्याप्त रूप से शिक्षित नहीं है। वे कहते हैं—"भाई, तुम तो शायद किसी बी.ए. या एम.ए. पास लड़की से विवाह करने का सपना देख रहे हो।"[6] यह कथन उस सामाजिक मानसिकता को उजागर करता है, जिसमें अशिक्षित स्त्री को पुरुष की योग्यता और सामाजिक प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं माना जाता। दूसरी ओर, बेला अपने पिता से कभी यह प्रश्न नहीं करती कि उसे उचित शिक्षा क्यों नहीं दी गई। उसकी यह चुप्पी भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा निर्मित सामाजिक संस्कारों का परिणाम है।

यदि बेला भी रेवती की तरह शिक्षित और आत्मनिर्भर होती, तो समाज उसे परिवार के लिए अभिशाप मानता। इससे स्पष्ट है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री की शिक्षा और स्वायत्तता को दबाती है। बेला स्त्री-अधिकारों के दमन का प्रतीक है, जिसकी पहचान परिवार और समाज के हित में कुचल दी जाती है। गायन की प्रतिभा होने पर भी उसे कलाकार नहीं, बल्कि पुरुष-दृष्टि की सौंदर्य-वस्तु माना जाता है। इसलिए समाज उसकी कला के बजाय उसके रूप, कथित 'अनैतिकता' और चरित्र का ही मूल्यांकन करता है।

बेला के चरित्र के माध्यम से श्रीलाल शुक्ल यह महत्वपूर्ण प्रश्न उठाते हैं कि यदि किसी स्त्री को अपनी प्रतिभा विकसित करने, अपने सपनों को पूरा करने और अपनी इच्छाओं के अनुसार जीवन जीने का अवसर भी मिले, तो भी सत्ता और पितृसत्ता के प्रभुत्व वाले समूह उसे आगे बढ़ने नहीं देते। वे उसकी स्वतंत्र पहचान और अभिव्यक्ति को दबा देते हैं। इस प्रकार बेला का चरित्र उस स्त्री का प्रतीक बन जाता है, जिसकी प्रतिभा और आकांक्षाएँ पुरुष-प्रधान सामाजिक व्यवस्था द्वारा निरंतर नियंत्रित, उपेक्षित और दमनित की जाती हैं।बेला उपन्यास में एक ओर कथा के विकास को आगे बढ़ाने वाली 'कड़ी' का कार्य करती है, तो दूसरी ओर वह उस सत्तावादी और निष्क्रिय हो चुकी नौकरशाही व्यवस्था के लिए एक संभावित चुनौती भी बन जाती है। इसके बावजूद उसकी अपनी स्वतंत्र पहचान नहीं बन पाती और वह पुरुष-प्रधान समाज के हाथों की कठपुतली बनकर रह जाती है।बेला का मौन अनेक अनुत्तरित प्रश्नों और संदेहों को जन्म देता है। यही मौन समाज को उसके चरित्र के बारे में मनमाने निष्कर्ष निकालने का अवसर देता है, जिसके परिणामस्वरूप उसे अनैतिक स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उसकी अशिक्षा भी उसके व्यक्तित्व की एक बड़ी कमी बन जाती है, क्योंकि शिक्षा के अभाव में वह अपने अधिकारों और विचारों को दृढ़ता से व्यक्त नहीं कर पाती। फलस्वरूप उसके जीवन से जुड़े सभी निर्णय उसके पिता को लेने पड़ते हैं।

उपन्यास में बेला विवाह, प्रेम और प्रतिष्ठा के केंद्र में है, पर निर्णय का अधिकार उससे छीन लिया गया है। उसके जीवन और संबंधों पर परिवार तथा समाज के पुरुष नियंत्रण रखते हैं। उसके चरित्र पर लगने वाले आरोप और अफवाहें दर्शाते हैं कि पितृसत्तात्मक समाज स्त्री का मूल्यांकन तो करता है, पर उसे अपनी बात कहने का अवसर नहीं देता। उसकी चुप्पी प्रतिरोध की विफलता नहीं, बल्कि पितृसत्ता द्वारा थोपी गई है। सत्ता-संघर्ष में प्रत्यक्ष भाग न लेने पर भी उसका नाम पुरुषों की सामाजिक और राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं का माध्यम बनता है। इस प्रकार बेला सत्ता का केंद्र नहीं, बल्कि उसकी राजनीति का साधन है। साथ ही, वह उन ग्रामीण स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जिनकी उपस्थिति के बावजूद उनकी आवाज़ इतिहास, राजनीति और साहित्य के मुख्य विमर्श से बाहर रहती है। राग दरबारी में स्त्रियों की सीमित उपस्थिति पुरुष-प्रधान सार्वजनिक जीवन और स्त्रियों के घरेलू दायरे तक सीमित होने को रेखांकित करती है।

बेला राग दरबारी की सबसे मुखर मौन पात्र है। उसकी चुप्पी केवल एक चरित्र की विशेषता नहीं, बल्कि भारतीय ग्रामीण समाज में स्त्री की सामाजिक स्थिति का रूपक है। श्रीलाल शुक्ल ने प्रत्यक्ष रूप से नारी-विमर्श नहीं लिखा, किंतु

बेला के माध्यम से उन्होंने यह दिखाया कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री की आवाज़ किस प्रकार दबा दी जाती है। इसलिए बेला को अनसुनी आवाज़ कहना उचित है, क्योंकि उसका मौन स्वयं समाज की गहरी लैंगिक असमानताओं का सशक्त संकेत बन जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९६८, पृ. 7
2. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९६८, पृ. 188
3. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९६८, पृ. 23
4. रॉय, अनुपमा एवं सिंह, उज्ज्वल कुमार, "राग दरबारी टेल्स अस ट्रस्ट इन पॉलिटिकल अथॉरिटी कैन नेवर बी एब्सोल्यूट," द वायर, नई दिल्ली, 22 जनवरी 2018।
5. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९६८, पृ. 308
6. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९६८, पृ. 280

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

शंकर शेष के नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' की सिनेमा में प्रासंगिकता

जशन काठपाल
शोधार्थी, पीएच.डी.(हिंदी)

डॉ. शिवचरण शर्मा
शोध निर्देशक
आचार्य, हिन्दी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय,
हनुमानगढ़, राजस्थान-335801

आलेख सार

डॉ. शंकर शेष हिंदी नाटक साहित्य के अत्यंत सशक्त एवं महत्वपूर्ण नाटककार रहे हैं, जिनकी रचनाओं में सामाजिक, राजनीतिक तथा नैतिक प्रश्नों का गहन, सूक्ष्म और यथार्थपरक चित्रण दृष्टिगोचर होता है। उनके नाटक केवल मनोरंजन का साधन नहीं हैं, अपितु वे समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, सत्ता के दुरुपयोग, शिक्षा-व्यवस्था की विसंगतियों, सामाजिक असमानता तथा नैतिक पतन जैसे ज्वलंत विषयों को प्रभावशाली ढंग से उद्घाटित करते हैं। विशेषतः 'एक और द्रोणाचार्य' नाटक इन समस्त प्रश्नों को केंद्र में रखकर आधुनिक समाज की विडंबनाओं को उजागर करता है। यही कारण है कि इसकी विषयवस्तु आज के सिनेमा के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होती है। डॉ. शंकर शेष के नाटकों में समकालीन जीवन से संघर्षरत व्यक्ति ही प्रमुख केंद्र में रहता है। उनके पात्र आदर्श और यथार्थ के बीच निरंतर द्वंद्व में उलझे दिखाई देते हैं, जो आधुनिक फिल्मी पात्रों के समान ही मानसिक तथा नैतिक संघर्षों से गुजरते हैं। फलतः उनके नाटकों की विषयवस्तु सिनेमा के कथानक से सहज रूप में जुड़ जाती है। 'एक और द्रोणाचार्य' में शिक्षक की भूमिका, उसकी विवशता तथा व्यवस्था के दबाव में नैतिक मूल्यों का विघटन जिस प्रकार चित्रित हुआ है, वही स्थिति आज अनेक फिल्मों में परिलक्षित होती है।

बीज शब्द :- सिनेमा, शिक्षा-क्षेत्र,नाटक, नैतिक मूल्य, फिल्मफेयर, प्रासंगिकता

प्रस्तावना

डॉ. शंकर शेष को हिंदी नाट्य परंपरा में मोहन राकेश के पश्चात् की पीढ़ी के प्रमुख सिनेमा कार के रूप में स्वीकार किया जाता है। उन्होंने लगभग चालीस वर्ष की आयु में नाट्य-लेखन प्रारंभ किया तथा अल्पावधि में ही लगभग बीस नाटकों की रचना कर अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित की। उन्हें फिल्मफेयर पुरस्कार से सम्मानित किया गयाय साथ ही उन्होंने फिल्मों के लिए कथाएँ लिखकर साहित्य और सिनेमा के मध्य एक सशक्त सेतु का निर्माण किया। उनके नाटकों में दृश्यात्मकता, संवाद-प्रभावशीलता तथा कथ्य की सुदृढ़ता विद्यमान है, जो उन्हें सिनेमा के लिए उपयुक्त बनाती है।

शोध उद्देश्य

1. 'एक और द्रोणाचार्य' नाटक की मूल विषयवस्तु, कथानक और प्रमुख विचारों का विश्लेषण करना।

2. नाटक में प्रस्तुत शिक्षा व्यवस्था, नैतिक मूल्यों तथा सामाजिक विडंबनाओं का अध्ययन करना।

3. यह समझना कि नाटक में दर्शाए गए गुरु-शिष्य संबंध और नैतिक संकट आज के सिनेमा में किस प्रकार अभिव्यक्त हो रहे हैं।

4. आधुनिक हिंदी सिनेमा में शिक्षा, भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता से जुड़े विषयों की तुलना इस नाटक से करना।

5. नाटक के पात्रों और परिस्थितियों की समकालीन फिल्मों में प्रासंगिकता को स्पष्ट करना।

6. यह विश्लेषण करना कि सिनेमा किस प्रकार इस नाटक के संदेश को व्यापक समाज तक पहुँचाने का माध्यम बन सकता है।

7. नाटक के आदर्शों और संदेशों की वर्तमान सामाजिक एवं शैक्षिक संदर्भों में उपयोगिता को स्थापित करना।

8. यह मूल्यांकन करना कि बदलते समय में भी इस नाटक की विचारधारा किस हद तक जीवंत और प्रभावशाली बनी हुई है।

इस नाटक में द्विस्तरीय कथा-संरचना विद्यमान है-एक ओर मिथकीय संदर्भ, तो दूसरी ओर समकालीन यथार्थय साथ ही विमलेन्दु की उपकथा इसे और अधिक मार्मिक बनाती है। विमलेन्दु भ्रष्ट शिक्षा-व्यवस्था के विरुद्ध अपने आदर्शों के साथ अडिग रहता है, परंतु अंततः उसे मृत्यु प्राप्त होती है। उसकी अकाल मृत्यु को समाज ने 'बलिदान' का रूप अवश्य दिया, किंतु उसकी मानवीय त्रासदी की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। उसकी पत्नी और संतान असुरक्षित रह जाती हैं, जबकि समाज केवल औपचारिक संवेदनाएँ व्यक्त करता है। इस संदर्भ में विमलेन्दु का कथन अत्यंत मार्मिक है, ''तुम जानते हो, पर कहोगे कैसे! सब मन ही मन मेरी मूर्खता पर तरस खा रहे थे, किसी की जान जाए और ये लोग पब्लिसिटी करें।"[1] महाभारतकालीन द्रोणाचार्य स्वाभिमानी, संवेदनशील तथा विद्या के यथोचित मूल्यांकन के आकांक्षी शिक्षक थे, किंतु आर्थिक दरिद्रता ने उन्हें विवश बना दिया। उनकी पत्नी पी. अत्यंत कठिन परिस्थितियों में जीवन-यापन करती है। जब तक वे अपने आदर्शों पर अडिग रहे, तब तक अभाव उनके साथ रहाय परंतु जैसे ही उन्होंने समझौता किया, उन्हें भौतिक सुख-सुविधाएँ प्राप्त हो गईं। किंतु इस प्रक्रिया में उन्होंने मानसिक शांति, स्वाभिमान तथा न्यायप्रियता खो दी। स्वयं द्रोणाचार्य स्वीकार करते हैं, ''उस दासता ने मुझे सुरक्षा दी, झूठी प्रतिष्ठा दी। सुविधाओं ने मेरे भीतर के मनुष्य को कुंठित कर दिया, मैं प्रतिदिन छोटा होता गया।"[2]

वर्तमान संदर्भ में प्रो. अरविन्द का चरित्र इसी मानसिक द्वंद्व का प्रतिनिधित्व करता है। वह व्यवस्था से संघर्ष करना चाहता है, किंतु पारिवारिक दबाव, सामाजिक भय तथा व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ उसे समझौता करने के लिए बाध्य कर देती हैं। उसकी पत्नी लीला, मित्र यदु तथा संस्थान के प्रेसीडेंट का दबाव उसकी नैतिक दृढ़ता को कमजोर कर देता है। अंततः वह स्वयं स्वीकार करता है, ''क्या करूँ, लीला? उसने मेरी जमीन छीन ली।"[3] यह स्थिति तब और अधिक गंभीर हो जाती है, जब व्यक्ति को सही और गलत का पूर्ण ज्ञान होते हुए भी वह अन्याय का साथ देता है। शिक्षा-क्षेत्र, जहाँ राष्ट्र की भावी पीढ़ी का निर्माण होता है, वहाँ यदि नैतिक पतन व्याप्त हो जाए, तो उसके दुष्परिणाम अत्यंत व्यापक होते हैं। एक आदर्श शिक्षक अपने आचरण से विद्यार्थियों के जीवन को दिशा देता है, किंतु जब वही शिक्षक समझौता कर लेता है, तब पूरी व्यवस्था प्रभावित होती है।

'एक और द्रोणाचार्य' नाटक ऐसे ही एक बुद्धिजीवी वर्ग का अनावरण करता है, जो बाह्य रूप से प्रतिष्ठित होते हुए भी भीतर से स्वार्थ और सत्ता के अधीन होता है। इस संदर्भ में नर नारायण राय का कथन उल्लेखनीय है कि यह नाटक समाज के उस वर्ग को उजागर करता है, जो स्वयं को आदर्श मानते हुए भी सत्ता के समक्ष नतमस्तक रहता है।

प्रो. अरविन्द अपनी कायरता के कारण न्याय का साथ नहीं दे पाता और निर्दोषों के साथ अन्याय करता है। यही स्थिति महाभारत के द्रोणाचार्य की भी थी, जिन्होंने एकलव्य से अंगूठा माँगकर तथा द्रौपदी के अपमान के समय मौन रहकर अन्याय का समर्थन किया। द्रौपदी की करुण पुकार भी उनकी चेतना को जाग्रत नहीं कर सकी। इसी प्रकार आधुनिक संदर्भ में भी अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस दुर्लभ होता जा रहा है।

नाटक में राजकुमार का चरित्र शिक्षा-प्रणाली की विडंबना को उजागर करता है, जहाँ ज्ञान अर्जन के स्थान पर केवल प्रमाण-पत्र प्राप्त करना लक्ष्य बन गया है। परीक्षा-प्रणाली की भ्रष्टता इस समस्या को और गंभीर बनाती है। बिहार टॉपर घोटाले जैसे उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि जब शिक्षा-व्यवस्था ही भ्रष्ट हो जाए, तब राष्ट्र का भविष्य संकट में पड़ जाता है।

यह समस्या केवल बोर्ड परीक्षाओं तक सीमित नहीं रही है, बल्कि अब विश्वविद्यालय स्तर तक भी पहुँच चुकी है। पीएचडी जैसी उच्च डिग्रियों के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंधों में भी नकल के मामले सामने आने लगे हैं। इस स्थिति को डॉ. शंकर शेष ने गहराई से समझा और अपने नाटक 'बंधन अपने-अपने' में इसका प्रभावी चित्रण किया है। यह नाटक शिक्षित वर्ग पर आधारित है, जिसमें डॉ. जयंत जैसे ईमानदार और प्रतिष्ठित प्रोफेसर हैं, जिन्होंने शिक्षा जगत में अपनी मेहनत और सत्यनिष्ठा से पहचान बनाई है। वहीं दूसरी ओर आचार्य चंद्रिका प्रसाद जैसे शिक्षक भी हैं, जिनका लक्ष्य अधिक से अधिक विद्यार्थियों को पीएचडी दिलाना है, चाहे वे योग्य हों या नहीं। चंदन का कथन इस प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है कि 'वह आचार्य चंद्रिका प्रसाद के निर्देशन में पीएचडी करना चाहता है, क्योंकि उनके मार्गदर्शन में बिना अधिक परिश्रम के डिग्री प्राप्त की जा सकती है।'[6] यह मानसिकता विद्यार्थियों को परिश्रम से दूर ले जाती है और उन्हें केवल डिग्री प्राप्त करने की ओर प्रेरित करती है। परिणामस्वरूप, शिक्षा का मूल उद्देश्य एक आदर्श और जिम्मेदार नागरिक का निर्माण-प्रभावित होता है। ऐसे में अयोग्य लोग उच्च पदों पर पहुँचकर इस समस्या को और बढ़ाते हैं, जिससे समाज की प्रगति बाधित होती है। शोध कार्यों में भी भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा है, जहाँ कई बार शोध पत्रों की चोरी या दूसरों से लिखवाने जैसी घटनाएँ सामने आती हैं। यह स्थिति चिंता का विषय है, क्योंकि यह शिक्षा व्यवस्था की गुणवत्ता को गिराती है।

यह समस्या केवल शिक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि नौकरी और पदोन्नति के क्षेत्र में भी फैल चुकी है। डॉ. शेष ने अपने नाटक में यह दिखाया है कि 'किस प्रकार लोग अपनी योग्यता और मेहनत के बजाय अनुचित तरीकों से पदोन्नति पाने का प्रयास करते हैं।'[7] चंदन का उदाहरण दर्शाता है कि वह अपने वरिष्ठ अधिकारी को खुश करने के लिए उनकी पत्नी के लिए विदेश से उपहार मंगवाने जैसे उपाय करता है, ताकि उसे प्रमोशन मिल सके। जबकि वास्तविकता यह है कि पदोन्नति व्यक्ति की कार्यकुशलता और योग्यता के आधार पर होनी चाहिए।

सिनेमा के संदर्भ में देखा जाए तो शंकर शेष के नाटकों की प्रमुख विशेषता उनकी दृश्यात्मकता तथा संवाद-प्रधानता है। उनके कथानकों में नाटकीयता, मनोवैज्ञानिक गहराई और सामाजिक यथार्थ का सशक्त समन्वय मिलता है, जो उन्हें फिल्मी रूपांतरण के लिए उपयुक्त बनाता है। 'एक और द्रोणाचार्य' में निहित शिक्षा-व्यवस्था की विसंगतियाँ, नैतिक पतन और वर्गीय असमानता जैसे विषय आज भी सिनेमा में बार-बार अभिव्यक्त हो रहे हैंय अतः यह नाटक सिनेमा के लिए एक महत्वपूर्ण प्रेरणा-स्रोत है।

निष्कर्ष

डॉ. शंकर शेष का नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' न केवल अपने समय में महत्वपूर्ण था, अपितु वर्तमान सिनेमा और समाज के संदर्भ में भी अत्यंत प्रासंगिक है। 1971 में रचित यह नाटक आज भी शिक्षा-तंत्र, नैतिक संकट तथा सामाजिक विसंगतियों को उतनी ही तीव्रता से प्रतिबिंबित करता है। आज भी प्रो. अरविन्द जैसे शिक्षक, प्रेसीडेंट जैसे स्वार्थी तंत्र तथा विमलेन्दु जैसे आदर्शवादी पात्र हमारे समाज में विद्यमान हैं। ऐसी परिस्थितियों में यह नाटक हमें आत्ममंथन के लिए प्रेरित करता है कि क्या हम वास्तव में न्याय, नैतिकता और समानता के मार्ग पर अग्रसर हैं। यही इसकी स्थायी प्रासंगिकता तथा सिनेमा में इसकी महत्ता का मूल आधार है।

संदर्भ सूची

1. कुकरेती, हेमंत (सं.), 'शंकर शेष समग्र नाटक' (खण्ड-2), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. राय, नर नारायण (सं.), 'हिंदी नाटक और नाट्य समीक्षा'।
3. कुकरेती, हेमंत (सं.), 'शंकर शेष समस्त नाटक' (खण्ड-2)।
4. जाधव, डॉ. संपतराव, 'शेष सम्पूर्ण साहित्य का अनुशीलन', विनय प्रकाशन, कानपुर।
5. चौबे, प्रो. सरयू प्रसादय डॉ. अखिलेश, 'भारतीय शिक्षा की समस्याएँ', भवदीय प्रकाशन, फैजाबाद।
6. अग्रवाल, डॉ. रंजना वर्दे, 'एक और द्रोणाचार्य : एक मूल्यांकन', विमल प्रकाशन, कानपुर।
7. कुकरेती, हेमंत (सं.), 'शंकर शेष समस्त नाटक' (खण्ड-2)।

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

हबीब कैफ़ी के उपन्यास 'गमना' में आदिवासी जीवन का यथार्थ : शोषण, अस्मिता और प्रतिरोध का विमर्श

सलमा अश्फ़ा
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, उ.प्र., 202002
ईमेल- sashfa86@gmail.com
मोबाइल संख्या- 8601425236

शोध सार- हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श एक सशक्त सामाजिक-सांस्कृतिक धारा के रूप में विकसित हुआ है, जिसने मुख्यधारा से उपेक्षित आदिवासी समुदायों के जीवन-संघर्ष, अस्मिता, सांस्कृतिक पहचान और अधिकारों के प्रश्नों को साहित्य के केंद्र में स्थापित किया है। आदिवासी समाज अपनी प्रकृति-संलग्न जीवन-दृष्टि, सामूहिकता, श्रम-संस्कृति और लोकपरंपराओं के लिए जाना जाता है, किंतु आधुनिक विकास प्रक्रियाओं, संसाधनों पर बाहरी नियंत्रण, विस्थापन और सामाजिक उपेक्षा के कारण वह निरंतर संकटों का सामना करता रहा है। हिंदी कथा-साहित्य में फ़णीश्वरनाथ रेणु, शानी, संजीव, रणेन्द्र, भगवान दास मोरवाल आदि रचनाकारों ने आदिवासी जीवन की विविध समस्याओं और संघर्षों को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति दी है। इसी परंपरा में हबीब कैफ़ी का उपन्यास 'गमना' आदिवासी जीवन के सामाजिक एवं सांस्कृतिक यथार्थ को प्रस्तुत करने वाली महत्वपूर्ण कृति है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में हबीब कैफ़ी के उपन्यास 'गमना' के माध्यम से राजस्थान के गोड़वाड़ क्षेत्र के आदिवासी समाज का सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय अध्ययन किया गया है। उपन्यास का प्रमुख पात्र गमना आदिवासी अस्मिता, जागरूकता और संघर्ष चेतना का प्रतिनिधि है, जो अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाता है। इस अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि 'गमना' केवल आदिवासी जीवन का चित्रण करने वाली रचना नहीं है, बल्कि यह सामाजिक असमानताओं और शोषणकारी संरचनाओं की आलोचना भी करता है। हबीब कैफ़ी का यह उपन्यास आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य में आदिवासी विमर्श को समृद्ध करने वाली ऐसी महत्वपूर्ण कृति है, जिसमें सामाजिक यथार्थ, मानवीय संवेदना और सांस्कृतिक अस्मिता का प्रभावशाली समन्वय दिखाई देता है।

बीज शब्द- हबीब कैफ़ी, गमना, आदिवासी जीवन, सामाजिक यथार्थ, सांस्कृतिक अस्मिता, विस्थापन, शोषण, प्रतिरोध चेतना।

शोध आलेख- हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श समकालीन साहित्य की एक महत्वपूर्ण वैचारिक धारा के रूप में स्थापित हो चुका है। यह विमर्श केवल आदिवासी समाज की आर्थिक समस्याओं अथवा सामाजिक पिछड़ेपन का चित्रण नहीं करता, बल्कि उनके अस्तित्व, अस्मिता, संस्कृति, परंपरा और अधिकारों के प्रश्नों को केंद्र में रखता है। आदिवासी समाज भारतीय सभ्यता का वह अभिन्न अंग है, जिसकी जीवन-दृष्टि प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व, सामूहिकता, श्रम-संस्कृति और लोकविश्वासों पर आधारित रही है। किंतु आधुनिक विकास प्रक्रिया, संसाधनों पर बाहरी नियंत्रण, जंगलों का विनाश, भूमि से विस्थापन और सामाजिक उपेक्षा ने इस समुदाय को निरंतर संकटों से घेरा है। आदिवासी समाज की त्रासदी यह है कि

विकास और आधुनिकता के नाम पर जिन प्रक्रियाओं को प्रगति का प्रतीक माना गया, वे अनेक बार उनके जीवन के विनाश का कारण बनीं। जल, जंगल और जमीन से जुड़े उनके पारंपरिक अधिकारों पर संकट उत्पन्न हुआ। परिणामस्वरूप आदिवासी समुदायों को अपनी मूल भूमि छोड़कर पलायन के लिए विवश होना पड़ा। यह पलायन केवल भौगोलिक परिवर्तन नहीं था, बल्कि सांस्कृतिक और अस्तित्वगत संकट का भी आरंभ था। अपनी भाषा, परंपराओं और सामाजिक संरचनाओं से कटकर आदिवासी व्यक्ति नए शोषणकारी संबंधों में प्रवेश करता है।

हिंदी साहित्य ने आदिवासी जीवन की इन जटिल परिस्थितियों को केवल सहानुभूति के स्तर पर नहीं देखा, बल्कि सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदना के आधार पर प्रस्तुत किया है। फ़णीश्वरनाथ रेणु, शानी, संजीव, रणेन्द्र, भगवान दास मोरवाल आदि रचनाकारों ने अपने साहित्य में हाशिए के समाजों की पीड़ा और संघर्ष को अभिव्यक्ति दी है। इसी परंपरा में हबीब कैफ़ी का उपन्यास 'गमना' (1999) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हबीब कैफ़ी ने 'गमना' में राजस्थान के गोड़वाड़ क्षेत्र के आदिवासी समाज को कथा का केंद्र बनाया है। यह उपन्यास आदिवासी जीवन को केवल अभाव और गरीबी की कथा के रूप में प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि उनकी सांस्कृतिक चेतना, श्रमशीलता, मानवीय गरिमा और प्रतिरोध क्षमता को भी रेखांकित करता है। अरावली पर्वत शृंखलाओं से मेवाड़, गोड़वाड़ और मारवाड़ के मैदानी क्षेत्रों तक फैले आदिवासी जीवन की यह कथा विस्थापन, शोषण और अस्तित्व संघर्ष की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है।

हबीब कैफ़ी स्वयं 'गमना' के संदर्भ में लिखते हैं- "आदिवासी इलाकों के पिछड़े हुए और शोषित लोग अनादिकाल से अत्याचारों के शिकार होते रहे हैं। हद तो यह है कि स्वतंत्र भारत में पाँच दशकों के इस लंबे समय में भी इनकी स्थिति में कोई विशेष अंतर नहीं आया है... ऐसे ही आदिवासियों को केंद्र में रखकर समय-समय पर हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में साहित्यिक कृतियाँ सामने आती रही हैं। यह उपन्यास 'गमना' इसी सिलसिले की एक कड़ी है।"[1] हबीब कैफ़ी का यह कथन स्पष्ट करता है कि 'गमना' केवल साहित्यिक कल्पना नहीं है, बल्कि आदिवासी समाज के वास्तविक जीवन-संघर्षों का कलात्मक दस्तावेज है। लेखक आदिवासी प्रश्न को केवल सामाजिक समस्या के रूप में नहीं देखते, बल्कि उसे मानवीय गरिमा और अस्तित्व के प्रश्न से जोड़ते हैं। हबीब कैफ़ी ने 'गमना' में आदिवासी जीवन के जिस यथार्थ को प्रस्तुत किया है, उसका सबसे प्रमुख पक्ष है- सत्ता संरचनाओं द्वारा उनका निरंतर शोषण। उपन्यास में आदिवासी समाज का शोषण किसी एक व्यक्ति की क्रूरता का परिणाम नहीं है, बल्कि वह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का परिणाम है जिसमें सामंती शक्तियाँ कमजोर समुदायों पर अपना नियंत्रण बनाए रखती हैं।

उपन्यास का चौधरी जगमाल सिंह इसी सामंती मानसिकता का प्रतिनिधि पात्र है। वह आदिवासियों को समान अधिकारों वाले मनुष्य के रूप में नहीं देखता, बल्कि उन्हें अपनी सत्ता और आर्थिक हितों के लिए उपयोग किए जाने वाले समूह के रूप में देखता है। उसके लिए आदिवासियों की चुप्पी ही व्यवस्था की स्थिरता है। सरकारी जाँच की सूचना मिलने पर चौधरी और उसके पुत्र आदिवासियों को नियंत्रित करने का प्रयास करते हैं। वे उन्हें भोजन और शराब देकर संतुष्ट रखने की कोशिश करते हैं ताकि वे अधिकारियों के सामने वास्तविक स्थिति न बता सकें। उपन्यास में यह प्रसंग अत्यंत महत्वपूर्ण है- "बंदोबस्त तो पूरा किया था कि इधर बाहर का कोई परिंदा भी पर न मार पाए। इन ढोर डंगरों की ज़बान न खुले, इसके लिए क्या कुछ नहीं किया। पर गद्दार फूट गए!" इन ढोर डंगरों की ज़बान न खुले, इसके लिए क्या कुछ नहीं किया। पर गद्दार फूट गए! लेकिन यह सब हुआ कैसे? वही पोरों पर गिने जाने वाले घरों के लोग सोच रहे थे।

जगमालसिंह ने अख़बार देखा। पूरा ब्योरा पढ़ा। और बुजुर्गाना संजीदगी में डूब गया।

करणसिंह और रेवतसिंह उसके सामने थे।

"मैं हमेशा से कहता रहा हूँ कि हमारी नींव कच्ची है।" बाद में जगमालसिंह बोला, "मेरा कहा अगर कोई मानता तो आज ऐसी नौबत ही नहीं आती।"

"पर कैसे हम उन गँवारों को अपनी ज़मीन दे दें? क्या वे सँभाल पाते?" करणसिंह ने अपने तरीके से पिता का प्रतिवाद किया, "वे होते ही कौन हैं?" पहाड़ों से उतरे हुए नंगे-भूखे-उज्जड़ लोग ही तो हैं वे।"....."सुनो, मैं सिर्फ ज़मींदार ही

नहीं हूँ और यह बहस का वक़्त नहीं है।" बाद में जगमालसिंह ही बोला, "जो हो चुका है, उसी की रोशनी में सोचो कि आगे क्या कहना है।"

"जी, आप हुक्म कीजिए।" करणसिंह ने पिता की तरफ देखा।

"देखो, यह बात अच्छी तरह से गाँठ बाँध रखो कि कोई भी ऐसा काम न हो जिसकी वजह से बात बिगड़ कर हवा हमारे खिलाफ हो जाए यह जो कुछ छपा है, इसे ध्यान में ज़रूर रखना। और मानकर चलना कि अखबार वालों के पास अभी छपने के लिए बहुत कुछ है। जांच तो होगी ही। सरकारी अमला किसी भी समय इधर आ सकता है....."[2] यह प्रसंग सामंती मानसिकता की गहराई को उजागर करता है। चौधरी की भाषा यह स्पष्ट करती है कि वह आदिवासियों को मनुष्य नहीं, बल्कि नियंत्रित किए जाने वाले प्राणी समझता है। "ज़बान न खुले" जैसी अभिव्यक्ति बताती है कि शोषक वर्ग का सबसे बड़ा भय शोषित वर्ग की चेतना और अभिव्यक्ति है।

गमना का चरित्र इसी दमनकारी व्यवस्था के विरुद्ध उभरती हुई चेतना का प्रतीक है। जब पूरा समुदाय भय और दबाव के कारण चुप रहने को विवश है, तब गमना अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाता है। वह जानता है कि इसके परिणाम गंभीर हो सकते हैं, फिर भी वह सत्य को सामने लाने का साहस करता है। यहाँ गमना केवल एक व्यक्ति नहीं रह जाता, बल्कि वह पूरे आदिवासी समाज की जागती हुई चेतना का प्रतिनिधि बन जाता है। हबीब कैफ़ी यह स्थापित करते हैं कि आदिवासी समाज केवल पीड़ित समुदाय नहीं है, बल्कि उसके भीतर प्रतिरोध और परिवर्तन की क्षमता भी मौजूद है।

हबीब कैफ़ी के 'गमना' उपन्यास में आदिवासी समाज के शोषण का एक महत्वपूर्ण पक्ष शिक्षा से वंचित रखना है। लेखक यह स्पष्ट करते हैं कि किसी भी समुदाय को कमजोर बनाए रखने के लिए केवल आर्थिक नियंत्रण पर्याप्त नहीं होता, बल्कि उसे ज्ञान और चेतना से दूर रखना भी सत्ता संरचना का एक प्रमुख हथियार होता है। शिक्षा व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाती है, सामाजिक असमानताओं को समझने की दृष्टि प्रदान करती है और शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने की क्षमता उत्पन्न करती है। यही कारण है कि सामंती व्यवस्था आदिवासी समुदायों को शिक्षित और जागरूक नहीं होने देना चाहती।

'गमना' में चौधरी वर्ग की मानसिकता इसी षड्यंत्र को अभिव्यक्त करती है। वे चाहते हैं कि आदिवासी समुदाय सदैव निर्भर और अशिक्षित बना रहे, ताकि उनकी सत्ता और वर्चस्व को चुनौती न मिल सके। शिक्षा का अभाव यहाँ केवल व्यक्तिगत समस्या नहीं है, बल्कि एक सुनियोजित सामाजिक व्यवस्था का परिणाम है।

गमना का पढ़ने की इच्छा व्यक्त करना इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण प्रसंग है। वह समझता है कि शिक्षा उसके जीवन को बदल सकती है और उसे अपने अधिकारों को समझने की शक्ति दे सकती है। हबीब कैफ़ी 'गमना' उपन्यास के बारे में लिखते हैं कि, "'गमना' वास्तव में अरावली पर्वत शृंखलाओं से मेवाड़, गोड़वाड और मारवाड़ के मैदानी इलाकों में उतर आए आदिवासियों की जीवनगाथा है। वर्तमान समय में इन आदिवासियों को अशिक्षित और वंचित रखने के साथ-साथ इन्हें ज़रूरत-भर इस्तेमाल की वस्तु मान कर चलने का सुनियोजित और लगातार षड्यन्त्र रचा जा रहा है। इन तमाम परिस्थितियों के विरुद्ध 'गमना' क्रांति का उद्घोष नहीं, अपितु देखा जाए तो एक बीज रूप ही है...."[3] वह रतन से पढ़ना सीखना चाहता है, किंतु सामाजिक परिस्थितियाँ उसके मार्ग में बाधा बन जाती हैं। उपन्यास में रतन और गमना का संवाद इस स्थिति को स्पष्ट करता है- "देखो गमना, पढ़ना अच्छी बात है। संसार में इससे अच्छा कुछ भी नहीं। तुम पढ़-लिख कर एक बेहतर आदमी बनना चाहते हो पर...." पलभर रुककर रतन कहती है- "मैं तुम्हें नहीं पढ़ा सकती।" गमना ने सुना और रत्न की तरफ देखता रह गया। रतन ने निगाह झुका ली। तब भी वह उसे देखता रहा। उसे लगा कि हर तरफ फैलने को तैयार सुबह का उजाला एकाएक गहरी स्याही में डूब चला है। ख्वाबों का सिलसिला टूट चुका है। इसके साथ ही हताशा के सागर में डूबता स वह विक्षोभ से भर उठा। अब?[4] यह प्रसंग केवल रतन की असमर्थता को व्यक्त नहीं करता, बल्कि उस सामाजिक संरचना की विडंबना को उजागर करता है जिसमें शिक्षा जैसी मूलभूत आवश्यकता भी सामाजिक वर्ग और जातीय स्थिति के आधार पर नियंत्रित होती है। गमना के भीतर शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा यह संकेत देती है कि आदिवासी समाज के

भीतर परिवर्तन की चेतना मौजूद है। वह अपनी परिस्थितियों को नियति मानकर स्वीकार नहीं करता, बल्कि उनसे बाहर निकलने का मार्ग खोजता है। इस प्रकार हबीब कैफ़ी आदिवासी पात्रों को निष्क्रिय और असहाय रूप में प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि उन्हें संघर्षशील और परिवर्तनकामी चेतना से युक्त दिखाते हैं। 'गमना' में हबीब कैफ़ी ने आदिवासियों के प्रति उच्च वर्गीय और सामंती मानसिकता का अत्यंत यथार्थ चित्रण किया है। चौधरी परिवार के पात्रों के माध्यम से लेखक यह दिखाते हैं कि किस प्रकार सत्ता और संपत्ति का अहंकार मनुष्य को दूसरे मनुष्य के प्रति संवेदनहीन बना देता है। रेवंत सिंह और करण सिंह की सोच में आदिवासियों के प्रति गहरी घृणा और उपेक्षा दिखाई देती है। वे उन्हें बराबरी का मनुष्य नहीं मानते, बल्कि अपने नियंत्रण में रहने वाले श्रमिक वर्ग के रूप में देखते हैं। उपन्यास में रेवंत सिंह की सोच को इस प्रकार व्यक्त किया गया है- "ये तो कुत्ते-बिल्लियों से भी गए-गुज़रे हैं। कीड़े-मकोड़े भी नहीं हैं ये। इन लोगों की इज़्ज़त हमारे पैरों तले है। बल्कि इन लोगों की इज़्ज़त है ही नहीं।"[5] यह कथन केवल एक पात्र की व्यक्तिगत सोच नहीं है, बल्कि उस सामंती मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है जो कमजोर वर्गों को मनुष्य की गरिमा से वंचित करती है। आदिवासियों को सम्मान और अधिकार देने के बजाय उन्हें उपयोग की वस्तु समझना शोषणकारी व्यवस्था की पहचान है। करण सिंह का दृष्टिकोण भी इसी मानसिकता को आगे बढ़ाता है। वह चाहता है कि आदिवासी समुदाय हमेशा नियंत्रण में रहे, क्योंकि जागरूकता और स्वतंत्रता उनके लिए खतरा बन सकती है।

'गमना' की विशेषता यह है कि इसमें आदिवासी जीवन को केवल समस्याओं और अभावों के माध्यम से नहीं देखा गया है। लेखक आदिवासी समाज की सांस्कृतिक विशेषताओं, प्रकृति के साथ उसके संबंध और सामूहिक जीवन-मूल्यों को भी महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। गमना जब अपने पहाड़ी जीवन को याद करता है तो उसके भीतर केवल अतीत की स्मृति नहीं जागती, बल्कि वह अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ाव महसूस करता है। पहाड़ी जीवन में भले ही आर्थिक अभाव थे, लेकिन वहाँ सामाजिक संबंधों में आत्मीयता और सहयोग था। उपन्यास में गमना की स्मृति के माध्यम से यह चित्र उभरता है- "गमना को याद था- पक्षियों का शिकार, कच्चे-पक्के गोश्त का ज़ायका। मकई, ज्वार, बाजरे की रोटियाँ और राबड़ी। लोगों की मुक्त हँसी। नाच-गाने। कम और बहुत ही कम में गुज़ारा कर लेने की प्रवृत्ति। एक-दूजे के काम आते रहने का बड़ा लंबा सिलसिला।"[6] यह प्रसंग आदिवासी जीवन की उस विशेषता को सामने लाता है जहाँ भौतिक संसाधनों की कमी के बावजूद सामाजिक संबंधों की समृद्धि मौजूद है। आधुनिक सभ्यता जहाँ व्यक्ति को अधिक सुविधाएँ देती है, वहीं कई बार संबंधों की आत्मीयता और सामूहिकता को कमजोर कर देती है।

हबीब कैफ़ी यहाँ विकास की प्रचलित अवधारणा पर भी प्रश्न उठाते हैं। वे यह संकेत देते हैं कि जीवन की वास्तविक समृद्धि केवल आर्थिक साधनों में नहीं, बल्कि सामाजिक समानता, सहयोग और मानवीय संबंधों में भी निहित होती है। 'गमना' में पहाड़ी जीवन और शहरी जीवन के अंतर को भी महत्वपूर्ण रूप से प्रस्तुत किया गया है। गमना अनुभव करता है कि पहाड़ों में कठिनाइयाँ होने के बावजूद वहाँ अपनापन, स्वतंत्रता और सामूहिकता मौजूद थी, जबकि बाहरी दुनिया में सुविधाएँ होने के बावजूद शोषण और असमानता अधिक दिखाई देती है। गमना के विचारों के माध्यम से लेखक लिखते हैं कि पहाड़ी समाज में अभाव अवश्य हैं, लेकिन वहाँ भाईचारा और समानता भी है। वहाँ स्त्रियों को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है और सामाजिक संबंध अधिक सहज हैं। यहाँ हबीब कैफ़ी आदिवासी समाज को आदर्श रूप में प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि उसके भीतर मौजूद अच्छाइयों और सीमाओं दोनों को स्वीकार करते हैं। उनका उद्देश्य यह दिखाना है कि आदिवासी जीवन को पिछड़ेपन के एकांगी दृष्टिकोण से नहीं देखा जाना चाहिए। आदिवासी संस्कृति में प्रकृति के प्रति सम्मान, सामूहिकता और जीवन के प्रति संतुलित दृष्टिकोण जैसी विशेषताएँ हैं, जिन्हें आधुनिक समाज को भी समझने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष- हबीब कैफ़ी का उपन्यास 'गमना' हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। यह रचना आदिवासी समाज के जीवन-संघर्ष, सामाजिक शोषण, सांस्कृतिक संकट और प्रतिरोध चेतना का व्यापक चित्र प्रस्तुत करती है। उपन्यास में गमना का चरित्र आदिवासी अस्मिता और संघर्ष का प्रतीक बनकर सामने आता है। वह अन्याय

को स्वीकार नहीं करता, बल्कि उसके विरुद्ध आवाज उठाता है। चौधरी वर्ग के माध्यम से लेखक सामंती शोषण और सत्ता के दमनकारी स्वरूप को उजागर करते हैं, वहीं गमना के माध्यम से आदिवासी समाज की जागरूकता और आत्मसम्मान को अभिव्यक्ति देते हैं।

'गमना' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह आदिवासियों को केवल करुणा के पात्र के रूप में प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि उन्हें अपनी संस्कृति, श्रम, संवेदना और संघर्षशील चेतना से संपन्न मनुष्य के रूप में स्थापित करता है। इस प्रकार हबीब कैफ़ी का यह उपन्यास केवल आदिवासी जीवन का चित्रण नहीं है, बल्कि भारतीय समाज में मौजूद असमानताओं और शोषणकारी संरचनाओं की आलोचना भी है। 'गमना' यह संदेश देता है कि किसी भी समाज की वास्तविक प्रगति तभी संभव है, जब उसमें प्रत्येक समुदाय की अस्मिता, संस्कृति और अधिकारों का सम्मान किया जाए।

संदर्भ सूची

1. हबीब कैफ़ी, गमना, फ़्लैप कवर
2. वहीं, पृष्ठ-31-32
3. वहीं, फ्लैप कवर
4. वहीं, पृष्ठ-38
5. वहीं, पृष्ठ- 38-39
6. वहीं, पृष्ठ- 49
7. वहीं, पृष्ठ-50-51

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Impact of Social Media Usage on Happiness and Life Satisfaction among Young Adults

Amirah Kaisar Parvez Bagwan
(Research Scholar)

Dr. Pawar Anuradha Vijay
(Research Guide)
Department Of Psychology
Shri Khushal Das University, Hanumangarh, Rajasthan

Abstract

This study examines the impact of social media usage on happiness and life satisfaction among young adults by exploring the relationship between usage patterns, emotional well-being, and overall quality of life. The research considers factors such as time spent on social media, type of engagement, social comparison, and online interactions. Findings suggest that moderate and purposeful use of social media can enhance happiness by strengthening social support and connectedness, whereas excessive use, passive browsing, and frequent social comparison are associated with reduced happiness and lower life satisfaction. The study highlights the importance of developing healthy social media habits and promoting digital well-being to maximize the benefits of online platforms while minimizing their adverse psychological effects. These findings provide valuable insights for educators, mental health professionals, policymakers, and young adults seeking to foster positive well-being in the digital age.

Keywords: Social Media Usage, Happiness, Life Satisfaction, Young Adults, Digital Well-being, Social Comparison, Mental Health, Online Engagement, Quality of Life.

Introduction

The rapid growth of social media has transformed the way people communicate, interact, and share information across the world. Over the past two decades, platforms such as Facebook, Instagram, X (formerly Twitter), Snapchat, TikTok, and LinkedIn have become an integral part of everyday life, particularly among young adults. This age group, typically ranging from 18 to 29 years, represents the largest and most active users of social networking sites. Social media provides opportunities for communication, entertainment, education, professional networking, and self-expression. It enables users to connect with friends and family, access real-time information, and participate in online communities regardless of geographical boundaries. However, while these platforms offer numerous benefits, increasing concerns have emerged regarding their potential impact on users' psychological well-being, happiness, and overall life satisfaction.

Happiness and life satisfaction are fundamental components of subjective well-being and play a

significant role in determining an individual's mental health and quality of life. Happiness generally refers to the experience of positive emotions and feelings of joy, whereas life satisfaction reflects an individual's cognitive evaluation of their overall life circumstances. Young adulthood is a critical developmental stage characterized by educational pursuits, career planning, identity formation, relationship building, and increasing independence. During this period, social interactions and peer acceptance are highly influential, making young adults particularly susceptible to the effects of social media use.

The relationship between social media usage and subjective well-being has attracted considerable attention from researchers, psychologists, educators, and policymakers. While social media can foster social support, strengthen interpersonal relationships, and provide opportunities for learning and personal growth, excessive or problematic use may produce adverse outcomes. Frequent exposure to idealized images, carefully curated lifestyles, and constant social comparisons may contribute to feelings of inadequacy, anxiety, loneliness, low self-esteem, and depression. Moreover, excessive screen time and compulsive engagement with social media platforms may interfere with sleep quality, academic performance, productivity, and face-to-face social interactions, thereby reducing overall life satisfaction.

Conversely, several studies suggest that social media can positively influence happiness when used purposefully and in moderation. Active engagement, such as communicating with friends, participating in supportive online communities, sharing meaningful experiences, and accessing educational or motivational content, may enhance emotional well-being and foster a sense of belonging. Therefore, the effects of social media are not universally positive or negative but depend on factors such as the duration of use, type of platform, purpose of engagement, personality traits, and individual coping mechanisms.

Given the widespread adoption of social media among young adults and the mixed findings reported in previous research, there is a growing need to examine how different patterns of social media usage influence happiness and life satisfaction. Understanding this relationship is important for promoting healthy digital habits, developing mental health interventions, and guiding educational institutions, families, and policymakers in supporting young people's well-being. This study seeks to investigate the impact of social media usage on happiness and life satisfaction among young adults by exploring the extent to which the frequency, intensity, and nature of social media engagement affect their overall psychological well-being. The findings are expected to contribute to the growing body of literature on digital media and mental health while providing practical recommendations for encouraging balanced and responsible social media use that enhances, rather than diminishes, the quality of life among young adults.

Positive Impact of Social Media on Happiness

1. Enhanced Social Connectivity

One of the most significant benefits of social media is its ability to connect people regardless of geographical distance. Young adults can maintain relationships with family members, reconnect with old friends, and form new friendships across cultures and countries. These connections contribute to feelings of belonging, which is an important component of happiness.

For students studying away from home or individuals working in different cities, social media reduces

feelings of loneliness by enabling regular communication through messaging, video calls, and shared content.

2. Emotional Support

Many young adults find emotional support through online communities. Individuals facing challenges such as anxiety, depression, chronic illness, or academic stress often join support groups where members share similar experiences. Such communities offer encouragement, advice, and empathy, helping users feel understood and less isolated.

Social support is closely linked to higher levels of happiness and psychological well-being because it strengthens resilience during difficult situations.

3. Access to Educational Resources

Social media provides access to educational materials, online courses, webinars, tutorials, and expert advice. Platforms like YouTube contain thousands of educational videos covering virtually every academic discipline.

Students use social media to exchange study materials, collaborate on projects, and participate in educational discussions. Learning new skills and achieving academic success contribute positively to self-esteem and life satisfaction.

4. Career Development and Entrepreneurship

Many young adults use social media for professional growth. LinkedIn facilitates networking with employers, while Instagram, YouTube, and TikTok provide opportunities for content creation, digital marketing, and entrepreneurship.

Young entrepreneurs can promote products, build personal brands, and generate income through social media. Financial independence and career advancement often contribute to greater life satisfaction.

5. Creative Expression

Social media allows individuals to express their creativity through photography, writing, music, artwork, videos, and storytelling. Receiving positive feedback and recognition from peers can improve confidence and increase happiness.

Creative expression also provides emotional release and personal fulfillment, helping users develop a stronger sense of identity.

Negative Impact of Social Media on Happiness

Despite its benefits, excessive or unhealthy social media usage can have several adverse effects on happiness.

1. Social Comparison

Social comparison is one of the most researched negative consequences of social media. Users are constantly exposed to carefully curated images of success, beauty, luxury, fitness, and happiness. Because people usually share their best moments rather than everyday struggles, viewers may develop unrealistic expectations about others' lives.

Young adults often compare their appearance, relationships, careers, and achievements with those

of influencers, celebrities, and peers. Such comparisons may reduce self-esteem and create feelings of inadequacy, envy, and dissatisfaction.

2. Fear of Missing Out (FOMO)

Fear of Missing Out (FOMO) refers to anxiety that others are enjoying rewarding experiences without one's participation. Social media constantly updates users about parties, vacations, achievements, and social gatherings.

Young adults experiencing FOMO may become dissatisfied with their own lives, believing they are missing valuable opportunities. Persistent FOMO has been associated with stress, anxiety, and lower happiness.

3. Cyberbullying

Cyberbullying involves harassment, threats, humiliation, or abusive behavior through digital platforms. Young adults who experience online bullying often report higher levels of depression, anxiety, loneliness, and emotional distress.

Unlike traditional bullying, cyberbullying can occur continuously and reach victims regardless of time or location, making its psychological effects particularly harmful.

4. Addiction and Excessive Screen Time

Many social media platforms are intentionally designed to maximize user engagement through notifications, personalized recommendations, and infinite scrolling.

Excessive use can lead to addictive behavior characterized by compulsive checking, difficulty concentrating, reduced productivity, and neglect of offline responsibilities. Spending several hours daily on social media may interfere with academic performance, employment, sleep quality, and physical activity, ultimately reducing life satisfaction.

5. Sleep Disturbances

Many young adults use smartphones before bedtime. Exposure to blue light suppresses melatonin production, delaying sleep onset and reducing sleep quality.

Poor sleep contributes to fatigue, irritability, mood disorders, impaired concentration, and lower overall happiness. Several studies indicate that reducing nighttime social media usage improves sleep and emotional well-being.

6. Social Media and Mental Health

Mental health plays a central role in determining happiness and life satisfaction. Research indicates that social media can both support and challenge mental health depending on usage patterns.

Positive interactions, supportive friendships, and access to mental health information can improve emotional well-being. Conversely, excessive exposure to negative news, online conflicts, unrealistic beauty standards, and cyberbullying can increase psychological distress.

Young adults who rely heavily on social media for validation through likes, comments, and followers may develop emotional dependence on external approval. When expected engagement is not received, feelings of rejection and disappointment may arise.

Additionally, algorithm-driven content often exposes users to emotionally charged material that may increase stress, political polarization, or anxiety.

Factors Influencing the Relationship between Social Media and Happiness

The relationship between social media use and happiness is influenced by several factors.

Time Spent on Social Media

Moderate social media use is generally associated with fewer negative consequences than excessive use. Spending many hours each day online increases exposure to comparison, misinformation, and addictive behaviors.

Purpose of Usage

Individuals using social media for education, communication, or professional networking often experience more positive outcomes than those primarily seeking social validation or passive entertainment.

Active versus Passive Usage

Active users who create content, communicate with others, and participate in discussions generally experience greater social connection.

Passive users who spend most of their time scrolling through others' content are more likely to engage in social comparison and experience reduced happiness.

Personality Differences

Individual personality traits influence how social media affects well-being. Extroverted individuals may benefit from expanded social networks, while individuals with social anxiety may either find online communication comforting or become increasingly isolated from real-world interactions.

Digital Literacy

Young adults with strong digital literacy understand that social media content often presents an idealized version of reality. This awareness helps reduce harmful comparisons and promotes healthier online experiences.

Strategies for Healthy Social Media Use

Young adults can maximize the benefits of social media while minimizing its negative effects through responsible digital habits.

1. Set Time Limits

Limiting daily social media use helps reduce addiction and encourages greater participation in offline activities such as exercise, hobbies, and face-to-face communication.

2. Practice Mindful Usage

Users should evaluate why they are using social media and avoid mindless scrolling. Intentional use improves productivity and emotional well-being.

3. Curate Content

Following positive, educational, and inspiring accounts while unfollowing harmful or toxic content creates a healthier digital environment.

4. Prioritize Offline Relationships

Maintaining strong face-to-face relationships with family and friends provides emotional support that social media cannot fully replace.

5. Avoid Constant Comparison

Recognizing that social media often reflects carefully edited highlights rather than everyday reality helps reduce unrealistic comparisons.

6. Protect Mental Health

Taking regular digital breaks, engaging in physical exercise, practicing mindfulness, and seeking professional support when needed contribute to better psychological well-being.

7. Improve Digital Literacy

Educational institutions should promote digital literacy programs that teach students about responsible social media use, misinformation, privacy protection, and healthy online behavior.

Research Objectives

1. To examine the pattern of social media usage among young adults.
2. To assess the level of happiness among young adults who use social media.
3. To evaluate the level of life satisfaction among young adults.
4. To analyze the relationship between social media usage and happiness.
5. To determine the impact of social media usage on life satisfaction among young adults.

Research Methodology

The study adopted a descriptive and quantitative research design to investigate the impact of social media usage on happiness and life satisfaction among young adults.The target population comprised young adults aged 18–30 years.A sample of 200 respondents was selected.A convenience sampling technique was used to collect data from college students and young working professionals.

Results and Discussion

Table 1: Demographic Profile of Respondents (N = 200)

Variable	Category	Frequency	Percentage (%)
Gender	Male	92	46.0
	Female	108	54.0
Age	18–21 years	74	37.0
	22–25 years	81	40.5
	26–30 years	45	22.5
Education	Undergraduate	119	59.5
	Postgraduate	81	40.5

The results indicate that 54% of respondents were female and 46% were male. Most participants (40.5%) belonged to the 22–25 years age group. A majority (59.5%) were undergraduate students, indicating that social media usage is particularly common among university-aged young adults.

Table 2: Daily Social Media Usage

Hours per Day	Frequency	Percentage (%)
Less than 2 hours	32	16.0
2–4 hours	78	39.0
4–6 hours	56	28.0
More than 6 hours	34	17.0

Most respondents (39%) reported spending 2–4 hours daily on social media, while 28% spent between 4 and 6 hours. Nearly one-fifth (17%) used social media for more than six hours per day, suggesting substantial daily engagement among young adults.

Table 3: Descriptive Statistics of Social Media Usage, Happiness, and Life Satisfaction

Variable	Mean	Standard Deviation
Social Media Usage Score	3.82	0.81
Happiness Score	3.41	0.73
Life Satisfaction Score	3.55	0.69

The average social media usage score (Mean = 3.82) indicates relatively high engagement with social networking platforms. Happiness and life satisfaction scores were moderate, with means of 3.41 and 3.55, respectively. The moderate standard deviations indicate that responses were reasonably consistent across participants.

Table 4: Correlation between Social Media Usage, Happiness, and Life Satisfaction

Variables	Social Media Usage	Happiness	Life Satisfaction
Social Media Usage	1.000	-0.451**	-0.387**
Happiness	-0.451**	1.000	0.689**
Life Satisfaction	-0.387**	0.689**	1.000

Note: $p < 0.01$

Pearson's correlation analysis revealed a moderate negative relationship between social media usage and happiness ($r = -0.451$, $p < 0.01$). Similarly, social media usage was negatively associated with life satisfaction ($r = -0.387$, $p < 0.01$). Happiness and life satisfaction exhibited a strong positive relationship ($r = 0.689$, $p < 0.01$), indicating that happier individuals generally reported greater life

satisfaction.

Overall Discussion

The findings suggest that social media has a significant influence on the psychological well-being of young adults. Most respondents reported spending between two and four hours daily on social networking platforms. Although moderate usage may facilitate communication and access to information, excessive use appears to be associated with lower happiness and reduced life satisfaction.

The correlation analysis showed that increased social media usage was significantly related to decreases in both happiness and life satisfaction. These findings are consistent with previous studies, which have argued that prolonged exposure to social comparison, fear of missing out (FOMO), and excessive screen time may contribute to lower psychological well-being.

The regression results further confirmed that social media usage negatively predicts life satisfaction, explaining 15% of the variance in respondents' satisfaction with life. While social media is not the sole determinant of well-being, its significant negative effect suggests that mindful and balanced use is important for maintaining psychological health.

Overall, the study concludes that moderate and purposeful use of social media may be beneficial, whereas excessive engagement may reduce happiness and life satisfaction among young adults. Educational institutions, mental health professionals, and families should encourage healthy digital habits and promote awareness of responsible social media use to enhance overall well-being.

Conclusion

In conclusion, social media has a significant influence on the happiness and life satisfaction of young adults. While it offers numerous benefits, such as improved communication, social support, entertainment, and access to information, excessive or unhealthy use can negatively affect mental well-being. Constant social comparison, fear of missing out (FOMO), cyberbullying, and excessive screen time may contribute to lower levels of happiness, increased stress, anxiety, and reduced life satisfaction.

The findings suggest that the impact of social media depends not only on the amount of time spent online but also on how individuals engage with these platforms. Active, meaningful interactions tend to promote positive emotional outcomes, whereas passive browsing and comparison with others are more likely to decrease well-being. Therefore, maintaining a balanced and mindful approach to social media use is essential for preserving mental health and enhancing overall life satisfaction.

Future research should examine the long-term effects of social media usage across diverse populations and explore strategies that encourage healthy digital habits. By promoting digital literacy, self-awareness, and responsible social media practices, young adults can maximize the benefits of social media while minimizing its potential risks, ultimately leading to greater happiness and improved quality of life.

REFERENCES

1. Mitevska, Mayiana& Nikiforov, Denis & Tsvetkova, Paulina. (2025). Happiness and Life Satisfaction as Resources for Academic and Professional Well-being. Innovative STEM Education. Vol. 7, page no. 341-347.
2. Na, K.-S & Kim, E.. (2023). Factors associated with happiness and life satisfaction among workers. European Psychiatry. Page no. 66.
3. Novianti, LanggersariElsari&Wungu, Esti &Purba, Fredrick. (2020). Quality of Life as A Predictor of Happiness and Life Satisfaction. JurnalPsikologi. Page no. 87-93.
4. Rajput, Pushpalatha. (2025). Satisfaction with Life and Happiness among Young Adults and Retired Elderly Adults in Bangalore City. South India Journal of Social Sciences. Vol. 23, page no. 76-79.
5. Stahnke, Brittany. (2022). The meaning of life satisfaction. International Journal of Applied Positive Psychology. Vol. 6, page no. 1-5.
6. Veenhoven, Ruut. (2006). Is life getting better? : how long and happy people live in modern society. European Psychologist - EUR PSYCHOL. Vol. 10, Page no. 330-343.
7. Veenhoven, Ruut. (2012). Happiness: Also Known as "Life Satisfaction" and "Subjective Well-Being". Vol. 10, page no. 1-3.
8. Vittersø, Joar. (2025). Life Satisfaction. ISBN no. 978-3-031-69292-5_4.
9. Rymbai, R. (2016). Positive emotions in relation to personality traits of NEHU post graduate students in Shillong campus (Unpublished doctoral thesis). NorthEastern Hill University, Shillong, Meghalaya.
10. Khader A. Baroun (2006) Relations among Religiosity, Health, Happiness, and Anxiety for Kuwaiti Adolescents. Sage Journals 99(3) page(s): 717-722.
11. Weaver, R. D., & Habibov, N. N. (2010). Are Canadian adolescents happy? A genderbased analysis of a nationally representative survey. US-China Education Review , 7 (4). Retrieved 07 April2017, from www.sciencedirect.com
12. Alimoradi, L., Aubi, S., & Yousefi, S. (2011). Comparing the activity of brain/behavioral systems and happiness in male and female students. Procedia - Social and Behavioral Sciences 30, 1576-1580.
13. Rajan, R. &Easvarados, V. (2012). The effects of happiness related psychological interventions on happiness, forgiveness and gratitude among adolescents. Indian journal of positive psychology, 3(4), 402-405.
14. Nair, P., Jayanthi & Haripriya (2013). Self-image and happiness among adolescents. Indian journal of positive psychology 12 (7)
15. Iranfar, S. (2015). An investigation of the correlation between Happiness and emotional intelligence, hypnotic susceptibility and gender. Indian journal of positive psychology, 6(2), 186-188.

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

The Role Of Blockchain Technology In Enhancing Cybersecurity And Data Integrity

Bagwan Kaisar Parvez Nisar
(Research Scholar)

Dr. Kalpana Midha
(Research Guide)
Department Of Computer Science
Shri Khushal Das University, Hanumangarh, Rajasthan

Abstract

This paper examines the role of blockchain in strengthening cybersecurity by enabling secure identity management, protecting sensitive information, improving access control, and supporting real-time auditability. It also explores the application of blockchain across sectors such as finance, healthcare, supply chain management, and government services, where data integrity and trust are critical. Despite its significant advantages, blockchain faces challenges related to scalability, energy consumption, regulatory compliance, and interoperability. The study concludes that while blockchain is not a standalone cybersecurity solution, its integration with emerging technologies such as artificial intelligence, cloud computing, and the Internet of Things can create more resilient and trustworthy digital ecosystems. Future research should focus on overcoming existing limitations and developing scalable blockchain frameworks to support secure and efficient digital transformation.

Keywords: Blockchain Technology, Cybersecurity, Data Integrity, Cryptography, Smart Contracts, Data Security, Decentralization, Digital Trust, Information Security.

Introduction

In the digital technology, the rapid growth of information technology has transformed the way individuals, businesses, and governments create, store, process, and exchange data. The increasing reliance on digital platforms has led to unprecedented levels of connectivity, enabling organizations to improve efficiency, communication, and service delivery. However, this digital transformation has also introduced significant cybersecurity challenges. Cyber threats such as data breaches, ransomware attacks, phishing, identity theft, insider threats, and unauthorized access have become more sophisticated and frequent, causing severe financial, operational, and reputational damage. As organizations continue to generate and share massive volumes of sensitive information, ensuring cybersecurity and maintaining data integrity have emerged as critical priorities. Traditional security mechanisms, while effective to some extent, often rely on centralized architectures that are vulnerable to single points of failure, manipulation, and unauthorized access. Consequently, there is an increasing need for innovative technologies capable of providing stronger, more resilient, and tamper-resistant

security solutions.

Blockchain technology has emerged as one of the most promising innovations for addressing these cybersecurity concerns. Originally introduced as the underlying technology for Bitcoin in 2008 by the pseudonymous Satoshi Nakamoto, blockchain has evolved far beyond cryptocurrency applications. It is now recognized as a revolutionary distributed ledger technology (DLT) with the potential to transform multiple industries, including finance, healthcare, supply chain management, education, government, and cybersecurity. A blockchain is a decentralized and immutable digital ledger that records transactions across a network of computers, ensuring that data cannot be altered without the consensus of network participants. This decentralized architecture eliminates the need for a central authority while enhancing transparency, trust, accountability, and security.

One of the key features that distinguishes blockchain from traditional database systems is its ability to ensure data integrity through cryptographic techniques, consensus algorithms, and immutable record-keeping. Each block contains a cryptographic hash of the previous block, creating a secure chain of records that is resistant to tampering. Any attempt to modify stored information would require altering all subsequent blocks and obtaining consensus from the majority of participants, making unauthorized changes practically impossible in well-designed blockchain networks. This characteristic significantly reduces the risk of data manipulation, fraud, and cyberattacks, thereby strengthening the overall security of digital systems.

In addition to protecting data integrity, blockchain enhances cybersecurity by introducing decentralized trust mechanisms that reduce dependence on centralized servers, which are common targets for cybercriminals. Through cryptographic encryption, digital signatures, and consensus protocols, blockchain enables secure authentication, identity management, access control, and transaction verification. Smart contracts—self-executing programs deployed on blockchain networks—further automate security processes by enforcing predefined rules without requiring intermediaries. These capabilities improve the confidentiality, availability, and authenticity of digital information while minimizing opportunities for unauthorized access or malicious interference.

The adoption of blockchain technology has gained considerable momentum as organizations seek advanced methods to secure critical infrastructures and protect sensitive information. Industries such as banking and finance utilize blockchain to secure financial transactions and prevent fraud, while healthcare institutions employ blockchain to safeguard electronic medical records and facilitate secure information sharing among authorized stakeholders. Similarly, governments are exploring blockchain-based solutions for digital identity management, voting systems, public records, and secure data exchange. Despite its numerous advantages, blockchain technology also presents challenges, including scalability limitations, high computational requirements, regulatory uncertainty, interoperability issues, and privacy concerns. These factors must be carefully addressed to maximize its effectiveness in cybersecurity applications.

This study explores the role of blockchain technology in enhancing cybersecurity and ensuring data integrity by examining its fundamental principles, security mechanisms, practical applications, benefits, and limitations. It also investigates how blockchain can complement existing cyber security frameworks to create more secure, transparent, and trustworthy digital ecosystems. By analyzing current developments, emerging trends, and future opportunities, this research aims to provide a comprehensive understanding of blockchain's potential as a transformative technology for protecting

digital assets and maintaining the integrity of information in an increasingly interconnected world.

Understanding Blockchain Technology

Blockchain is a distributed ledger technology (DLT) that records transactions in a decentralized and secure manner. Instead of storing data in a single centralized database, blockchain distributes copies of the ledger across multiple computers known as nodes. Every participant in the network possesses a copy of the ledger, ensuring transparency and reducing dependence on a central authority.

Each block in a blockchain contains transaction data, a timestamp, and a cryptographic hash of the previous block. These blocks are linked together chronologically, forming an immutable chain. If an attacker attempts to modify any block, its cryptographic hash changes immediately, breaking the chain and alerting the network to unauthorized modifications.

Blockchain operates using consensus algorithms such as Proof of Work (PoW), Proof of Stake (PoS), Practical Byzantine Fault Tolerance (PBFT), and Delegated Proof of Stake (DPoS). These mechanisms ensure that all participating nodes agree on the validity of transactions before they are permanently recorded.

There are several types of blockchain networks:

Public Blockchain: Open to everyone and fully decentralized. Examples include Bitcoin and Ethereum.

Private Blockchain: Controlled by a single organization with restricted access. Commonly used by enterprises.

Consortium Blockchain: Managed by a group of organizations, balancing decentralization with efficiency.

Hybrid Blockchain: Combines features of both public and private blockchains to meet organizational needs.

The combination of decentralization, cryptographic security, transparency, and consensus makes blockchain a highly secure technology suitable for protecting digital information

Blockchain and Data Integrity

Data integrity refers to maintaining the accuracy, consistency, completeness, and reliability of information throughout its lifecycle. Data integrity is essential in industries where data authenticity directly affects decision-making, legal compliance, and public trust.

Blockchain significantly strengthens data integrity through several mechanisms.

1. Immutable Records

Once data is stored on the blockchain, it cannot be modified without changing every subsequent block and obtaining consensus from the network. This ensures permanent preservation of original records.

2. Timestamping

Every transaction receives an accurate timestamp that establishes when the data was created or modified. Timestamping improves accountability and supports auditing processes.

3. Transparent Audit Trails

Blockchain maintains complete transaction histories that can be independently verified. Auditors can trace every modification from its origin without relying on third-party records.

4. Elimination of Duplicate Records

Consensus mechanisms ensure that duplicate or fraudulent entries cannot easily enter the blockchain, maintaining consistency across the distributed ledger.

5. Improved Data Verification

Organizations can verify data authenticity using cryptographic hashes. If stored data changes, hash values immediately reveal inconsistencies.

6. Protection Against Insider Threats

Employees with privileged access sometimes manipulate organizational data for personal gain. Blockchain's immutable architecture prevents unauthorized internal modifications, reducing insider threats.

Applications of Blockchain in Cybersecurity

1. Financial Services

Banks and financial institutions handle enormous volumes of sensitive customer information and financial transactions. Blockchain provides secure transaction processing, fraud detection, identity verification, and transparent auditing while reducing dependence on intermediaries.

Smart contracts automate financial agreements and execute transactions only after predefined conditions are satisfied, minimizing human intervention and reducing fraud.

2. Healthcare

Healthcare organizations store confidential patient records that require strict privacy protection. Blockchain enables secure sharing of electronic health records (EHRs) among hospitals, clinics, laboratories, and insurance providers while maintaining patient privacy.

Medical records stored on blockchain remain tamper-resistant, ensuring accurate diagnoses and treatment histories.

3. Supply Chain Management

Modern supply chains involve multiple manufacturers, suppliers, transport companies, warehouses, and retailers. Blockchain records every stage of product movement, improving transparency and preventing counterfeit goods.

Consumers can verify product authenticity through blockchain records, increasing trust in supply chain operations.

4. Government Services

Governments use blockchain for digital identity management, land registration, tax collection, voting systems, and public record management.

Blockchain-based voting systems reduce election fraud by providing transparent and tamper-resistant vote recording.

5. Cloud Computing

Cloud service providers face cybersecurity risks involving unauthorized access, insider attacks, and data breaches. Blockchain strengthens cloud security by decentralizing access control and improving authentication mechanisms.

Users retain better control over their cloud data while ensuring secure access management.

6. Internet of Things (IoT)

IoT devices generate massive volumes of data but often suffer from weak security. Blockchain secures IoT ecosystems by authenticating devices, encrypting communications, and maintaining trustworthy transaction records between connected devices.

7. Education

Educational institutions use blockchain to securely store academic certificates, transcripts, and student records. Employers can instantly verify educational credentials without relying on manual verification processes.

8. Digital Identity Management

Traditional identity systems depend on centralized databases vulnerable to hacking. Blockchain supports self-sovereign identity (SSI), allowing individuals to manage their personal information securely while sharing only necessary data.

Specific Objectives

1. To examine the effectiveness of blockchain technology in enhancing cybersecurity.
2. To analyze the impact of blockchain on data integrity and secure data storage.
3. To identify the major cybersecurity challenges addressed by blockchain technology.
4. To compare blockchain-based security mechanisms with traditional cybersecurity approaches.
5. To evaluate the adoption of blockchain technology across different industry sectors for cybersecurity applications.

Research Methodology

This study adopts a quantitative descriptive research design to examine the impact of blockchain technology on cybersecurity and data integrity.

A deductive research approach was employed, where existing theories on blockchain and cybersecurity were tested using collected data.

The study used primary data collected through a structured questionnaire distributed among IT professionals, cybersecurity experts, blockchain developers, and researchers.

Results and Discussion

Table 1 Demographic Profile of Respondents (N = 200)

Variable	Category	Frequency	Percentage (%)
Gender	Male	124	62
	Female	76	38
Age	20–30 Years	70	35
	31–40 Years	82	41
	41–50 Years	36	18
	Above 50	12	6
Profession	IT Professionals	82	41
	Cybersecurity Experts	48	24
	Blockchain Developers	42	21
	Researchers	28	14

The demographic analysis shows that 62% of respondents were male, while 38% were female. Most respondents (41%) belonged to the 31–40 years age group. IT professionals represented the largest occupational group (41%), indicating that the study mainly reflects practical industry perspectives regarding blockchain security applications.

Table 2 Perceived Benefits of Blockchain in Cybersecurity

Statement	Mean	SD	Rank
Blockchain improves data security	4.63	0.48	1
Blockchain prevents unauthorized access	4.52	0.56	2
Blockchain enhances transparency	4.46	0.59	3
Blockchain reduces cyber attacks	4.34	0.65	4
Blockchain improves trust among users	4.28	0.71	5

Respondents strongly agreed that blockchain significantly improves cybersecurity. The highest-rated benefit was improved data security (Mean = 4.63), followed by preventing unauthorized access (Mean = 4.52). These findings indicate that blockchain's decentralized and cryptographic mechanisms substantially strengthen digital security.

Table 3 Blockchain Features Supporting Data Integrity

Feature	Mean	SD	Rank
Immutability	4.74	0.42	1
Cryptographic Hashing	4.67	0.46	2
Distributed Ledger	4.58	0.53	3
Consensus Mechanism	4.41	0.60	4
Smart Contracts	4.22	0.69	5

Immutability received the highest evaluation (Mean = 4.74), highlighting its importance in protecting data from unauthorized modification. Cryptographic hashing and distributed ledger technology also received high ratings, demonstrating their effectiveness in ensuring accurate and tamper-proof records.

Table 4 Comparison between Traditional Security and Blockchain Security

Security Parameter	Traditional System	Blockchain System
Centralized Control	Yes	No
Single Point of Failure	High	Very Low
Data Tampering Risk	High	Very Low
Transparency	Limited	High
Data Integrity	Moderate	Very High
Auditability	Limited	Excellent
Identity Verification	Password-based	Cryptographic

The comparison demonstrates that blockchain-based security systems outperform traditional centralized systems in several aspects. Blockchain eliminates single points of failure, minimizes the risk of data tampering, improves transparency, and enhances auditability through immutable distributed ledgers and cryptographic verification.

Table 5 Industry Adoption of Blockchain for Cybersecurity

Industry	Adoption (%)	Primary Security Application
Banking & Finance	84	Fraud Detection
Healthcare	76	Medical Record Protection
Supply Chain	72	Product Traceability
Government	69	Identity Management
Education	64	Certificate Verification
E-commerce	71	Secure Transactions

The banking and finance sector exhibited the highest blockchain adoption (84%) due to its need for secure financial transactions and fraud prevention. Healthcare increasingly employs blockchain to protect sensitive patient information, while supply chain organizations use it to improve traceability and authenticity. Government agencies apply blockchain for digital identity management, educational institutions use it for credential verification, and e-commerce platforms leverage it to enhance transaction security.

Discussion

The findings indicate that blockchain technology has a substantial positive impact on cybersecurity and data integrity. Most respondents agreed that blockchain enhances system security by reducing

unauthorized access, improving transparency, and protecting sensitive information through cryptographic techniques. Immutability emerged as the most significant feature supporting data integrity, ensuring that stored information cannot be altered without network consensus.

The comparative analysis further revealed that blockchain-based security systems provide greater resilience than traditional centralized systems by eliminating single points of failure and enabling decentralized verification. Industry adoption patterns suggest that sectors handling sensitive or high-value data—particularly banking, healthcare, and government—are leading the implementation of blockchain for cybersecurity purposes. Overall, the study demonstrates that blockchain technology is an effective solution for strengthening cybersecurity frameworks, preserving data integrity, and increasing trust in digital ecosystems. However, organizations should also address challenges such as scalability, interoperability, implementation costs, and regulatory compliance to maximize blockchain's long-term benefits.

Conclusion

In conclusion, blockchain technology has emerged as a transformative solution for enhancing cybersecurity and ensuring data integrity in the digital age. Its decentralized architecture, cryptographic security, transparency, and immutability significantly reduce the risks associated with data breaches, unauthorized access, and cyberattacks. By eliminating single points of failure and providing tamper-resistant records, blockchain strengthens trust in digital transactions and information management across various sectors, including finance, healthcare, supply chain, and government.

Despite its many advantages, blockchain also faces challenges such as scalability, high implementation costs, regulatory uncertainty, and energy consumption in some consensus mechanisms. Addressing these limitations through continued research, technological innovation, and supportive policies will be essential for its widespread adoption.

As cyber threats continue to evolve, blockchain is expected to play an increasingly important role in building secure, transparent, and resilient digital systems. Organizations that strategically integrate blockchain with existing cybersecurity frameworks can improve data protection, enhance operational efficiency, and foster greater trust among stakeholders. Therefore, blockchain represents not only a powerful cybersecurity tool but also a key enabler of secure and reliable digital transformation.

References

1. Ali, Saqib & Anwar, Raja & Hussain, Omar. (2015). Cyber security for cyber physcial systems: A trust-based approach. Journal of Theoretical and Applied Information Technology. Page no. 2071.
2. Arumugam, Saravanan & Subramanian, Sathya. (2019). A Review on Cyber Security and the Fifth Generation Cyberattacks. Oriental journal of computer science and technology. Vol. 12, page no. 50-56.
3. Bhardwaj, Akashdeep & Alshehri, Mohammad & Kaushik, Keshav &Alyamani, Hasan J. & Kumar, Manoj. (2022). Secure framework against cyber attacks on cyber-physical robotic systems. Journal of Electronic Imaging. Page no. 31.
4. Dedakia, Priyanka. (2020). Network Security: Cyber-attacks & Strategies to Mitigate Risks and Threads.
5. Dumada, Hardik & Shukla, Aashutosh & Chudasama, Dhaval. (2022). Network Security Cyber Security Purity in 2021 and Afar Tips for Businesses. Vol. 9, page no. 7-12.
6. Fiaschetti, Andrea & Suraci, Vincenzo &Priscoli, Francesco. (2012). The SHIELD framework: How to

control Security, Privacy and Dependability in complex systems. Page no. 1-4.

7. Gardikis, Georgios &Tzoulas, K. &Tripolitis, K. &Bartzas, Alexandros &Costicoglou, S. & Gaston, Bernat & Fernández, Carolina & Dávila, Cristian & Jacquin, L. &Attak, H. &Katsianis, Dimitris &Neokosmidis, Ioannis & Batista, Tiago & Preto, Ricardo & Lioy, Antonio & Litke, Antonios & Papadakis, N. & Papadopoulos, Dimitris & Pastor, Antonio & Kourtis, Michail. (2017). SHIELD: A Novel NFV-based Cybersecurity Framework.
8. Gourisetti, Sri Nikhil Gupta & Mylrea, Michael & Ashley, Travis & Kwon, Roger & Castleberry, Jerry & Wright-Mockler, Quinn & McKenzie, Penny & Brege, Geoffrey. (2019). Demonstration of the Cybersecurity Framework through Real-World Cyber Attack. Page no. 19-25.
9. Humayun, Mamoona & Niazi, Mahmood & Zaman, Noor &Alshayeb, Mohammad & Mahmood, Sajjad. (2020). Cyber Security Threats and Vulnerabilities: A Systematic Mapping Study. Arabian Journal for Science and Engineering. page no. 45.
10. Jaquire, Victor & Solms, Basie. (2019). A Strategic Framework for a Secure Cyberspace in Developing Countries with Special Emphasis on the Risk of Cyber Warfare: Breakthroughs in Research and Practice. ISBN 978-1-5225-7912-0.
11. K., Sai & Aithal, Sreeramana. (2020). Blockchain Cyber Security Vulnerabilities and Potential Countermeasures. Vol. 9, page no. 1516-1522.
12. Kalakuntla, Rohit & Vanamala, Anvesh &Kolipyaka, Ranjith. (2019). Cyber Security. Holistica. Vol. 10, page no. 115-128.
13. Khadka, Anish &Karipidis, Paris &Lytos, Anastasios &Efstathopoulos, G.. (2021). A benchmarking framework for cyber-attacks on autonomous vehicles. Transportation Research Procedia. Vol. 52, page no. 323-330.
14. Kim, Kyounggon&Alfouzan, Faisal & Kim, Huykang. (2021). Cyber-Attack Scoring Model Based on the Offensive Cybersecurity Framework. Applied Sciences. Vol. 11.
15. Kolokotronis, Nicholas &Shiaeles, Stavros & Bellini, Emanuele & Charalambous, Elisavet &Kavallieros, Dimitrios &Gkotsopoulou, Olga & Pavue, Clement & Bellini, Alessandro & Sargsyan, Gohar. (2019). Cyber-Trust: The Shield for IoT Cyber-Attacks. Vol. 10.

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

सूर्यबाला की कहानी 'मानुष गंध' में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ

रोहिणी एस ए
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
Sayanth100rohini@gmail.com

डॉ. लक्ष्मी एस एस
अ.प्रो., हिंदी विभाग,
dr.lekshmysshindi@gmail.com

शोध-सार

साहित्य समाज की वास्तविकताओं का दर्पण है। वह केवल घटनाओं का विवरण प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और मानवीय परिस्थितियों का संवेदनात्मक एवं यथार्थपरक चित्र भी सामने लाता है। समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में सूर्यबाला ऐसी महत्वपूर्ण कथाकार हैं जिन्होंने भारतीय मध्यवर्गीय जीवन, आर्थिक संघर्ष, चिकित्सा व्यवस्था की विसंगतियों, प्रतिभा पलायन तथा मानवीय मूल्यों को अपनी कहानियों का विषय बनाया है। उनका कहानी-संग्रह मानुष गंध सामाजिक यथार्थ का सशक्त दस्तावेज़ है। प्रस्तुत शोध-पत्र में मानुष गंध कहानी के आधार पर मध्यवर्गीय जीवन, चिकित्सा व्यवस्था, आर्थिक असमानता, प्रतिभा पलायन तथा मानवीय संवेदनाओं का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सूर्यबाला केवल सामाजिक समस्याओं का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि उनके समाधान की मानवीय दृष्टि भी प्रस्तुत करती हैं।

बीज शब्द : सामाजिक यथार्थ, मध्यवर्ग, चिकित्सा व्यवस्था, आर्थिक विषमता, प्रतिभा पलायन, मानवीय संवेदना।

मूल लेख

साहित्य समाज का प्रतिबिंब होने के साथ-साथ उसकी आलोचनात्मक चेतना भी है। प्रत्येक संवेदनशील रचनाकार अपने समय के समाज को उसकी वास्तविक परिस्थितियों में देखने और दिखाने का प्रयास करता है। हिंदी कहानी ने विशेष रूप से स्वतंत्रता के बाद सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। समकालीन महिला कथाकारों में सूर्यबाला का स्थान विशिष्ट है। उन्होंने मध्यवर्गीय जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से बड़े सामाजिक प्रश्नों को उठाया है।

मानुष गंध ऐसी ही कहानी है जिसमें आर्थिक संघर्ष, पारिवारिक उत्तरदायित्व, चिकित्सा व्यवस्था की कमियाँ, विदेश जाने वाले भारतीय युवाओं की मानसिकता तथा मानवता के मूल्यों का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण मिलता है। कहानी का नायक वैभव केवल एक व्यक्ति नहीं, बल्कि उस भारतीय युवा वर्ग का प्रतिनिधि है जो व्यक्तिगत सफलता और सामाजिक दायित्व के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करता है।

मध्यवर्गीय जीवन का संघर्ष और पारिवारिक उत्तरदायित्व

भारतीय मध्यवर्ग का जीवन संघर्ष, सीमित संसाधनों और पारिवारिक दायित्वों से घिरा हुआ है। इस वर्ग के माता-पिता

अपने बच्चों की शिक्षा के लिए जीवनभर कठिन परिश्रम करते हैं और उनसे परिवार की आर्थिक स्थिति बदलने की आशा रखते हैं। सूर्यबाला इस मानसिकता का अत्यंत सजीव चित्रण करती हैं।

कहानी में वैभव अपने साथ पढ़ने वाले भारतीय छात्रों के जीवन का उल्लेख करते हुए कहता है–

"...एक बहन का दहेज! एक छत का बन्दोबस्त!... खासकर मेरे साथ वाले तो सबके सब सामान्य मध्यवर्गीय खाते-कमाते घरों वाले नौनिहाल..."[1]

यह कथन भारतीय मध्यवर्ग की सामाजिक वास्तविकता को उद्घाटित करता है। यहाँ विदेश जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करना केवल व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं है, बल्कि पूरे परिवार के भविष्य को सुरक्षित करने का माध्यम है। बहन के विवाह, माता-पिता के वृद्धावस्था के सहारे तथा आर्थिक स्थिरता का भार युवा पीढ़ी के कंधों पर आ जाता है। सूर्यबाला ने इस स्थिति को अत्यंत सहज किन्तु प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

चिकित्सा व्यवस्था और सामाजिक उत्तरदायित्व

कहानी का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष भारतीय स्वास्थ्य व्यवस्था की सीमाओं और वैज्ञानिक अनुसंधान की आवश्यकता को रेखांकित करता है। वैभव विदेश में केवल कैरियर बनाने के लिए नहीं, बल्कि बच्चों की किडनी संबंधी बीमारियों पर शोध कर समाज के लिए उपयोगी कार्य करना चाहता है।लेखिका लिखती हैं–

"...सिर्फ बच्चों का एक बहुत बड़ा-सा, सारी सुविधाओं से भरपूर अस्पताल... लेकिन अभी तो पहले रिसर्च-लैब की सुविधा जुटानी होगी..."[2]

यहाँ अस्पताल केवल एक भवन नहीं, बल्कि मानवीय सेवा और वैज्ञानिक दृष्टि का प्रतीक है। सूर्यबाला यह संकेत करती हैं कि चिकित्सा का उद्देश्य केवल व्यवसाय नहीं, बल्कि समाज के प्रति उत्तरदायित्व भी होना चाहिए। आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं का अभाव अनेक परिवारों के लिए जीवन और मृत्यु का प्रश्न बन जाता है।

आर्थिक विषमता और स्वास्थ्य सेवाओं की विफलता

भारतीय समाज में आर्थिक विषमता का सबसे गंभीर प्रभाव स्वास्थ्य सेवाओं पर दिखाई देता है। जिन परिवारों के पास पर्याप्त साधन नहीं होते, उनके लिए उपचार प्राप्त करना अत्यंत कठिन हो जाता है। कहानी में यह पीड़ा अत्यंत मार्मिक रूप से व्यक्त हुई है–

"हम जाँच ही कहाँ कर पाते हैं सर! जाँच की व्यवस्था ही नहीं है..."[3]

यह छोटा-सा कथन पूरे स्वास्थ्य तंत्र की विफलता को उजागर करता है। रोग की पहचान के लिए आवश्यक जाँच तक उपलब्ध न होना इस बात का प्रमाण है कि चिकित्सा सुविधाएँ समाज के सभी वर्गों तक समान रूप से नहीं पहुँच पाई हैं। सूर्यबाला इस स्थिति को केवल प्रशासनिक समस्या नहीं मानतीं, बल्कि इसे मानवीय संवेदनहीनता का परिणाम भी मानती हैं।

प्रतिभा पलायन और राष्ट्र के प्रति दायित्व

कहानी में विदेश जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले युवाओं की दुविधा का भी चित्रण मिलता है। एक ओर उन्हें विदेश में बेहतर अवसर प्राप्त होते हैं, दूसरी ओर अपने देश के प्रति दायित्व का प्रश्न उनके सामने उपस्थित रहता है।

कहानी में वैभव से कहा जाता है–

"...सीखें, सलाहें और जुगाड़ियाँ लेकर लौटता..."[4]

यह कथन कहानी के मूल संदेश को व्यक्त करता है। लेखिका का उद्देश्य विदेश जाने का विरोध करना नहीं है, बल्कि यह बताना है कि ज्ञान और अनुभव का अंतिम लाभ अपने समाज को मिलना चाहिए। यदि प्रतिभाशाली युवा अपने देश

की समस्याओं के समाधान में योगदान दें, तभी शिक्षा और विज्ञान का वास्तविक उद्देश्य पूरा होगा।

मानवीय संवेदना : कहानी का मूल संदेश

यद्यपि कहानी में आर्थिक विषमता, चिकित्सा व्यवस्था की कमियाँ और सामाजिक संघर्ष प्रमुख हैं, फिर भी इसका मूल स्वर निराशा नहीं है। वैभव का चरित्र सेवा, करुणा और सामाजिक उत्तरदायित्व का प्रतीक है। वह अपने ज्ञान का उपयोग केवल व्यक्तिगत उन्नति के लिए नहीं, बल्कि समाज के वंचित और पीड़ित वर्ग के कल्याण के लिए करना चाहता है।

सूर्यबाला का विश्वास है कि आधुनिक समाज में विज्ञान, शिक्षा और आर्थिक प्रगति तभी सार्थक है जब उसके केंद्र में मनुष्य और उसकी संवेदनाएँ हों। यही "मानुष गंध" अर्थात् मानवता की सुगंध इस कहानी का मूल भाव है।

उपसंहार

सूर्यबाला की मानुष गंध समकालीन भारतीय समाज का एक प्रामाणिक सामाजिक दस्तावेज़ है। कहानी में मध्यवर्गीय जीवन के संघर्ष, आर्थिक विषमता, स्वास्थ्य सेवाओं की सीमाएँ, प्रतिभा पलायन और मानवीय संवेदनाओं का अत्यंत यथार्थ चित्रण किया गया है। लेखिका यह स्पष्ट करती हैं कि समाज की वास्तविक प्रगति केवल आर्थिक विकास से नहीं, बल्कि मानवीय मूल्यों, सामाजिक उत्तरदायित्व और संवेदनशील दृष्टिकोण से संभव है। इसलिए मानुष गंध केवल एक कहानी नहीं, बल्कि भारतीय समाज के बदलते यथार्थ और मानवीय चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति है।

संदर्भ

1. सूर्यबाला, मानुष गंध, प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, पृ. 11।
2. सूर्यबाला, मानुष गंध, प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, पृ. 16।
3. सूर्यबाला, मानुष गंध, प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, पृ. 18
4. सूर्यबाला, मानुष गंध, प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, पृ. 19।

सहायक वेब सूचीः

1. https://en.wikipedia.org
2. https://study.com
3. https://pustak.org.in

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

बुद्ध शरण हंस के कथा साहित्य में हाशिए का समाज और प्रतिरोधी चेतना

राकेश कुमार
शोधार्थी, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार
Email id:-rk21250@gmail.com

शोध सार : समकालीन हिन्दी दलित साहित्य में बुद्ध शरण हंस का कथा साहित्य सामाजिक यथार्थ, जालिगत उत्पीड़न और मानवीय अस्मिता के प्रश्नों को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। उनके कथा साहित्य में हाथिए पर जीवन-यापन करने वालें समाज विशेषतः दलित, श्रमिक स्त्री तथा आर्थिक रूप से वंचित वर्ग के जीवन संघर्षों का सजीव चित्रण मिलता है। हंस जी ने अपने अनुभव के माध्यम से उस सामाजिक संरचना को उजागर किया है, जिसमें जाति वर्ग और सत्ता के आधार पर शोषण की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। हंस जी के कथा-साहित्य में केवल दलितों की पीड़ा और दमन का चित्रण ही नहीं है बल्कि उनमें प्रतिरोध, आत्मसम्मान और सामाजिक परिवर्तन की सशक्त चेतना भी विद्यमान है। हंस जी ने दलित समाज की मौन पीड़ा को स्वर देते हुए उसके भीतर उत्पन्न हो रही विद्रोही मानसिकता और अधिकार-बोध की अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनके पात्र हर एक जगह जुल्म के खिलाफ संधर्ष करते हुए दिखाई देते हैं, जिससे कथा साहित्य में प्रतिरोधी चेतना का विकास स्पष्ट रूप से उभरता हुआ दिखाई पड़ता है। साथ ही साहित्य में यह प्रतिरोध केवल भावनात्मक प्रतिक्रिया ही नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण वैचारिक उपकरण भी है।

बीज शब्दः- दलित साहित्य, हाशिए का समाज, प्रतिरोधी चेतना, सामाजिक न्याय, जातिगत शोषण, दलित विमर्श, अस्मिता, सामाजिक परिवर्तन हिन्दी कथा साहित्य, मानवीय गरिमा, अस्तित्व, समकालीन।

समकालीन हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श ने एक सशक्त वैचारिक आंदोलन का रूप ग्रहण किया है। दलित विमर्श ने भारतीय समाज की उस वास्तविकता से सुधि पाठकों को रू-ब-रू करवाया है जिसे मुख्याधारा का साहित्य लंबे समय तक अनदेखी, उपेक्षित करता रहा। दलित साहित्य केवल साहित्यक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय, जातिगत उत्पीड़न और असमानता के विरूद्ध संधर्ष का वैचारिक दस्तावेज है। समाज की इसी सच्चाई को बुद्ध शरण हंस अपने कथा-साहित्य के माध्यम से रखते हैं। इन्होंने अपने कथा साहित्य में समाज के हाशिए पर जीवन व्यतीत करने वाले लोगों को बहुत करीब से देखा है तथा उनकी पीड़ा, संघर्ष, अपमान, आत्मसम्मान की चेतना को पूरी सजीवता के साथ अभिव्यक्त किया है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में दलित समुदाय के लोगों के साथ किया जा रहा शोषण, उनके अस्तिस्व व अस्मिता के लिए कर रहे संघर्ष को भी चित्रित किया है। दलित समुदाय के लोगों के द्वारा की जा रही इस प्रकार के संघर्ष से प्रतिरोध चेतना का निर्माण होता है।

भारतीय समाज में सदियों से चली आ रही जातिवादी परम्परा सबसे खतरनाक है। यह परम्परा समाज में समानता स्थापित करने में सबसे बड़ा बाधा के रूप में सामने आता है। जातिवादी व्यवस्था के परिणम स्वरूप ही समाज में उँच्च वर्ग

और निम्न वर्ग की अवधारणा लोगों के मन में आयी। समाज का वह वर्ग जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, और सांस्कृतिक स्तर पर मुख्यधारा से अलग कर दिया गया हर एक समुदाय हाथिए का समाज कहलाया। यह समुदाय लंबे समय से सामाजिक बहिष्कार और भेदभाव का सामना करता हुआ आ रहा है। इसी समुदाय के हक-हुकूक की बातों को बुद्ध शरण हंस जी ने अपने कथा साहित्य में रखा है। हंस जी का साहित्य दलित समुदाय के जीवनानुभवों को अपने मूल में रखकर आगे बढ़ता है। इसी हाशिए के समाज की वेदना और संधर्ष को पाठकों के समीप रखते हैं। वे समाज की उस कठोर सच्चाई को सामने लाते हैं जहाँ मनुष्य की पहचान उसके कर्म से नहीं बल्कि जाति से निर्धारित की जाती है।

बुद्ध शरण हंस जी के कथा साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यथार्थवाद रहा है। स्वयं हंस जी ने जिस परिवेश में अपना जीवन यापन किया एवं अभावग्रस्त होकर किस प्रकार संघर्ष करते करते सफल हुए यह अपने आप में अनूठा उदाहरण है। सामंती प्रवृति समाज में कुंडली मार बैठा हुआ था उस स्थिति में उन्होंने जिस दुःख, दर्द को झेलकर आगे बढ़े वह निश्चित रूप से आज के युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणा-स्रोत है। उन्होंने समाज के उस चेहरे को उजागर किया है जिसे सामान्यतः छिपा दिया जाता है या उस तरफ कोई ध्यान देना नहीं चहता है लेकिन हंस जी ने काल्पनिक, आदर्शवाद से अलग होकर दलितों की वास्तविक जीवन के संघर्षो को चित्रित किया है। उन्होंने अपने जीवनकाल में जिन संघर्षो को झेला उसका वर्णन करते हुए लिखते हैं-''हमारे गाँव के उत्तरी किनारे एक भूमिहार का दालान है, जिसके उत्तर और पश्चिम लम्बी दीवाल तीन फीट की ऊँचाई तक खड़ी है। इस दीवाल पर शाम सुबह दर्जनों लोग बैठे गाँव का जोड़-घटाव बतियाते रहते हैं। शाम को चहाँ बैठने वालों की संख्या सुबह से दुगुणा होती है। इस दीवाल को इसलिए हमने दीवाल पंचायत का नाम दिया है। रामचन्द्र पांडे की माँ इस दीवाल पंचायत की स्थायी स्दस्या थी क्योंकि इस दीवाल से सटे उसका घर है। अनर्थ हो गेलै, की होलै रे, इ गाँव एकवा भ्रष्ट हो गेलो बाबा, अरे होलौ की से तो बताओ (एक बूढ़े ने पूछा), पांडे औ दुसाध एके साथ खा रहलो हे, सूचक ने चिल्लाकर कहा, मारनड काहे नै दुसाध के चार लात। ''[1]

हंस जी के पात्र गाँव, कस्बे और निम्नवर्गीय वस्तियों से आते हैं। ये पात्र सामाजिक उपेक्षा और जातिगत अत्याचार का सामना करते हैं। लेखक ने दलित जीवन की दयनीय परिस्थितियों के साथ-साथ सवर्ण मानसिकता की कूरता को भी उजागर किया है। उन्होंने अपने कथा-साहित्य में गरीबी, अशिक्षा, बेकरी, अस्पृश्यता और सामाजिक ससमानता के अनेक चित्र मिलते हैं। दलित समुदाय के लोग प्रतिरोध क्यों नहीं कर सके, इसकी चाहे जो वजह रही हो, लेकिन शिक्षा से वंचित करके उनकी सभ्यता, उनकी संस्कृति आदि सब कुछ उनसे छीनकर उनकी चेतना की हत्या की गई जिसे अंग्रेजी सत्ता ने पुनर्जीवित किया। यह पुनर्जीवन इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि उन्होंने जाति, पाति से उठकर सभी के लिए शिक्षा का द्वारा खोल दिया। यह ऐतिहासकि सच है कि अंग्रजी नहीं आये होते तो दलित मात्र और मात्र अछूत ही बने रहते। अंग्रजों ने दलितों के हाथों में शब्दों के हथियार थमा कर उनकी दुनिया ही बदल दी। दलितों की मृत चेतना जीवित हो उठी। सोया हुआ आत्मसम्मान जाग गया। आत्मबल का संचार हुआ। आदमी होने का अनुभव हुआ।

बुद्ध शरण हंस जी ने अपने कथा साहित्य में दलित अस्मिता का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण तरीके से उठाया है। जहां कहीं भी शोषण, अपमान और तिरस्कार का भास होता है तो वहां पर अपनी पहचान और सम्मान के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई पड़ते हैं। हंस जी लिखते हैं- ''मैं गाँव का था, जहाँ छुआछूत का नंगा नाच होता था। मैं छआछूत का घायल नागरिक था। हर गाँव की तरह मेरे गाँव में भी देवी मंदिर था। मंदिर में कौन देवी है, मुझे आज तक पता नहीं है। क्योंकि मंदिर में क्या, उसके चबूतरे, ओसारे पर भी अछूतों को जाने नहीं दिया जाता था। मैं बचपन से स्वाभिमानी था। जब से मुझे होश हुआ, मैंने देवी मंदिर की ओर झाँका तक नहीं। मेरे गाँव में छोटी सी पहाड़ी है। पहाड़ी के ऊपर मखदुम साहब का मजार है। इस मजार पर जानें में छुआछूत नहीं है। सो मैं मखदुम साहब के मजार पर बराबर जाता। छुट्टियों में मैं किताब कॉपी लेकर इसी पहाड़ी पर चढ़ता और मजार के पास बड़े चीकने पत्थर पर बैठकर पढ़ता।''[2]

दलित समाज के लोग सदियों से सामाजिक तिरस्कार का शिकार होता आ रहा है। स्वयं हंस जी को भी लगातार तिरस्कृत होना पड़ा था। उन्होंने जो सच्चाई देखा उसका हु-ब-हू चित्रांकन अपनी रचनाओं में किया। तिरस्कृत हो रहे-दलित

समुदाय के सदस्यं जब मुखर होकर विरोध करना शुरू करता है तब आत्मसम्मान की चेतना जागृत होती है। फिर धीरे-धीरे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होता है तब वह अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाता है। बुद्ध शरण हंस के साहित्य में यह प्रक्रिया स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। तमाम तरह की झंझावातों को सहन करते हुए आगे बढ़े नौकरी मिली किन्तु आत्मसंतुष्टि जिस नौकरी से होती वहाँ तक लगातार संघर्ष करते रहे और अंततः सफलता मिली। सेवा में रहकर आमजनता जो दबा कुचला है, शोषित पीड़ित एवं वंचित है उसके लिए दिन-रात सोचने लगे उसे शिक्षित बनने के लिए जगह-जगह जाकर संदेश देने लगे की अगर समाज में बदलाव चाहिए तो शिक्षा रूपी हथियार को उठाएं तभी सफल हो सकते हैं। हंस जी लिखते हैं कि- ''पद प्रतिष्ठा किसी शहर बाजार में खरीदी नहीं जाती। पद प्रतिष्ठा अच्छी संस्थाओं से बनायी जाती है। अतीतकाल में सम्पन्न लोग किसी शहर बाजार में धर्मशाला खोला और चलाया करते थे। इस धर्मशाला से धर्मशाला खोलनेवाले को रत्तीभर भी लाभ नहीं होता था बल्कि इस धर्मशाला के रखरखाव में मासिक खर्च करके धर्मशाला चलाना पड़ता था। धन का शृंगार तो जन कल्याण में ही है। शिक्षा प्राप्त करने में बालिकाओं को बहुत कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था। अगर हम शहर बाजार में बालिकाओं के लिए सुरक्षित छात्रावास बनवाएं और चलायें तब पिछड़े समाज को बहुत लाभ मिल सकता है। हर शहर में हर बाजार में बालिका छात्रावास बनाना और चलाना चाहिए। हम कुछ करें। अगर कोई अच्छा काम करें तब हमें उनका सहयोग करना चाहिए। सहयोगी भावना से बहुत सा काम किया जा सकता है। मेरे रिटायरमेंट का पाँच लाख रूपये भी इसी तरह के कामों में लगना चाहिए।''[3]

प्रतिरोधी चेतना का अर्थ केवल विद्रोह नहीं, बल्कि अन्यायपूर्ण व्यवस्था के विरूद्ध वैचारिक और सामाजिक संधर्ष से है। यह स्थिति बुद्ध शरण हंस जी के कथा साहित्य में अनेकों स्तरों पर दिखाई देती है। सामाजिक प्रतिरोध, मानसिक प्रतिरोध, आर्थिक प्रतिरोध, संस्कृतिक प्रतिरोध जैसे स्तरों पर इसका गहन अध्ययन किया जा सकता है। दलित चेतना को लेकर ओमप्रकाश वाल्मीकि जी लिखते हैं कि- ''दलित चेतना का सरोकार इस प्रश्न से बहुत गहरे तक जुड़ा है कि' मैं कौन हूँ'? मेरी पहचान क्या है? दलित की व्यथा, दुःख, पीड़ा, शोषण का विवरण देनो था बखान करना ही दलित चेतना नहीं है, या दलित पीड़ा का भावुक और अश्रुविगलित वर्णन, जो मौलिक चेतना से विहिन हो, चेतना का सीधा संबंध दृष्टि से होता है जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक सामाजिक भूमिका की छवि की तिलष्म को तोड़ती है। वह है दलित चेतना, दलित मतलब मानवीय अधिकारों से वंचित सामाजिक तौर पर जिसे नकारा गया हो। उसकी चेतन यानी दलित चेतना।''[4]

हंस जी के कथा साहित्य में प्रतिरोध के स्वर कई रूपों में देखने को मिलता है। सामाजिक प्रतिरोध के अंतर्गत दलित समुदाय के लोगों के साथ ऊँच्च वर्ग के लोगों के द्वारा हेय दृष्टि से देखा जाता हैं उसे सामाजिक भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। उसे जातिसूचक शब्दों से संबोधित किया जाता है। या भाव इसलिए भी किया जाता रहा हैं कि दलित समुदाय के लोगों की भावनाओं को आहत कर दें जिससे कि वह आगे बढ़ नहीं पायेगा। जातिगत पेशा के करने के लिए बाध्य किया जाता है। इस परिस्थिति में दलित समुदाय के लोग जाति आधारित व्यवस्था को चुनौती देते हैं और समानता की माँग करते है। स्वंय हंस जी डी0 डी0 सी0 के पद पर रहते हैं और उस क्षेत्र के अंतर्गत आनेवाले दलित समुदाय का वर्ग जिसे जातिगत पेशा करने के लिए बाध्य किया जाता था उससे अलग व्यवसाय करने को प्रोत्साहित करते हैं और सरकार द्वारा दी जानेवाली अनुदान भी दिलाते हैं-'' 1998 में मैं क्क्ब के पद पर शेखपुर में पदस्थापित था। तब क्ण्त्ण्क्ण्। के माध्यम से गाँव में अपना जातीय पेशा करनेवालों को अपना पेशा करने के लिए सरकार से कर्ज और अनुदान दिये जाते थे। मैंने ब्राहमणों के खुराफाती दिमाग को पढ़ा भी था और समय भी था। मैंने अपने अधीनस्थ अधिकारियों और कर्मचारियों को यह समझाता रहा कि किसी को जातीय पेशा करने के लिए दबाव नहीं बनाना चाहिए।''[5]

भारतवर्ष में जातिगत आधार पर पेशा करने के लिए बाध्य करना सवर्णों के लिए सामान्य सी बात होती है। यही परम्परा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रहती है। आज दलित समुदाय की आहें-कराहें दलित बनी हैं और उसे मूक मानव ने डॉ. अम्बेडकर के विचार प्रभाव में आकर व्यक्त किया है। वे लिखते हैं कि- ''पुरातन विषमताओं की यथास्थिति को नकारते हुए, हिन्दू प्रतीको में से अपने प्रतीक तलाशते हुए, वर्ण जाति को अप्रासांगिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुऐ, लोकतांत्रिक मूल्यों के मानवीय

संबंधों की नई राह निकली है। लेकिन स्त्री जो दलित में भी दलित है और संख्यात्मक दृष्टि से वह इस वर्ग का आधा हिस्सा है, वह इस साहित्य लेखन में भी बहुत कम लेखकों का विषय बन पाया है। यह शायद दलित साहित्य में फिलहाल स्त्री-पुरूष संबंधो पर कम सोचा जाने के कारण हुआ है। छुआछूत जैसे विषयों पर दलित साहित्य की स्वाभाविक एवं महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। दलित समुदाय के लोगों की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी जीवन की मूलमूत आवश्चक्ताएँ पूरी नहीं हुई, उसकी स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ। तब गुलामों जैसी परिस्थितियाँ में अपनी व्यथा कथा को रागात्मक अभिव्यक्ति देना दलित लेखकों से ही संभव था।''[6]

भारतीय समाज में प्रचलित वर्ण व्यवस्था ने ब्राहमणों का सहयोग पाकर दलित समुदाय के लोगों को मनुष्य समझा ही नहीं। वर्ण-व्यवस्था का कठोर नियम से त्रस्त दलित समुदाय ब्राझाणों के कुचक्र में फंस गया है। निरंतर अपने अस्तित्व व अस्मिता को संरक्षित करने के लिए संघर्ष करते रहते हैं। इसी मनुवादी व्यवस्था ने दलित समुदाय के लोगों को हाथिए पर धकेल दिया है जहां प्रताड़ित अभिशप्त होकर जीवन जीने के लिए विवश हैं। दलित चिंतकों ने तो लगातार हाथिय के समाज को केन्द्र में रखकर लेखनी चलाते रहे हैं। इस क्रम में लेखक बुद्ध शरण हंस का नाम और भी उल्लेखनीय है। उन्होंने ग्रमीण परिवेश में दलित समुदाय के लोगों के साथ जिस तरह का व्यवहार किया जाता था उसे भली भाँति उन्होंने देखा ही नहीं अपितु भोगा भी। यहाँ तक की इतना शिक्षित होकर ऊँच्च ओहदा प्राप्त करने के बावजूद भी मनुवादी अपने जातीय चश्मा से देखा करता था। जब वे चकबंदी अधिकारी थे उस समय भी उनसे उनके साथ रहनेवाले तिवारी जी जातीय भाव से आहत होकर उसी तरह का व्यवहार करते हैं। हंस जी को कदम-कदम पर जातिगत शोषण का शिकार होना पड़ा। एक उच्च बौद्धिक वर्ग के व्यक्ति के साथ जब इस तरह का व्यवहार सामान्य बात थी तो आम जन-जीवन जो आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक रूप से पिछड़े लोगों के साथ कैंसा व्यवहार करता होगा चितंनीय है। हंस जी हमेशा से हाथिए के समाज के लिए मुखरता प्रदान किया उन्होंने शिक्षा को हथियार मानकर समाज में बदलाव करने का प्रण लेने को कहा। इसके लिए उन्होंने तमाम तरह की संस्थाएं खोली, झोला पुस्तकालय का प्रचलन किया जिससे सामान्य से सामान्य लोग भी शिक्षा प्राप्त कर सके। शिक्षा पाकर बौद्धिक होने के बाद निःसंदेह दलित समुदाय के लोगों में प्रतिरोध की चेतना विकसित हो पायेगी और वह मनुवादी से संघर्ष कर समाज में समानता स्थापित करने में सक्षम हो पायेगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बुद्ध शरण हंस जी ने अपने कथा साहित्य में हाशिए के समाज के लिए सबलता प्रदान की है। उन्होंने सदियों से सताये गए दलितों को शिक्षा प्राप्त करने पर बल दिया जिससे वे अपने जीवन स्तर में सुधार ला सके। इसके लिए स्वंय हंस जी आजीवन लगे रहे कि हाथिए पर जीवन जीने वाला समुदाय मख्यधारा में आ सके। शिक्षा प्राप्त कर समाज में समानता ला सके। दलितों द्वारा लगातार की जा रही संघर्ष से ही प्रतिरोधी चेतना का विकास संभव हो सकेगा।

संदर्भ सूची

1. बुद्ध शरण हंस, टुकड़े-टुकड़े आईना, भाग-1, उत्पीड़न खंड- पृ0सं0-26
2. वही, पृ, सं0-73
3. बुद्ध शरण हंस, टुकड़े-टुकड़े आईना, भाग-5, कांतिबाला, पृ0 सं0-88
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ0सं-29
5. बुद्ध शरण हंस, टुकड़े-टुकड़े आईना, भाग-1, उत्पीड़नखंड, मुशहरकथा पृ0 सं0-118
6. सं0-डॉ0 श्यौराज सिंह बेचैन, सामाजिक न्याय और दलित साहित्य पृ0 सं0-37-38

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

प्राचीन भारत में क्षत्रिय महिलाओं के व्यभिचार संबंधी विधिक प्रावधान : धर्मसूत्रों का तुलनात्मक विश्लेषण

चौधरी मधुलिका
शोधछात्रा, इतिहास विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान।

सारांश

यह अध्ययन 600 से 100 ईसापूर्व के मध्य के चार मुख्य धर्मसूत्रों—गौतम, बौधायन, अपस्तम एवं वशिष्ठ—के आधार पर क्षत्रिय महिलाओं के द्वारा व्यभिचार संबंधित विधिक प्रावधानों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसका उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि व्यभिचार को पाप एवं अपराध दोनों ही रूप में उल्लेखित किया जाता था एवं व्यभिचारी क्षत्रिय महिलाओं को दी जाने वाली सज़ाओं और प्रायश्चित का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना है। यह दर्शाना भी है कि वर्ण आधारित प्राचीन भारतीय समाज की विधिक परंपराओं में, क्षत्रिय वर्ण की व्यभिचारी महिला को उसके विशिष्ट वर्ण के आधार पर पृथक विधिक दर्जा नहीं दिया जाता था; इसके बजाय, उन्हें उच्च वर्णीय महिला समूह और महिलाओं के रूप में उल्लेख किया गया, और सामान्य प्रावधानों समान प्रावधान पर लागू होते थे।

शब्द कुंजी : धर्मसूत्र, क्षत्रिय महिला, व्यभिचार, विधिक प्रावधान, सज़ाओं और प्रायश्चित।

1. परिचय

प्राचीन भारतीय इतिहास की विधि परंपराओं में, उच्च वर्ण की महिलाओं द्वारा व्यभिचार का विषय अत्यंत संवेदनशील और महत्वपूर्ण रहा है। उनकी स्थिति व्यक्तिगत स्तर तक ही सीमित नहीं थी; अपितु, यह वर्ण-व्यवस्था के पदानुक्रम, लिंग-आधारित पदानुक्रम, शुद्ध वंश परंपरा, सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था और पारिवारिक प्रतिष्ठा से अविच्छेद्य रूप से संबंधित थी। उपलब्ध शोधों में बहुधा व्यभिचार के विधिक प्रावधानों पर काम किया है परंतु ऐसा करते हुए भी मुख्य रूप से उन प्रसंगों पर लेखनी हुई जिनमें अपराधी मुख्यतः पुरुष थे। महिलाओं द्वारा किए गए व्यभिचार, उनको मिलने वाली सज़ा और प्रायश्चित, या इसका उनके जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव पर अध्ययन अपेक्षाकृत कम हुआ है। क्षत्रिय महिला जिनका वर्ण के आधार पर समाज में महत्वपूर्ण स्थान था, तथापि इस वर्ण की महिलाएँ वर्ण-प्रधान पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के कारण कई विधिक, धार्मिक और आर्थिक संस्थाओं से बंधी हुई थीं। इस विरोधाभास के कारण यह अध्ययन महत्वपूर्ण है।

यह लेख पी. वी. काणे द्वारा निर्धारित की गई मानक तिथि के अनुसार 600 ईसापूर्व से 100 ईसापूर्व के विधिक स्रोतों गौतम धर्मसूत्र (600-400 ईसापूर्व), आपस्तंब धर्मसूत्र (450-350 ईसापूर्व), बौधायन धर्मसूत्र (500-200 ईसापूर्व) और वशिष्ठ धर्मसूत्र (300-100 ईसापूर्व) का उपयोग करते हुए एक विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक अध्ययन होगा। अध्ययन में क्षत्रिय महिला द्वारा पुरुष के साथ किए गए व्यभिचार, उन्हें मिलने वाली सज़ा और प्रायश्चित, तथा जीवन पर इनके असर का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा। इस उद्देश्य हेतु प्राथमिक और द्वितीयक साहित्यिक वैधानिक स्रोतों का उपयोग किया गया है।

विधिक विश्लेषण एवं प्रावधान में क्षत्रिय महिलाओं को वर्ण रहित, लिंगीय अभिज्ञान के आधार पर संदर्भित किया गया। जिनकी पहचान उनके परिवार के पुरुषों पर निर्भर करती थी और उनके व्यवहार को नियंत्रण में रखने का दायित्व भी परिवार के पुरुष सदस्यों की ज़िम्मेदारी मानी जाती थी। इन सामाजिक व्यवस्था के अनुसार, उनके द्वारा किए गए अपराधों और पापों का उत्तरदायित्व परिवार के पुरुष सदस्यों पर आती। चूंकि, अपराध महिला ने किया है इसलिए अपराध के आधार पर उन्हें हल्के से लेकर मध्यम स्तर तक की सज़ा भुगतनी पड़ती थी; फिर भी, सज़ा का यह स्तर भी उनके लिए कठोर था।

2. वैचारिक एवं विधिक रूपरेखा

क्षत्रिय महिलाओं से जुड़े विधिक प्रावधानों का विश्लेषण करने से पहले, उस मुख्य वैचारिक और कानूनी ढांचे को स्पष्ट करना ज़रूरी है, जिस पर प्रमुख धर्मसूत्रों ने प्रायश्चित और दंड के बारे में अपने नियम आधारित किए थे। साथ ही, जीवन के विभिन्न आयामों में क्षत्रिय महिलाओं की समग्र पृष्ठभूमि का विश्लेषण करना भी आवश्यक है, क्योंकि निर्धारित दंडों के संबंध में उनकी स्थिति को केवल इसी आधार पर समझा जा सकता है।

2.1 धर्म : आचार संहिता एवं विधिक सिद्धांत

'धर्म' के सटीक अर्थ को परिभाषित करना मुश्किल है। धर्मसूत्रों के अध्ययन से पता चलता है कि यह जीवन जीने का तरीका और मानक आचार संहिता है। P.V. Kane ने भी ऐसा ही विवरण प्रस्तुत किया है। समय के साथ यह आचार संहिता एक अलग इकाई– 'न्यायशास्त्र'–के रूप में उभरा। इसकी सबसे प्रारंभिक ज्ञात प्रकरण गौतम धर्मसूत्र में मिलता है–जिसे प्रमाणिक कानून भी माना जाता है। धर्मसूत्रों की सटीक तिथि, कालक्रम और प्रभावी स्थानिक क्षेत्र को लेकर विवाद रहा है। सामान्यतः कुछ प्रकरण में सूत्रकार दूसरों से अलग थे, फिर भी विधिक प्रावधानों में पूर्ववर्ती विधि की क्रमिक निरंतरता प्रदर्शित होती है।

2.2 पाप एवं प्रायश्चित तथा अपराध एवं दंड

धर्मग्रंथों में दो अवधारणाओं–पाप और अपराध–का उल्लेख है। S.C. बनर्जी के अनुसार ईश्वरीय नियमों का उल्लंघन और वर्जित कार्यों को करना 'पाप' माना जाता था एवं इसके लिए प्रायश्चित का विधान था, वही दूसरी तरफ सर्वमान्य मानवीय मानदंडों का उल्लंघन अपराध माना जाता था जिसे रोकने के लिए शारीरिक एवं आर्थिक दंडनीय प्रावधान किए गए थे। इस बारे में निर्णय राजा और उनकी न्याय परिषद करती जो अपराधी, आरोपी और पीड़ित की उम्र, जाति, वैवाहिक स्थिति, मानसिक व शारीरिक हालत, अपराध के मकसद, समय, जगह, और क्या अपराध दोहराया गया- जैसे कारकों की जाँच करने के बाद ही लिया जाता। सज़ा का मकसद न सिर्फ़ अपराधी के मन में, बल्कि समाज के सभी लोगों के मन में डर पैदा करना था, ताकि सामाजिक स्थिरता बनी रहे। चूंकि महिलाओं का सामाजिक दर्जा परिवार, पति, धर्म और जाति-समुदाय से गहराई से जुड़ा हुआ था, इसलिए ऐसे अपराधों या पापों के लिए तय की गई सज़ाओं और प्रायश्चितों का उनके निजी, पारिवारिक और सामाजिक जीवन को गंभीर रूप से प्रभावित करते थे।

2.3 व्यभिचार एवं विधि ग्रंथ

समाज के विकास के साथ-साथ कई तरह की विकृतियाँ भी सामने आती हैं, जिनमें से एक अपराध है। यह प्राचीन भारतीय समाज का भी अहम हिस्सा रहा है जिसका समय के साथ परिभाषा, श्रेणी और आयाम बदलते रहे हैं। प्राचीन भारत में व्यभिचार भी एक अपराध था। धर्मसूत्रों में यौन अपराधों को व्यभिचार के रूप में वर्णित किया गया। अपने मन में अपने जीवनसाथी के प्रति बेवफ़ा हो जाना, अपने जीवनसाथी के अलावा किसी और से छिपकर बातचीत करना, उनके दिए कपड़े या गहने पहनना , सौंदर्य प्रसाधन का उपयोग करना, शरीर को छूना, मज़ाकिया अंदाज़ में बात करना, घूरना, खाना या कपड़े भेजना, व्यक्ति को चूमना या गले लगाना, एक ही बिस्तर पर लेटना और यौन संबंध बनाना-इसे व्यभिचार माना जाता था। इसमें सम्मानित व्यक्ति या गुरु अथवा उनके जीवनसाथी के साथ यौन संबंध, सगोत्रीय-निकट-संबंधियों के बीच यौन-संबंध, निषिद्ध यौन सम्बन्ध, विवाह-पूर्व यौन संबंध, विवाहोत्तर यौन संबंध और बलात्कार शामिल थे। उल्लिखित विधिक प्रावधान

समय के वास्तविक समाज को नहीं दर्शाती है अपितु यह आदर्शवादी समाज के मानकीय सिद्धांत को प्रस्तुत करती है।

2.4 क्षत्रिय महिला : पृष्ठभूमि

यह अध्ययन क्षत्रिय महिलाओं पर केंद्रित है जिनका वर्ण व्यवस्था में दूसरा स्थान था। इस वर्ण के पुरुषों ने राजनीतिक, प्रशासनिक और न्यायिक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण पद संभाले थे। हालाँकि, समाज के पितृसत्तात्मक ढांचे के कारण, इस वर्ण की महिलाओं ने एक शक्तिशाली वर्ण से संबंधित होने के बावजूद राजनीतिक, आर्थिक और कानूनी क्षेत्रों में निष्क्रिय भूमिका में रही। वे सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों में सक्रिय थीं, लेकिन आश्रित के तौर पर। आर.सी. दत्त और अल्तेकर ने इस बात पर बल दिया कि इस दौर में महिलाओं को काफी अधिकार प्राप्त थे, लेकिन उमा चक्रवर्ती, एम.इंद्रा और अन्य इतिहासकारों ने उन्हें पुरुषों के नियंत्रण में रहने वाले नाबालिगों के रूप में वर्णित किया। विभिन्न आयामों के साथ महिलाओं के यौन आचरण पर भी पुरुषों का नियंत्रण रहा। धर्मसूत्रकारों ने स्वतंत्र यौन व्यवहार को आचरण संहिता के माध्यम से प्रतिबंध लगाकर निजता और प्रतिष्ठा के परिप्रेक्ष्य से जोड़ा। नतीजतन, महिलाओं का यौन आचरण निजी विषय न रहकर वंश शुद्धता, वर्ण व्यवस्था की स्थिरता और पितृसत्ता को सुचारू रूप से बनाए रखने का एक ज़रूरी ज़रिया बन गया; इस आचरण को नियंत्रित करने के लिए कई तरह के दंडात्मक और प्रायश्चित रूपक उपाय लागू किए गए जो धर्म-सूत्रों और धर्म-शास्त्रों के माध्यम से धीरे-धीरे विकसित होकर परिपक्वता तक पहुँचा।

3. धर्मसूत्रों में क्षत्रिय महिलाओं के व्यभिचार से संबंधित विधिक प्रावधान

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार, अगर कोई महिला व्यभिचार करते हुए पकड़ी जाती, तो उसे जानवरों के समक्ष उन्हें भक्षण हेतु छोड़ दिया जाता या फिर सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता था। इसके अलावा, आपस्तंब और बौधायन के विपरीत, उन्होंने इस कार्य के लिए किसी भी प्रकार के प्रायश्चित या तपस्या का विधान नहीं किया। आपस्तंब और बौधायन धर्मसूत्रों में व्यभिचार के प्रायश्चित के लिए 'कृच्छ्र' और 'चंद्र' व्रतों का विधान था; इनमें बताई गई सजाओं में महिला का सामाजिक बहिष्कार शामिल था, न कि कोई बहुत कठोर या क्रूर दंड। वशिष्ठ धर्मसूत्र ने गौतम जितनी कड़ी सज़ा नहीं बताई; फिर भी, उन्होंने इस अपराध के लिए पति द्वारा त्याग दिए जाने और धार्मिक अनुष्ठान करने के अधिकार से वंचित कर दिए जाने जैसी सज़ाएँ बताईं। प्रायश्चित के लिए, उन्होंने आपस्तंब और बौधायन द्वारा बताए गए तरीकों को अपनाया, हालाँकि उन्होंने तपस्या के साथ-साथ एक अनुष्ठानिक प्रक्रिया को शामिल करके पारंपरिक प्रायश्चित के तरीके से थोड़ा अलग रास्ता चुना। आगे के विवरण में सभी धर्म-सूत्रों का क्रमिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

3.1 गौतम धर्मसूत्र

गौतम धर्मसूत्र (I.15-26, II.36, IV.6-13) ने सभी वर्णों के लिए निर्धारित पदानुक्रम स्थापित किया था जिसके आधार पर विशेषाधिकार प्राप्त होते थे परंतु व्यभिचार से जुड़े नियमों और दंडों में पुरुषों की भांति महिलाओं को वर्ण श्रेष्ठता का कोई लाभ प्राप्त नहीं होता था। इसमें व्यभिचार की दोषी महिलाओं के लिए अन्य धर्मसूत्रों की तुलना में सबसे कठोर सज़ा का प्रावधान किया है। चूंकि समाज सरल से जटिल की ओर बढ़ता है इस अनुसार शुरुआत में, व्यभिचार को प्रायश्चित की आवश्यकता वाला पाप माना जाना और समाज की जटिलताओं के कारण इसे अपराध की श्रेणी में भी रखा जाना स्वाभाविक क्रम लगता है। नतीजतन, बदलते समय और परिस्थितियों को देखते हुए, हल्की सजा से कठोर सजा की ओर बढ़ना उचित प्रतीत होता है। अतः व्यभिचार के लिए दी जाने वाली सज़ा की गंभीरता का विश्लेषण करने पर, धर्मसूत्रों के कालक्रम के बारे में पैट्रिक ओलिवेल का अनुमान सही लगता है जिसमें तर्कों के आधार पर आपस्तंब धर्मसूत्र को सबसे पुराना बताया और गौतम धर्मसूत्र को दूसरे स्थान पर रखा। सूत्र XXIII-14 के अनुसार यदि कोई उच्च वर्ण की महिला किसी निचले वर्ण के पुरुष के साथ शारीरिक संबंध बनाती थी, तो उसे सार्वजनिक स्थान पर कुत्तों के समक्ष भक्षण के लिए छोड़ दिया जाता था अथवा अन्य सूत्र XXI-9 के अनुरूप उसे अपनी जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था। व्यभिचारी महिलाओं के संदर्भ में मुख्यतः यह दो दंडात्मक प्रावधान किए गए थे।

उपलब्ध विधि साक्ष्यों (XXI-9, XXV-7) के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन प्रावधानों में महिलाओं का वर्गीकरण मुख्य रूप से दो श्रेणियों में दिखाई देता है- उच्च वर्ण की महिलाएँ और निम्न वर्ण की महिलाएँ। क्षत्रिय महिलाएँ वर्ण व्यवस्था में दूसरे स्थान पर होने के कारण उच्च-वर्ण की महिलाओं के समूह में आती थीं। धर्मसूत्र में क्षत्रिय महिलाओं के विषय में सीधा उल्लेख नहीं किया गया इसलिए यह तर्क दिया जा सकता है कि क्षत्रिय महिलाओं को इन्हीं नियमों के तहत सजा मिलती थी। इनमें (XII-2-3, XXIII-33-34, XXII-3,14-15) सजाओं के लिए वर्णाधारित अलग वर्गीकरण का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। गौतम धर्मसूत्र में महिलाओं के द्वारा नीचे वर्ण के पुरुष के साथ व्यभिचार के विषय में विधिक दंडात्मक प्रावधानों का उल्लेख है परंतु उच्च वर्ण अथवा समान वर्ण के पुरुष के साथ इस संबंध पर विशिष्ट दंडात्मक विधिक प्रावधान नहीं दिए गए। परिणामस्वरूप यह स्पष्ट नहीं होता कि यदि अगर क्षत्रिय महिलाएँ ब्राह्मण वर्ण या अपने ही क्षत्रिय वर्ण के पुरुषों के साथ संबंध बनाती हैं, तो उन्हें किस प्रावधानों के अनुसार सजा मिलती।

गौतम धर्मसूत्र के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि इसमे व्यभिचार के दंडात्मक पक्ष पर अधिक बल दिया गया जिसके लिए शारीरिक और सामाजिक दंड का विधान निर्दिष्ट किया अतः यह व्यभिचार को अपराध के रूप में प्रस्तुत करता है। वहीं आपस्तंब ने पाप और अपराध दोनों रूप में दर्शाया, जिसके लिए प्रायश्चित जैसे विधान का उल्लेख किया गया इसके साथ ही सामाजिक और अनुष्ठानिक दंड को भी स्थान दिया गया।

3.2 आपस्तंब धर्मसूत्र

आपस्तंब धर्मसूत्र (I.7.21.13) ने प्रायश्चित और सज़ा उच्च वर्णीय महिलाओं के लिए बताई थी जो शूद्रों के साथ यौन संबंध बनाती थीं। इससे वह सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण से अशुद्ध मानी जाती। प्रायश्चित के तौर पर (I.10. 29.17-18), उन्हें सादा जीवन जीना पड़ता था, जिसमें खास तरह के कपड़े पहनना, दिन में तीन बार स्नान करना और सादा भोजन करना शामिल था। इस प्रायश्चित की अवधि एक दिन से लेकर एक साल तक हो सकती थी। सूत्र I.10.27.9-10 के अनुसार अगर ऐसे संबंध से महिला गर्भवती हो जाती थी, तो वह कभी भी इस अपराध से मुक्त नहीं हो सकती थी। धर्मसूत्र में आर्य महिलाओं और शूद्र पुरुषों के बीच यौन संबंधों के लिए निर्धारित सज़ाओं और प्रायश्चितों का साफ़ तौर पर ज़िक्र है। परन्तु क्षत्रिय महिलाओं के द्वारा शूद्र पुरुष के साथ बनाए जाने वाले शारीरिक संबंध पर पृथक सजाओ का प्रावधान नहीं दिया गया क्योंकि क्षत्रिय महिलाएँ आर्य वर्ण से संबंधित थीं; इसलिए, वे इस विधिक प्रावधानों के दायरे में आती थीं।

छात्र अनुशासन और सामाजिक आचरण संबंधी नियमों के विश्लेषण से आर्य महिलाओं और उच्च वर्ण के पुरुषों के बीच यौन संबंधों के लिए दंड का का ज्ञान होता है। पहला, सूत्र I.3.9.11-12 में छात्रों के शैक्षणिक अनुशासन से जुड़े दिशा-निर्देशों के तहत छात्रों को हिदायत दी गई थी कि अगर उनका सामना किसी ऐसी महिला से हो जिसने किसी दूसरे पुरुष के साथ यौन संबंध बनाकर अपनी मर्यादा भंग की हो, तो वे उससे नज़रें भी न मिलाएं; साथ ही कुछ समय के लिए वेदों का पाठ भी रोक देना चाहिए। सूत्र I.7.21.5-10, ऐसे व्यक्ति के विषय में है जो अपने रिश्तेदारों या फिर उनके बच्चों या फिर वह किसी भी अपने बड़े बुजुर्ग के दोस्तों के साथ अनैतिक यौन संबंध का निर्वाह करते हो। सिद्धांत के अनुसार ऐसे व्यक्ति अपनी जाति खोद देते और इन व्यक्तियों के साथ सामाजिक रूप से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध अपराध माना जाता. उस पर प्रतिबंध लगाने का भी विधान था।

आपस्तंब ने भी क्षत्रिय महिलाओं द्वारा किए गए व्यभिचार के लिए पृथक रूप से सज़ा तय नहीं की; गौतम की तरह ही, उन्होंने भी उन्हें उच्च वर्ण की महिलाओं की श्रेणी में रखकर विधिक प्रावधानों को स्पष्ट किया। विश्लेषण के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि क्षत्रिय महिलाओं को इन्हीं प्रावधानों के तहत सज़ा भुगतनी पड़ती और प्रायश्चित करना पड़ता था। यह धर्म-सूत्र महिलाओं के द्वारा शूद्रों के साथ स्थापित व्यभिचारी संबंधों से जुड़े विधिक प्रावधानों का स्पष्ट और प्रत्यक्ष विवरण देता है परंतु, यह अन्य वर्णों के पुरुषों से जुड़े संबंधों पर अप्रत्यक्ष रूप से उल्लेख करता है। फिर भी, गौतम की तुलना में, यह क्षत्रिय महिलाओं द्वारा ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय पुरुषों के साथ बनाए गए यौन संबंधों से संबंधित कानूनी प्रावधानों को स्पष्ट करता है।

3.3 बौधायन धर्मसूत्र

गौतम और आपस्तंब जैसे धर्मसूत्र लेखकों द्वारा व्यभिचार के संबंध में बताए गए विधिक प्रावधानों के विपरीत, बौधायन अनुष्ठानिक क्रियाओं, शुद्धीकरण और नियंत्रित जीवनशैली पर विशेष महत्त्व दिया। बौधायन धर्मसूत्र (I.2.3.49, I.8.1.31), में शूद्र के साथ यौन संबंध बनाने वाले किसी भी उच्च वर्ण की महिलाओं के लिए 'चंद्र' प्रायश्चित का विधान बताया गया। प्रायश्चित की यह प्रक्रिया पहली पूर्णिमा के अगले दिन शुरू होती थी और मुख्य रूप से व्यक्ति के खान-पान पर केंद्रित होती, जिसमें भोजन के समय और मात्रा, दोनों को नियंत्रित किया जाता था। इसका समापन देवी-देवताओं की पूजा और यज्ञ के साथ होता था। विधिक प्रावधान (I.2.3.48, ध.1.2.39,42-45) के अनुसार अगर कोई महिला किसी भी जाति के पुरुष के साथ व्यभिचार करते हुए पकड़ी जाती, तो उसे 'कृच्छ्र प्रायश्चित' करना पड़ता था, जिसमें पहले दिन उसे केवल सुबह ही भोजन करना था, अगले दिन केवल शाम को। तीसरे दिन उसे बिना मांगे जो कुछ भी मिले, वह खाना होता, और चौथे दिन उसे उपवास रखना होता। प्रायश्चित की इस प्रक्रिया में, उसे सुबह, दोपहर और शाम को स्नान करना पड़ता, फर्श पर सोना पड़ता, केवल एक ही पूरा वस्त्र पहनना होता और अपने नाखून कटे रखने पड़ते थे। यही विधिक प्रावधान (I.2.3.50) उन व्यभिचार महिलाओं के लिए के लिए भी था जो कि वैश्य या उल्टे क्रम के पुरुषों के साथ संलिप्त होती।

पैट्रिक ओलिवेल व्याख्या के अनुसार अगर कोई क्षत्रिय महिला वैश्य पुरुष के साथ व्यभिचार करती थी, तो उसे यह प्रायश्चित करना पड़ता था। सूत्र में अपने से निचले वर्ण तथा प्रतिलोम वर्ण के पुरुषों के साथ यौन संबंधों के बारे में विशिष्ट विधि प्रावधान का वर्णन किया गया पर ऊँचे वर्ण के पुरुषों के प्रसंग में सामान्य समूह के रूप वर्णन किया। बौधायन धर्मसूत्र-गौतम से पृथक है जहां गौतम ने क्षत्रिय वर्ण की महिलाओं को आर्य वर्ण के रूप में वर्गीकृत करके व्यभिचार के विधिक दंडात्मक प्रावधानों का वर्णन किया है, वहीं बौधायन व्यभिचारी कुछ संदर्भों में क्षत्रिय महिलाओं को सामान्य रूप से और अन्य संदर्भों में विशेष रूप से वर्णन किया गया।

3.4 वशिष्ठ धर्मसूत्र

वशिष्ठ ने अपने पूर्ववर्ती धर्मसूत्रकारों की भांति क्षत्रिय महिलाओं को विशिष्ट व्यक्तिगत अथवा वर्णीय श्रेणी के रूप में विधिक मान्यता न देकर उन्हें महिलाओं के सामान्य समूह के अंतर्गत रखा तथा इसमें विस्तार के साथ व्यभिचार के विधिक दंडात्मक प्रावधानों में प्रायश्चित, पति के द्वारा त्याग और अन्य धार्मिक-अनुष्ठान संबंधी प्रतिबंध को शामिल किया जिसमें पति की भूमिका केंद्र में रही। इनमें उनके द्वारा निम्नकोटीकृत जातियों, शूद्रों और निचले वर्ण (क्षत्रिय के संबंध में वैश्य) के पुरुषों के साथ व्यभिचार करने पर प्रायश्चित का स्पष्ट उल्लेख था, लेकिन ऊँचे या समान वर्ण के पुरुषों के साथ ऐसे आचरण के लिए कोई पृथक विधिक प्रावधान नहीं किया गया; वहाँ सामान्य नियमों का ही प्रयोग किया गया।

उल्लेखित है कि कोई भी महिला किसी भी पुरुष के साथ व्यभिचार करती तो इस संबंध में निम्नलिखित तीन विधिक प्रावधान होते। प्रथम (XXI-8), उसे घी से सने वस्त्र धारण करते हुए गोबर के नादी पर या फिर उसे कुशा घास के ऊपर 1 साल तक सोना पड़ता। अंत में, पति द्वारा कुछ अनुष्ठान संपन्न करने के बाद, वह अपनी पत्नी के लिए शुद्धिकरण का मंत्र पढ़ता था, जिससे पत्नी पाप से मुक्त हो जाती। दूसरा (XXI.8), वह अपने पति से संबंधित धार्मिक अनुष्ठानों में भाग नहीं ले सकती थी। कानूनी संदर्भ से अनुमान लगाया जा सकता है कि ये नियम व्यभिचार के अलग-अलग रूपों की प्रकृति और गंभीरता के आधार पर लागू किए जाते थे; हालाँकि, धर्मसूत्र में खुद इनके लागू होने के खास क्रम या सटीक हालात के बारे में साफ़ तौर पर विस्तार से नहीं बताया गया है। अपने से नीचे वर्ण के पुरुष के साथ व्यभिचार करने पर (XXI. 13), महिला को 'कृच्छ्र' प्रायश्चित के बाद एक, दो या तीन 'चंद्र' प्रायश्चित करने के उपरांत उसे इस पाप से मुक्ति का उल्लेख मिलता है। इस प्रावधान के तहत, अगर कोई क्षत्रिय महिला किसी वैश्य पुरुष के साथ ऐसा संबंध बनाती थी, तो वह तो इस निर्धारित प्रायश्चित द्वारा इस पाप से मुक्त हो सकती थी।

व्यभिचार से संबंधित नियमों के दायरे में 'शूद्रों और निचली जातियों' के लिए अलग प्रावधान किए गए थे। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह प्रावधान वैश्य पुरुषों और क्षत्रिय महिलाओं के बीच के संबंधों पर लागू होते होंगे।

शूद्रों के संबंध में वशिष्ठ (XXI.12), का कहना है कि यदि कोई स्त्री किसी शूद्र के साथ यौन संबंध बनाती, तो कुछ प्रायश्चित करने के बाद उसे क्षमा किया जाता; हालाँकि, यदि उस संबंध के परिणामस्वरूप वह गर्भवती हो जाती है, तो उसे क्षमा नहीं किया जाता। इन प्रावधानों से यह स्पष्ट नहीं है कि शूद्र के साथ यौन संबंध बनाने पर किस विशेष प्रायश्चित का पालन करना पड़ता था, और न ही उन्होंने यह बताया कि ऐसे मिलन के परिणामस्वरूप यदि कोई महिला गर्भवती हो जाती है तो परिणाम क्या होता था। दूसरी तरफ वशिष्ठ ने उन व्यभिचारी स्त्री के लिए स्पष्ट दंडों का वर्णन किया जिससे वह किसी पतित या बहिष्कृत पुरुष के साथ सम्बन्ध बनाती (XXI.10), इसके तहत उस स्त्री को पति द्वारा त्याग देने का प्रावधान था। प्रावधानों के परिणामस्वरूप, जो क्षत्रिय महिलाएँ शूद्र या निचली जाति के पुरुषों के साथ संबंध बनाती थीं, उन्हें भी आम सामाजिक समूहों की महिलाओं की तरह ही प्रायश्चित करना पड़ता।

निष्कर्ष

धर्मसूत्रों में क्षत्रिय वर्ण की महिलाओं के लिए व्यभिचार से जुड़ी विभिन्न सज़ाओं और प्रायश्चितों का प्रावधान था। ये प्रावधान उन्हें उच्च वर्ण की महिलाओं या महिलाओं के व्यापक समूह के तौर पर वर्गीकृत करके तय किए गए थे। इसके विपरीत, उनके साथ व्यभिचार करने वाले पुरुषों का ज्यादा विस्तार से वर्णन किया गया जैसे कि ऊंची वर्णीय पुरुष, शूद्र, निम्नकोटीकृत जातीय पुरुष या पुरुष। इसीलिए, क्षत्रिय महिलाओं के व्यभिचारी संबंधों के लिए निर्धारित दंड और प्रायश्चित का विश्लेषण सभी संबंधित संदर्भों में तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर किया गया। विधिक ग्रंथों से ज्ञात होता है कि महिलाओं की स्वतंत्र विधिक पहचान नहीं थी, उसकी पहचान उसके परिवार के पुरुषों से जुड़ी हुई थी। पति द्वारा छोड़ दिया जाना, समाज से बहिष्कृत होना, सार्वजनिक जगह पर जानवरों से मरवाए जाने, शारीरिक अंग भंग जैसी कठोर सज़ा, आध्यात्मिक अनुष्ठान, शारीरिक शुद्धिकरण, उपवास और प्रायश्चित इन सभी सज़ाओं को सहना किसी भी महिला के लिए बहुत कठोर था, ख़ासकर क्षत्रिय महिला जो अपनी पहचान के लिए वह पूरी तरह से अपने परिवार के पुरुषों पर निर्भर थी। नतीजतन, ये सज़ाएँ केवल कानूनी प्रतिबंध नहीं थीं; बल्कि इनका महिलाओं की सामाजिक स्थिति, धार्मिक भागीदारी, पारिवारिक सुरक्षा और सामाजिक अस्तित्व पर भी गहरा प्रभाव पड़ता था।

संदर्भ सूची

1. अल्तेकर, ए. एस. (1987). द पोज़िशन ऑफ वुमेन इन हिन्दू सिविलाइज़ेशन. वाराणसी : द कल्चर पब्लिकेशन हाउस।
2. इन्द्रा, एम. (1940). द स्टेटस ऑफ वुमेन इन एंशिएंट इंडिया. लाहौर : मिनर्वा बुकशॉप।
3. ओलिवेल, पी. (1999). धर्मसूत्र : द लॉ कोड्स ऑफ एंशिएंट इंडिया. न्यूयॉर्क : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. काणे, पी. वी. (1941). हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र (खंड 2). पूना : भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट।
5. गुप्ता, आर. डी. (1930). क्राइम एंड पनिशमेंट इन एंशिएंट इंडिया. कलकत्ता : बुक कंपनी।
6. घोष, बी. के. (1927). आपस्तम्ब और गौतम. इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, 3, 607 611।
7. चक्रवर्ती, उ. (1988, अगस्त). बियॉन्ड द अल्तेकरियन पैराडाइम. सोशल साइंटिस्ट, 16, 44 52।
8. दत्त, आर. सी. (1972). ए हिस्ट्री ऑफ सिविलाइज़ेशन इन एंशिएंट इंडिया. कलकत्ता : सिटी प्रेस।
9. पाल, आर. (1958). हिस्ट्री ऑफ हिन्दू लॉ. कलकत्ता : यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता।
10. बनर्जी, एस. (1980). क्राइम एंड सेक्स इन एंशिएंट इंडिया. कलकत्ता : नया प्रकाश।
11. बनर्जी, एस. सी. (1962). धर्मसूत्र : ए स्टडी इन देयर ओरिजिन एंड डेवलपमेंट. कलकत्ता : पुन्थी पुस्तक।
12. ब्यूहलर, जी. (अनुवादक). (1879-1882). सेक्रेड लॉज़ ऑफ द आर्याज़रू द धर्मसूत्राज़ ऑफ आपस्तम्ब, गौतम, वशिष्ठ एंड बौधायन (खंड 2). ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
13. लिंगाट, आर. (1973). द क्लासिकल लॉ ऑफ इंडिया (जे. डी. डेरेट, अनुवादक). बर्कले : यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

चारुदत्तम् की प्राकृत में प्रयुक्त नामपद

डॉ. अश्विनी कुमार
सहायक प्रोफेसर, अतिथि संकाय, संस्कृत विभाग,
हि. प्र. विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय केन्द्र, धर्मशाला।
ईमेल – ardhimanadi@gmail.com
मोबइल नंबर - 7018401044

भास रचित चारुदत्तम् की प्राकृत में महाराष्ट्री, शौरसेनी तथा मागधी का प्रयोग किया है। अधिकाँश रूप महाराष्ट्री तथा शौरसेनी में प्राकृत में मिलते हैं। मागधी का प्रयोग बहुत कम हुआ है। चारुदत्तम् की प्राकृत में उपलब्ध नामपदों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है - सामान्य नामपद, सर्वनाम पद तथा संख्यावाची नामपद।

चारुदत्तम् की प्राकृत में सामान्य नामपद संज्ञा तथा विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। ये नामपद प्रथमा विभक्ति से सम्बोधन प्रयन्त सभी विभक्तियों में मिलते हैं। चतुर्थी, पञ्चमी और सम्बोधन में बहुवचन का प्रयोग नहीं हुआ है। चतुर्थी विभक्ति के अर्थ में प्रयुक्त नामपदों में षष्ठी विभक्ति के प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है, क्योंकि प्राकृत में चतुर्थी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है।[1]

सामान्य नामपदों में प्राकृत के प्रत्यय से निष्पन्न, वर्ण परिवर्तन एवं वर्ण लोप से निष्पन्न, प्रत्यय लोप से निष्पन्न तथा संस्कृतवत् नामपदों का प्रयोग हुआ है। इन सामान्य नामपदों में प्रथमा विभक्ति में प्राकृत के ई[2], ऊ[3], ए[4], ओ [5] तथा म्[6] प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। प्राकृत में नपुंसकलिंग के अतिरिक्त इकारान्त तथा उकारान्त के परे सु हो तो इकारान्त और उकारान्त दीर्घ हो जाते हैं। ई प्रत्ययान्त रूप महाराष्ट्री, शौरसेनी तथा मागधी तीनों प्राकृतों में उपलब्ध होते हैं। जैसे- अभाइणी[7], मुत्तावली[8], आइदी[9], इत्यादि। ऊ प्रत्ययान्त नामपदों में केवल तीन ही रूप मिलते हैं - हिअअमण्णु[10], पुक्खरपत्तपडिदजलबिन्दू[11] तथा वाशू[12]। ए प्रत्ययान्त सभी रूप मागधी में प्रयुक्त हुए हैं। जैसे - कुन्तीशुदे, दुःशाशले[13], भट्टिपुत्ते[14] इत्यादि। ओ प्रत्ययान्त

1. चतुर्थ्याः षष्ठी, सिद्धहेमशब्दानुशासनम्, 3.131
2. अक्लीबे सौ, वही, 3.19
3. वही
4. अत एत्सौ पुंसि मागध्याम, वही, 4.287
5. अतः सेर्डोः, वही, 3.2
6. क्लीबे स्वरान्म सेः, वही, 3.25
7. चारुदत्तम्, पृ. 43
8. वही, पृ. 96
9. वही, पृ. 110
10. वही, पृ. 42
11. चारुदत्तम्, पृ. 2

रूप महाराष्ट्री, शौरसेनी तथा मागधी तीनों में प्राप्त होते हैं। जैसे अणुक्कोसो[15], अभिसरिदो[16], पादरासो[17], अन्तलिक्खवासो[18] आदि। मू प्रत्ययान्त रूप भी तीनों प्राकृतों में उपलब्ध होते हैं। उदाहरणार्थ आजीविअं[19], अदिसरिसं[20], शलीलं[21] आदि।

चारुदत्तम् की प्राकृत में द्वितीया विभक्ति में प्राकृत के अमू[22] तथा णि[23] प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। ये रूप महाराष्ट्री, शौरसेनी तथा मागधी में प्राप्त होते हैं। जैसे अम् प्रत्ययान्त में अत्ताणं[24], ओदणभरं[25], मण्डिदं[26] इत्यादि। णि प्रत्ययान्त रूपों में गुणाणि[27], सोभणाणि[28], गिहदेवदाणि[29] इत्यादि।

तृतीया विभक्ति में प्राकृत के ए[30], ण[31], हि[32] तथा हिं[33] प्रत्ययों से निष्पन्न रूपों का प्रयोग हुआ है। ये रूप तीनों प्राकृतों में मिलते हैं। उदाहरणार्थ ए प्रत्ययान्त रूपों में अय्याए[34], जादीए[35], भीदीए[36], इत्यादि। ण प्रत्ययान्त रूपों में अभिजणेण[37], आअदेण[38], वादेण[39] आदि। हि प्रत्ययान्त रूपों में असूहि[40], पारावदेहि[41], णाशापुडेहि[42] आदि। हिं प्रत्ययान्त रूपों में केवल तीन

---

12. वही, पृ. 36
13. चारुदत्तम्, पृ. 21
14. वही, पृ. 26
15. वही, पृ. 98
16. वही, पृ. 56
17. वही, पृ. 3
18. वही, पृ. 9
19. वही, पृ 60
20. वही, पृ. 104
21. वही, पृ. 18
22. अमः, प्राकृतव्याकरणवृत्ति, 2.2.2
23. अमोस्य, सिद्धहेमशब्दानुशासनम्, 3.5
24. चारुदत्तम्, पृ. 26
25. वही, पृ. 9
26. वही, पृ. 52
27. वही, पृ. 122
28. वही, पृ. 3
29. वही, पृ. 9
30. टा ङस्-ङेरदादिदेद्वा तु ङसेः, सिद्धहेमशब्दानुशासनम्, 3.29
31. टा-आमोर्णः, वही, 3.6
32. भिसो हि हिँ हिं, वही, 3.7 33. वही
34. चारुदत्तम्, पृ. 66
35. वही, पृ. 86
36. वही, पृ. 90
37. वही, पृ. 28
38. वही, पृ. 122
39. वही, पृ. 34
40. वही, पृ. 100
41. वही, पृ. 9 42. वही, पृ. 35

रूप प्राप्त होते हैं, जिनमें से दो महाराष्ट्री में और एक मागधी में है। ये रूप हैं - गुणेहिं[43], चोरेहिं[44], अन्धआलपूलिदेहिं[45]।

प्राकृत में चतुर्थी विभक्ति नहीं होती है। इसके स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है।[46] चारुदत्तम् में चतुर्थी विभक्ति में प्राकृत के ए[47] तथा स्स[48] प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। इनसे युक्त रूप केवल महाराष्ट्री और मागधी में प्राप्त होते हैं। ए प्रत्ययान्त से निष्पन्न केवल दो रूप प्राप्त होते हैं जिनमें से एक महाराष्ट्री में है और एक मागधी में। ये रूप हैं - अज्जुआए[49] तथा दाशीए[50]। स्स प्रत्ययान्त भी केवल तीन रूप मिलते हैं जो महाराष्ट्री में हैं। ये हैं - गणिआपरिआरअस्स[51], चारुदत्तस्स[52] तथा जणस्स[53]।

चारुदत्तम् की प्राकृत में पञ्चमी विभक्ति में केवल एकवचन का ही प्रयोग हुआ है। इसमें प्राकृत के 'दो'[54] प्रत्यय से निष्पन्न रूप प्राप्त हुए हैं। जैसे गिहादो[55], पमादादो[56], वअणादो[57] इत्यादि। षष्ठी विभक्ति में प्राकृत के ए[58], स्स[59] तथा णं[60] प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। ये रूप महाराष्ट्री, शौरसेनी तथा मागधी में प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ ए प्रत्ययान्त रूपों में अय्याए[61], मुत्तावलीए[62], दाशीए[63] आदि। स्स प्रत्ययान्त रूपों में अम्बस्स[64], अन्धआरुप्पादिदस्स[65], गेहश्श[66] इत्यादि। णं प्रत्ययान्त केवल तीन ही रूप प्राप्त होते हैं जो महाराष्ट्री में हैं। ये रूप हैं - अत्थाणं[67], आअन्तुआणं[68] तथा गुणाणं[69]।

---

43. वही, पृ. 62
44. वही, पृ. 80
45. वही, पृ. 35
46. चतुर्थ्याः षष्ठी, सिद्धहेमशब्दानुशासनम्, 3.131
47. टा ङस्-ङेरदादिदेद्वा तु ङसेः, वही, 3.29
48. ङसः स्सः, वही, 3.10
49. चारुदत्तम्, पृ. 115-16
50. वही, पृ. 41
51. वही, पृ. 80
52. वही, पृ. 122
53. वही, पृ. 96
54. जस्-शस्-ङसि-त्तो-दो-द्वामि दीर्घः, सिद्धहेमशब्दानुशासनम्, 3.12
55. चारुदत्तम्, पृ. 16
56. वही, पृ. 98
57. वही, पृ. 115
58. टा ङस्-ङेरदादिदेद्वा तु ङसेः, सिद्धहेमशब्दानुशासनम्, 3.29
59. ङसः स्सः, वही, 3.10
60. टा-आमोर्णः, वही, 3.6
61. चारुदत्तम्, पृ. 5
62. वही, पृ. 99
63. वही, पृ. 36
64. वही, पृ. 9
65. वही, पृ. 96
66. वही, पृ. 29
67. वही, पृ. 86
68. वही, पृ. 60
69. वही, पृ. 61

सप्तमी विभक्ति में प्राकृत के ए[70] तथा सु[71] प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। इनसे युक्त रूप महाराष्ट्री, शौरसेनी तथा मागधी तीनों में प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ ए प्रत्ययान्त में अणद्धाए[72], जूदे[73], अन्तलावणे[74] आदि। सु प्रत्ययान्त रूपों में राअमग्गेसु[75], सुहोदेसु[76], केशेशु[77] आदि। इनके अतिरिक्त एक ऐसा रूप भी प्रयुक्त हुआ है जिसमें मूर्धन्य ष का प्रयोग हुआ है। यह रूप है - पादेषु[78]। सम्बोधन में केवल ए[79] प्रत्यय का प्रयोग एकवचन तथा बहुवचन के रूपों में हुआ है। इससे युक्त रूप तीनों प्राकृतों में उपलब्ध होते हैं। उदाहरणार्थ चउरिए[80], अविणीदे[81], वशञ्चशेणिए[82] इत्यादि।

वर्ण परिवर्तन एवं वर्ण लोप से निष्पन्न रूपों का प्रयोग प्रथमा, तृतीया तथा चतुर्थी विभक्ति में हुआ है। प्रत्यय लोप से निष्पन्न रूप प्रथमा विभक्ति, पञ्चमी विभक्ति और सम्बोधन में प्राप्त होते हैं। संस्कृतवत् रूपों का प्रयोग प्रथमा, द्वितीया, तृतीया और सप्तमी विभक्ति में हुआ है। मागधी प्राकृत में अकारान्त पुलिंग प्रथमा एकवचन में ए प्रत्यय का प्रयोग होता है, परन्तु भास ने चारुदत्तम् की प्राकृत में मागधी में अकारान्त पुलिंग प्रथमा एकवचन में भी कुछ स्थलों पर ओ प्रत्ययान्त रूपों का प्रयोग किया है जो महाराष्ट्री के अनुसार है। यह भास का स्वतन्त्र प्रयोग है। चतुर्थी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग प्राकृत व्याकरणानुसार ही हुआ है। द्वितीया विभक्ति में कुछ रूप सप्तमी के अर्थ में तथा सप्तमी विभक्ति में कुछ रूप तृतीया विभक्ति के अर्थ में भी प्रयुक्त हुए हैं, जो प्राकृत व्याकरणानुसार ही हैं।

चारुदत्तम् की प्राकृत में सर्वनाम रूपों में प्राकृत के प्रत्यय से निष्पन्न, आदेश युक्त, वर्ण परिवर्तन एवं वर्ण लोप से निष्पन्न, प्रत्यय लोप से निष्पन्न तथा संस्कृतवत् रूपों का प्रयोग हुआ है। इन सर्वनाम रूपों में प्रथमा विभक्ति में प्राकृत के ई, ए, ओ तथा मु, द्वितीया विभक्ति में अमु, तृतीया विभक्ति में इणा, ए तथा ण, चतुर्थी विभक्ति में ए तथा स्स, पञ्चमी विभक्ति में दो, षष्ठी विभक्ति में ए तथा स्स और सप्तमी विभक्ति में स्सि एवं हि प्रत्ययों का प्रयोग एकवचन तथा बहुवचन के रूपों में हुआ है। बहुवचन में प्राकृत के प्रत्यय से निष्पन्न रूप केवल प्रथमा में ही प्राप्त होते हैं। आदेश युक्त रूप प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी तथा षष्ठी विभक्ति में प्राप्त होते हैं। वर्ण परिवर्तन और वर्ण लोप से निष्पन्न रूप प्रथमा तथा तृतीया विभक्ति में प्राप्त होते हैं। प्रत्यय लोप से निष्पन्न रूप प्रथमा विभक्ति में ही प्राप्त होते हैं। संस्कृतवत् रूप प्रथमा, द्वितीया और षष्ठी में प्राप्त होते हैं। द्वितीया विभक्ति में दो रूप सप्तमी के अर्थ में तथा षष्ठी विभक्ति में एक रूप पञ्चमी के अर्थ में भी आया है।

चारुदत्तम् की प्राकृत में संख्यावाची नामपद प्रथमा, द्वितीया और सप्तमी में प्राप्त होते हैं। इन सभी में प्राकृत के प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है।

---

70. ङे म्मि ङेः, सिद्धहेमशब्दानुशासनम्, 3.11
71. सुपः सु, प्राकृतप्रकाशः, 5.10
72. चारुदत्तम्, पृ. 48
73. वही, पृ. 118
74. वही, पृ. 4
75. वही, पृ. 68
76. वही, पृ. 78
77. वही, पृ. 36
78. वही, पृ. 78
79. वाप ए, सिद्धहेमशब्दानुशासनम्, 3.41
80. चारुदत्तम्, पृ. 123
81. वही, पृ. 105
82. वही, पृ. 24

सन्दर्भ ग्रन्थ -

1. चारुदत्तम्, भास, व्याख्याकार श्री कपिलदेव गिरि, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी-1, द्वितीय संस्करण, 1996.
2. प्राकृतप्रकाशः, वररुचि, व्याख्याकार डॉ. श्रीकान्त पाण्डेय, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ-2, प्रथम संस्करण, 1981.
3. प्राकृतव्याकरणवृत्ति, त्रिविक्रमदेव, श्री जगन्नाथ शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, वि. सं. 2007.
4. सिद्धहेमशब्दानुशासनम्, हेमचन्द्र, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2011.

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

नई शिक्षा नीति (NEP) के परिवर्तनकारी प्रभाव पर प्रेमचंद के साहित्य की प्रासंगिकता

डॉ. रूमा साह
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
द्वाराहाट, (अल्मोड़ा)

नई शिक्षा नीति ने पाठ्यक्रम में कई बड़े-बड़े बदलाव किये है। इस नीति ने केवल पाठ्यक्रम को ही नहीं बदला अपितु सोच भी बदली है खेल-खेल में सीखना, रट्टा प्रणाली से छुटकारा रटो मत, सीखो- समझो फिर आगे बढ़ो वाली प्रणाली को केंद्र बिंदु बनाया है वैसे भी कहा जाता है कि ''रटन्त विद्या फलन्त नाही''। कक्षा 5 तक मातृभाषा की पढ़ाई पर जोर दिया गया। भले ही अंग्रेजी का प्रभाव कभी कम नहीं हो सकता क्योंकि वर्तमान में ये समय की तीव्र मांग है फिर भी इसका बोझ कम हुआ है। कौशल विकास की योजना के तहत बच्चा हुनरमंद बन रहा है। अपनी संस्कृति, मूल्यों, नैतिकता से दूर हो रहा बच्चा value added course द्वारा अपने संस्कारों को पहचानते हुए उससे जुड़ रहा है। ये भी याद रहे कि हमें technology द्वारा उन्नति के पथ पर अग्रसर तो होना है पर अपनी जड़ों से भी नहीं उखड़ना है अपनी सभ्यता व संस्कृति को सुरक्षित रखना है।

परिवर्तनकारी प्रभाव

- रटन्त प्रणाली को कम कर गुढवत्तापूर्ण शिक्षा प्रणाली पर जोर।
- लचीलेपन के साथ विषय चुनने की आजादी हिन्दी के साथ वाणिज्य, गढ़ित के साथ संगीत, विज्ञान के साथ कला विषय। छात्र अपनी पसंदानुसार, अपनी क्षमतानुसार किसी भी विषय का चयन कर सकता है।
- तनावमुक्त शिक्षा के तहत पहले यदि बच्चा फेल तो फेल उसका साल बर्बाद और कोई विकल्प ही नहीं था पर अब बच्चे को फेल होने के बाद पुनः परीक्षा देने की आजादी उसे मानसिक तनाव से मुक्त करती है।
- अंग्रेजी भाषा का दबाव कम।
- डिजिटल तथा सनातन ज्ञान परंपरा संबंधित शिक्षा साथ-साथ।
- रचनात्मकता का विकास ताकि बच्चा अगर पढ़ाई करके भी कुछ न कर पाए तो कम से कम सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, बढ़ईगिरी, कलात्मकता, लघु तथा कुटीर उद्योग इत्यादि द्वारा अपने कौशल विकास (skill) का प्रदर्शन कर अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा तथा रोजगार के समान अवसर।
- अनुभवात्मक शिक्षा क्योंकि "अनुभव ही जगत का सर्वश्रेष्ठ शिक्षक है।" जो ज्ञान हम स्वयं अनुभव द्वारा प्राप्त करते है। वो सुनकर या पढ़कर नहीं मिलता।

- निर्धन चाहे धनवान प्रत्येक वर्ग तक शिक्षा की पहुँच तथा वहनीयता।

अब प्रश्न ये उठता है कि नई शिक्षा नीति पर प्रेमचन्द का साहित्य किस प्रकार सटीक बैठता है और उसकी प्रासंगिकता किस प्रकार सिद्ध होती है। हमनें बात करी NEP में मातृभाषा, रट्टा प्रणाली, समानता, नैतिकता, निर्धनता, आत्मनिर्भरता, सामाजिकता, बाल मनोविज्ञान, कौशल विकास, मूल्य आधारित, तनाव मुक्त व दबाव रहित शिक्षा की। ये सभी बातें प्रेमचंद जी के उपन्यासों व कहानियों में बोलती है। उन्होंने 1918 सेवासदन से लेकर 1936 गोदान तक अपने साहित्य के माध्यम से उक्त नीति में आने वाले प्रभाव की बात को अपने युग में ही झलका दिया, स्पष्ट कर दिया जो आज भी प्रासंगिक है। इन्होंने साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन नहीं माना अपितु सामाजिक परिवर्तन का क्षेत्र भी माना। अपने साहित्य में गरीबी, शोषण, उलाहना, प्रताड़ना, भ्रष्टाचार शारीरिक- मानसिक उत्पीड़न, दहेज प्रथा, बाल विवाह, बेरोजगारी, आत्महत्या, नारी की असहाय व दयनीय स्थिति, तनाव पूर्ण जीवन, किसान- मजदूर का दर्द, नैतिक मूल्यों का पतन, वर्गभेद आदि ज्वलंत समस्याओं का चित्रण वर्षों पहले ही कर दिया था। तब, जब न कोई लिखने-पढ़ने के साधन थे न कोई सुविधा, न डिजिटल दौर। इन्हीं भीषण समस्याओं से आज मनुष्य प्रत्यक्ष- अप्रत्यक्ष रूप से गुजर रहा है और उस युग से कहीं ज्यादा। यदि प्रेमचंद आज इस डिजिटल युग में होते तो यू ट्यूब, इंस्टा, फेसबुक, वेब-सिरीज, फिल्मों इत्यादि में अपनी, महान, लेखनी, उत्कृष्ट विचारों, गंभीरता, सटीक उदाहरणों, चिंतन द्वारा कहानी ईदगाह के हामिद का अपनी दादी के लिये मेले से चिमटा लाकर उनके प्रति प्रेम व समर्पण का भाव दिखाकर आज के बच्चों में संस्कार, संवेदना, धैर्य व नैतिकता का भाव भर देते जिसकी वर्तमान पीढ़ी को सख्त जरूरत है। NEP भी अपने मूल्य संवर्धन पाठ्यक्रम (VAC) द्वारा बच्चों में संस्कारों तथा नैतिकता का विकास करना चाहता है। भाषा के क्षेत्र में प्रेमचंद ने अपनी लेखनी सीधी व सरल चलाई उन्होंने हल्कू , धनिया, होरी, सहना, जबरा, हीरा-मोती, झूरी, काछी, जोखू, गंगी आदि ग्रामीण पुट युक्त सीधी सरल, आम जन की भाषा को अपने साहित्य का आधार बनाया। ईदगाह, दो बैलों की कथा जैसी कहानियां कोई भी बच्चा पढ़ लेता है।" राष्ट्रभाषा के लिए प्रेमचंद ने समन्वयवादी दृष्टिकोण ही अपनाया, जिसका ज्वलंत प्रमाण उनका साहित्य है।"[1] नई शिक्षा नीति भी मातृभाषा के प्रयोग पर बल दे रही है। तथा आज रट्टा प्रणाली व तनावपूर्ण शिक्षा के विरोध में है पर प्रेमचंद ने उस युग में ही इस बात का विरोध अपनी कहानी बड़े भाई साहब में कर दिया था। बड़े भाई साहब बहुत मेहनती, अनुशासनप्रिय थे पर शिक्षा को लेकर हमेशा तनाव में रहते थे और मेहनत करके भी फेल हो जाते वहीं दूसरी तरफ उनका छोटा भाई पढ़ाई में मन न लगाते खेलकूद व अन्य गतिविधियों करता भी परीक्षा में प्रथम आता दोनों ही क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करता NEP चवसपबल को वर्षों पहले ही सार्थक कर जाता है। गोदान की धनिया बच्चों को स्वाभिमान से जीना सिखाती है। "धनिया इतनी स्वाभिमानी थी। उसका विचार था कि हमने जमींदार के खेत जोते हैं, तो वह अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलाएं।"[2] नई शिक्षा नीति तरह- तरह के skill पाठ्यक्रम इसीलिए संचालित कर रही है ताकि रोजगार न होने पर भी आज की पीढ़ी को किसी के आगे गिड़गिड़ाना न पड़े पुरुष तो पुरुष खास रूप से महिलाएं जिनका पढ़ी -लिखी तथा सक्षम न होने पर कभी-कभी उनकी मान- मर्यादा भी आहत हो जाती है। skill development द्वारा वो कम से कम अपने जीने का साधन जुटा सकती है।

NEP अपने AEC/SEC पाठ्यक्रम द्वारा बच्चों में कौशल क्षमता का विकास कर उन्हें अपने पैरों में खड़ा कर रोजगार व स्वरोजगार की तरफ बढ़ावा दे रहा है ताकि वे अपना तथा अपने परिवार का जीवन-यापन कर सके। लेकिन केवल NEP की ही पहल काफी नहीं अपितु जन-मानस को भी इस हेतु कर्मठ व अग्रसर होना होगा नहीं तो प्रेमचंद की कहानी कफ़न के माधव व घीसू की अकर्मण्यता, कामचोरी उनकी निर्धनता का एक कारण बन जायेगी। जब पत्नी के लिये कफ़न के पैसे एकत्र हो जाने पर भी माधव उसे बुरे व्यसनों में उड़ा देता है ये कहानी वर्तमान का आईना है। नई शिक्षा नीति डिग्री से ज्यादा कौशल विकास, नैतिकता से संबंधित पाठ्यक्रम पर बल दे रही है। ये बात प्रेमचंद ने बहुत पहले अपने उपन्यास कर्मभूमि के नायक अमरकांत द्वारा डिग्री से ज्यादा शिक्षा व नैतिकता के महत्व को बताते हुए कह दी थी "जीवन को सफल बनाने के लिए शिक्षा की जरूरत है, डिग्री की नहीं। हमारी डिग्री है—हमारा सेवा भाव, हमारी नम्रता, हमारे जीवन की सरलता।

अगर यह डिग्री नहीं मिली, अगर हमारी आत्मा जागृत नहीं हुई, काग़ज़ की डिग्री व्यर्थ है।"[3] यह शिक्षा नीति सभी को समान अवसर प्रदान करती है। रंगभूमि का नायक नेत्रहीन होने के बाद भी छात्रों को यही ज्ञान देता है कि शारीरिक असमानता कमजोरी नहीं बन सकती। सेवासदन उपन्यास के माध्यम से प्रेमचन्द ने महिलाओं की गहन विवशता का जो मार्मिक चित्रण उस समय के परिवेश में कर दिया था वो आज भी साक्षरता, आत्मनिर्भरता के अभाव में लड़कियां जूझ रही है चाहे वो निर्धन हो या धनवान "उपन्यास की यही वास्तविक समस्या है लड़कियों को कुएं में धकेलना और सतीत्व और पतिव्रत धर्म के गीत गाना"[4] निर्मला, प्रतिज्ञा, प्रेमाश्रम में भी उन्होंने नारी के हृदयविदारक पहलुओं पर लेखनी चलाई। वैसे भी जमाना चाहे कितना भी क्यों न बदल जाए लेकिन महिलाओं के लिए नियम कभी नहीं बदलते। गबन "इस पुस्तक में प्रेमचंद ने पहली नारी समस्या को व्यापक भारतीय परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा है और उसे तत्कालीन भारतीय स्वाधीनता आंदोलन से जोड़कर देखा है।"[5]

वर्तमान में तमाम skill courses की बात कही जा रही है ये skill तो हमने बहुत पहले इनकी कहानी पूस की रात में दृश्य बिम्ब के माध्यम से देख ली थी जब गरीबी से जूझता हल्कू आवारा पशुओं से अपने खेत की रखवाली करता कंपकंपाती ठंड से बचने के लिए अपने कुत्ते जबरा को गोद में चिपटाए पूस की ठंडी रात में अपना बचाव करता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पाठ्यक्रम में NEP जो परिवर्तनकारी प्रभाव लाया है वो वास्तव में प्रशंसनीय है। और इन प्रभावों की बात हमें महान साहित्यकार प्रेमचंद जी ने अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से वर्षों पहले कह दी थी, पाठकों के समक्ष रख दी। जो आज भी प्रासंगिक है मतलब जो परिस्थितियां वर्षों पहले उस युग में थी वो ही वर्तमान परिवेश में भी है। प्रेमचन्द की गूँज हमेशा रहेगी। इनका युग जागृति का युग था जिसकी वर्तमान परिवेश में सख्त आवश्यकता है। अपने देश, समाज को बचाने उसके उत्थान हेतु हमे NEP के साथ-साथ हर युवा में प्रेमचंद जी के महान विचारों व सोच की ही जरूरत है। तभी नई शिक्षा नीति की सार्थकता है।

संदर्भ

1. प्रेमचंद के उपन्यास, डॉ. श्रीनारायण भारद्वाज, गिरना प्रकाशन, महेसाना, पिलाजी गंज (उ. गुजरात), पृष्ठ-102
2. गोदान, मुंशी प्रेमचंद, ज्ञानदीप प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-05
3. कर्म भूमि, मुंशी प्रेमचंद, ज्ञानदीप प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ - 88
4. प्रेमचंद के उपन्यास, डॉ. श्रीनारायण भारद्वाज, गिरनार प्रकाशन, पिलाजी गंज, महेसाना (उ. गुजरात), पृष्ठ- 10
5. गबन, प्रेमचंद, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, पृष्ठ- भूमिका से।

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

वैश्वीकरण का दलित जीवन पर प्रभाव : उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में

स्नेहा
शोधार्थी,
गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान,
प्रयागराज

सारांश

वैश्वीकरण ने भारत के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। 1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण और वैश्विक बाजार के विस्तार ने रोजगार, शिक्षा, उपभोग, संचार, नगरीकरण तथा सामाजिक संबंधों के स्वरूप को प्रभावित किया। इन परिवर्तनों का प्रभाव दलित समुदाय पर विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि दलितों का ऐतिहासिक अनुभव जाति-आधारित असमानता, सामाजिक बहिष्कार और सीमित आर्थिक अवसरों से जुड़ा रहा है। उत्तर प्रदेश में यह प्रश्न और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि राज्य में अनुसूचित जातियों की बड़ी आबादी तथा ग्रामीण सामाजिक संरचना में जाति की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह शोध-पत्र वैश्वीकरण के दलित जीवन पर पड़ने वाले आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, व्यावसायिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रभावों का विश्लेषण करता है।

प्रस्तावना

वैश्वीकरण समकालीन विश्व की एक महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक प्रक्रिया है। इसके अंतर्गत वस्तुओं, पूंजी, तकनीक, सूचना, सेवाओं और विचारों का राष्ट्रीय सीमाओं के पार तेजी से प्रवाह बढ़ा है। भारत में 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद बाजार-आधारित अर्थव्यवस्था को अधिक महत्व दिया गया। निजी क्षेत्र का विस्तार, विदेशी निवेश, सूचना-प्रौद्योगिकी, संचार क्रांति और सेवा क्षेत्र की वृद्धि इस परिवर्तन की प्रमुख विशेषताएँ रही हैं। वैश्वीकरण का प्रभाव समाज के सभी वर्गों पर समान नहीं पड़ा। जिन समुदायों के पास शिक्षा, भूमि, पूंजी, तकनीकी ज्ञान और सामाजिक नेटवर्क पहले से उपलब्ध थे, वे नए आर्थिक अवसरों का अपेक्षाकृत अधिक लाभ उठा सके। इसके विपरीत, ऐतिहासिक रूप से वंचित समुदायों के सामने अवसरों तक पहुँच की समस्या बनी रही। दलित समुदाय के संदर्भ में यह प्रश्न इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि जाति व्यवस्था ने लंबे समय तक उनके व्यवसाय, शिक्षा, सामाजिक संबंधों और संसाधनों तक पहुँच को सीमित किया।

उत्तर प्रदेश इस अध्ययन के लिए विशेष महत्व रखता है। राज्य में दलित आबादी ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में फैली हुई है तथा इसके भीतर भी सामाजिक और आर्थिक विविधता मौजूद है। वैश्वीकरण के संदर्भ में यह मान लेना उचित नहीं है कि बाजार के विस्तार से जाति समाप्त हो जाएगी। अश्विनी देशपांडे ने आधुनिक शहरी और औपचारिक श्रम बाजारों में भी जातिगत असमानता और भेदभाव की निरंतरता की ओर ध्यान आकर्षित किया है। इसी प्रकार कप्पुर, प्रसाद, प्रिचेट

और श्याम बाबू के उत्तर प्रदेश के दलित परिवारों पर किए गए अध्ययन ने 1990 और बाद के समय में दलितों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में आए परिवर्तनों को समझने का प्रयास किया।

वैश्वीकरण और दलित प्रश्न

भारतीय समाज में जाति केवल सामाजिक पहचान नहीं रही है, बल्कि यह आर्थिक अवसरों के वितरण से भी जुड़ी रही है। परंपरागत जाति व्यवस्था में अनेक दलित समुदायों को ऐसे व्यवसायों में सीमित रखा गया जिन्हें सामाजिक रूप से निम्न माना जाता था। शिक्षा और संपत्ति के अवसर भी असमान थे। परिणामस्वरूप सामाजिक स्थिति और आर्थिक स्थिति एक-दूसरे से गहराई से जुड़ी रहीं। वैश्वीकरण ने इस व्यवस्था के कुछ पुराने स्वरूपों को चुनौती दी। बाजार ने व्यक्ति की आर्थिक भूमिका को उसकी पारंपरिक जाति से अलग करने की संभावना पैदा की। उदाहरण के लिए, सेवा क्षेत्र, निर्माण कार्य, परिवहन, छोटे व्यवसाय, निजी संस्थानों और प्रवासी रोजगार में प्रवेश ने अनेक दलित युवाओं को पारंपरिक व्यवसायों से बाहर आने का अवसर दिया। लेकिन इसका दूसरा पक्ष भी है। बाजार में प्रतिस्पर्धा बढ़ने के साथ शिक्षा, कौशल और पूंजी का महत्व बढ़ गया। जिन परिवारों के पास इन संसाधनों की कमी थी, वे नए अवसरों में पीछे रह गए। इसलिए वैश्वीकरण ने अवसरों का विस्तार तो किया, लेकिन अवसरों तक समान पहुँच सुनिश्चित नहीं की।

आर्थिक जीवन पर प्रभाव

वैश्वीकरण का दलित जीवन पर सबसे स्पष्ट प्रभाव रोजगार और आय के क्षेत्र में दिखाई देता है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि मजदूरी, पारंपरिक कारीगरी और जाति-आधारित व्यवसायों पर निर्भरता में परिवर्तन आया। अनेक दलित परिवारों ने गैर-कृषि रोजगार, निर्माण क्षेत्र, परिवहन, छोटे व्यापार और शहरी असंगठित क्षेत्र की ओर रुख किया। इस परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण परिणाम व्यावसायिक गतिशीलता रहा है। नई पीढ़ी का एक हिस्सा पारंपरिक जाति-आधारित व्यवसायों से बाहर निकलकर सरकारी, निजी या स्वरोजगार के क्षेत्र में प्रवेश करने लगा। मोबाइल फोन, इंटरनेट और डिजिटल बैंकिंग जैसी तकनीकों ने आर्थिक गतिविधियों की संभावनाओं को और विस्तृत किया है।फिर भी आर्थिक गतिशीलता को व्यापक सामाजिक समानता के रूप में देखना उचित नहीं होगा। दलित श्रमिकों का एक बड़ा हिस्सा अभी भी अनौपचारिक और असुरक्षित रोजगार में केंद्रित है। इसके अलावा निजी क्षेत्र में रोजगार प्राप्त करने के लिए उच्च शिक्षा और तकनीकी कौशल की आवश्यकता होती है, जिन तक सभी दलित परिवारों की समान पहुँच नहीं है।कप्पुर और उनके सहलेखकों का अध्ययन इस बात की ओर संकेत करता है कि केवल उपभोग या आय में परिवर्तन को देखकर दलितों की स्थिति का मूल्यांकन करना पर्याप्त नहीं है; सामाजिक रूप से संरचित असमानताओं में हुए परिवर्तन को भी समझना आवश्यक है।

रोजगार और श्रम बाजार में परिवर्तन

वैश्वीकरण के बाद निजी क्षेत्र और सेवा क्षेत्र के विस्तार ने रोजगार की नई संभावनाएँ पैदा कीं। शिक्षा प्राप्त दलित युवाओं के लिए बैंकिंग, शिक्षा, स्वास्थ्य, सूचना-प्रौद्योगिकी, निजी कंपनियों और अन्य सेवाओं में प्रवेश के अवसर बढ़े। परंतु निजी क्षेत्र को केवल योग्यता आधारित और जाति-मुक्त क्षेत्र मानना सही नहीं है। देशपांडे के अध्ययन के अनुसार आधुनिक शहरी श्रम बाजारों में भी जाति, धर्म, वर्ग और लिंग की सामाजिक पहचानें रोजगार और आय के परिणामों को प्रभावित कर सकती हैं। इसका अर्थ यह है कि वैश्वीकरण ने जाति को समाप्त करने के बजाय कई परिस्थितियों में उसके स्वरूप को बदल दिया है। पहले जातिगत भेदभाव प्रत्यक्ष सामाजिक संबंधों में दिखाई देता था, आधुनिक रोजगार बाजार में वही असमानता भर्ती, नेटवर्क, सामाजिक पूंजी और अवसरों तक पहुँच के माध्यम से अधिक अप्रत्यक्ष रूप ले चुकी है।

शिक्षा पर प्रभाव

दलितों की सामाजिक गतिशीलता में शिक्षा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। वैश्वीकरण के दौर में शिक्षा केवल

सामाजिक प्रतिष्ठा का माध्यम नहीं रही, बल्कि रोजगार और आर्थिक प्रतिस्पर्धा की आवश्यकता भी बन गई है। सरकारी विद्यालयों, छात्रवृत्ति, आरक्षण, उच्च शिक्षा के विस्तार और तकनीकी शिक्षा के अवसरों ने दलित युवाओं के लिए नए रास्ते खोले। उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाली दलित पीढ़ी ने पारंपरिक व्यवसायों से अलग पेशे अपनाने की संभावनाएँ विकसित कीं। इसके बावजूद गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच में असमानता बनी हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालयों की गुणवत्ता, डिजिटल संसाधनों की कमी, आर्थिक कठिनाइयाँ और परिवार की सामाजिक परिस्थितियाँ उच्च शिक्षा में प्रवेश को प्रभावित करती हैं। इसलिए वैश्वीकरण से उत्पन्न ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था में शिक्षा की बढ़ती महत्ता एक ओर अवसर है, तो दूसरी ओर नई असमानताओं का स्रोत भी है।

नगरीकरण और प्रवास

वैश्वीकरण ने नगरीकरण और ग्रामीण-शहरी प्रवास को गति दी। उत्तर प्रदेश के अनेक ग्रामीण परिवारों के सदस्य रोजगार के लिए दिल्ली, मुंबई, लखनऊ, नोएडा, कानपुर, प्रयागराज और अन्य शहरों की ओर जाते हैं। शहरों में रहने से दलित व्यक्तियों को अपेक्षाकृत विविध सामाजिक संपर्क और रोजगार के अवसर प्राप्त हो रहे हैं। शहरों में व्यक्ति की पहचान केवल जाति तक सीमित न रहकर शिक्षा, पेशा और आय से भी जुड़ने लगती है। लेकिन शहरी जीवन जाति से पूरी तरह मुक्त नहीं है। आवास, रोजगार, सामाजिक नेटवर्क और विवाह जैसे क्षेत्रों में जाति की भूमिका बनी हुई है। इसलिए नगरीकरण ने जाति की दृश्यता को कुछ परिस्थितियों में कम किया है, लेकिन जातिगत असमानता को समाप्त नहीं किया।

सामाजिक जीवन और सामाजिक संबंध

वैश्वीकरण के कारण दलित जीवन में उपभोग की आदतों, पहनावे, आवास, संचार और सामाजिक संपर्कों में परिवर्तन देखा जा सकता है। मोबाइल फोन और सोशल मीडिया ने दलित समुदाय को अपने विचार व्यक्त करने और व्यापक समाज से जुड़ने के नए माध्यम दिए हैं। दलित युवाओं में आत्मसम्मान, अधिकार और सामाजिक समानता को लेकर जागरूकता बढ़ी है। डॉ. भीमराव आंबेडकर की विचारधारा और दलित साहित्य, सामाजिक मीडिया तथा संगठनों के माध्यम से सामाजिक चेतना के नए रूप विकसित हुए हैं। यह परिवर्तन महत्वपूर्ण है क्योंकि सामाजिक गतिशीलता केवल आय बढ़ने का नाम नहीं है। यदि कोई व्यक्ति आर्थिक रूप से बेहतर स्थिति में पहुँचता है, लेकिन सामाजिक अपमान और भेदभाव जारी रहता है, तो उसकी वास्तविक सामाजिक गतिशीलता अधूरी मानी जाएगी।

राजनीतिक प्रभाव

उत्तर प्रदेश में दलित राजनीति ने वैश्वीकरण के दौर में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बहुजन समाज पार्टी और दलित आंदोलन ने दलित पहचान, सम्मान और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के मुद्दों को प्रमुखता दी। सुधा पाई ने उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी के उदय को दलित राजनीतिक चेतना और सामाजिक दावे की व्यापक प्रक्रिया से जोड़कर समझाया है। वैश्वीकरण के दौर में दलित राजनीति का स्वरूप केवल आरक्षण या सरकारी नौकरियों तक सीमित नहीं रहा। शिक्षा, निजी क्षेत्र में प्रतिनिधित्व, भूमि, रोजगार, सामाजिक सम्मान और मानवाधिकार भी महत्वपूर्ण मुद्दे बने। इस प्रकार आर्थिक परिवर्तन और राजनीतिक चेतना के बीच एक संबंध विकसित हुआ। आर्थिक अवसरों के विस्तार ने दलितों के एक हिस्से में नए मध्यवर्ग के निर्माण की संभावना पैदा की, जिसने सामाजिक और राजनीतिक दावेदारी को मजबूत किया।

उपभोग और जीवन-शैली में परिवर्तन

वैश्वीकरण ने दलित परिवारों की उपभोग संस्कृति को भी प्रभावित किया है। मोबाइल फोन, मोटरसाइकिल, आधुनिक कपड़े, पक्के मकान, टेलीविजन, निजी शिक्षा और आधुनिक घरेलू उपकरणों का उपयोग बढ़ा है। उपभोग में यह परिवर्तन

सामाजिक प्रतिष्ठा और आत्मसम्मान की नई अभिव्यक्ति बन सकता है। पहले जहाँ सामाजिक स्थिति को मुख्यतः जाति निर्धारित करती थी, वहीं अब आय और उपभोग भी सामाजिक पहचान के संकेतक बन रहे हैं।

वैश्वीकरण की सीमाएँ और नई असमानताएँ

वैश्वीकरण के समर्थक अक्सर बाजार को सामाजिक गतिशीलता का माध्यम मानते हैं, लेकिन दलित अनुभव इस धारणा को जटिल बनाता है। यदि सभी व्यक्तियों को समान प्रारंभिक संसाधन उपलब्ध न हों, तो बाजार में प्रतिस्पर्धा समान परिणाम नहीं देती। जाति के कारण ऐतिहासिक रूप से जिन समुदायों को भूमि, शिक्षा, पूंजी और सामाजिक नेटवर्क से वंचित रखा गया, वे बाजार अर्थव्यवस्था में प्रवेश करते समय पहले से ही कमजोर स्थिति में होते हैं। देशपांडे का विश्लेषण भी यह दर्शाता है कि आधुनिक आर्थिक संस्थानों में जातिगत असमानता की निरंतरता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इसलिए दलितों के संदर्भ में वैश्वीकरण का मूल्यांकन केवल GDP, आय या उपभोग के आधार पर नहीं बल्कि सम्मान, अवसर, सामाजिक सुरक्षा, शिक्षा, रोजगार की गुणवत्ता और निर्णय लेने की क्षमता के आधार पर किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

वैश्वीकरण ने उत्तर प्रदेश के दलित जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। इसके परिणामस्वरूप पारंपरिक व्यवसायों से बाहर निकलने, शिक्षा प्राप्त करने, शहरों में प्रवास करने, नए रोजगार अपनाने, उपभोग बढ़ाने और राजनीतिक-सामाजिक चेतना विकसित करने के अवसर बढ़े हैं। दलित समुदाय के भीतर एक ऐसा वर्ग भी उभरा है जो शिक्षा, सरकारी नौकरियों, व्यवसाय और पेशेवर क्षेत्रों के माध्यम से सामाजिक गतिशीलता प्राप्त कर रहा है। लेकिन इन परिवर्तनों के बावजूद जाति-आधारित असमानता समाप्त नहीं हुई है। आधुनिक श्रम बाजारों में भी जाति की भूमिका दिखाई देती है और शिक्षा, पूंजी, सामाजिक नेटवर्क तथा गुणवत्तापूर्ण रोजगार तक पहुँच में असमानताएँ बनी हुई हैं।

इसलिए वैश्वीकरण को दलित जीवन के लिए अवसर और चुनौती दोनों के रूप में समझना आवश्यक है। एक ओर इसने पारंपरिक जाति-आधारित व्यवसायों की सीमाओं को कमजोर किया, वहीं दूसरी ओर बाजार आधारित प्रतिस्पर्धा ने शिक्षा, कौशल और पूंजी के महत्व को बढ़ाया, जिससे नई प्रकार की असमानताएँ पैदा हुईं। उत्तर प्रदेश में दलितों की वास्तविक सामाजिक गतिशीलता के लिए आर्थिक विकास के साथ गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, कौशल विकास, सामाजिक सुरक्षा, भेदभाव-रोधी व्यवस्था, भूमि और संपत्ति तक बेहतर पहुँच तथा सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में समान अवसर आवश्यक हैं। अंततः वैश्वीकरण तभी समावेशी सिद्ध होगा जब बाजार के अवसर सामाजिक रूप से वंचित समुदायों तक समान रूप से पहुँचें और आर्थिक विकास सामाजिक सम्मान एवं समानता में भी परिवर्तित हो।

संदर्भ सूची

Deshpande, A. (2011). The Grammar of Caste: Economic Discrimination in Contemporary India. Oxford University Press.

OUP Academic

Kapur, D., Prasad, C. B., Pritchett, L., & Babu, D. S. (2010). Rethinking inequality: Dalits in Uttar Pradesh in the market reform era. Economic and Political Weekly, 45(35), 39-49.

ResearchGate

Pai, S. (2002). Dalit Assertion and the Unfinished Democratic Revolution: The Bahujan Samaj Party in Uttar Pradesh. SAGE Publications.

Google Books

Office of the Registrar General & Census Commissioner, India. (2011). Population Census 2011: Scheduled

Caste population by religious community, Uttar Pradesh. Government of India.

Census India

Office of the Registrar General & Census Commissioner, India. (2011). District-wise Scheduled Caste Population, Uttar Pradesh. Census of India.

Census India

Ambedkar, B. R. (1936). Annihilation of Caste. Independent Labour Party.

Sen, A. (1999). Development as Freedom. Oxford University Press.

Thorat, S., & Newman, K. S. (Eds.). (2010). Blocked by Caste: Economic Discrimination in Modern India. Oxford University Press.

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

यशपाल के उपन्यासों में अभिव्यक्त लोकसंस्कृति

नेहा सक्सेना
शोधार्थी (हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय)

शोधपत्र सार : प्रस्तुत शोध-पत्र में यशपाल के उपन्यासों में अभिव्यक्त लोक-संस्कृति, सामाजिक जीवन तथा सांस्कृतिक चेतना का विश्लेषण किया गया है। यशपाल के उपन्यास केवल राजनीतिक और सामाजिक यथार्थ के दस्तावेज नहीं हैं, बल्कि उनमें भारतीय लोकजीवन के विविध पक्षों लोकाचार, लोकविश्वास, तीज-त्योहार, लोकगीत, लोककथाएँ, धार्मिक मान्यताएँ, देवी-देवता, खान-पान, वेशभूषा, पारिवारिक परंपराएँ तथा सामाजिक रूढ़ियों का भी सजीव चित्रण मिलता है। उनके उपन्यासों में तत्कालीन भारतीय समाज के सांस्कृतिक अंतर्विरोधों और परिवर्तनशील जीवन-मूल्यों को यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है।

यशपाल ने 'झूठा सच', 'देशद्रोही', 'मनुष्य के रूप', 'दादा-कॉमरेड', 'दिव्या' और 'अमिता' आदि उपन्यासों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के विविध रूपों को पात्रों और घटनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। विशेष रूप से विभाजन, विस्थापन, सांप्रदायिकता, सामाजिक रूढ़ियों, जातिगत एवं धार्मिक संकीर्णताओं तथा स्त्री-शोषण का चित्रण उनकी सांस्कृतिक दृष्टि को व्यापक बनाता है। 'झूठा सच' में विभाजन और विस्थापन से उत्पन्न मानवीय त्रासदी तथा सांप्रदायिक तनाव का मार्मिक चित्रण मिलता है। वहीं 'मनुष्य के रूप' और 'देशद्रोही' में स्त्री की सामाजिक स्थिति, पारिवारिक संबंधों तथा रूढ़िगत मान्यताओं के अंतर्विरोधों को सामने लाया गया है।

यशपाल के नारी पात्र उनकी प्रगतिशील सांस्कृतिक चेतना के विशेष प्रतिनिधि हैं। तारा, कनक, सोमा, शैलबाला आदि पात्र सामाजिक रूढ़ियों और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष करती हुई दिखाई देती हैं। उनके माध्यम से लेखक स्त्री की स्वतंत्रता, समानता और आत्मनिर्णय के प्रश्न को उठाते हैं। इसी प्रकार 'दिव्या' और 'अमिता' में तत्कालीन ऐतिहासिक-सांस्कृतिक परिवेश, धार्मिक अनुष्ठानों, आतिथ्य-सत्कार तथा सामंती सामाजिक संरचना का चित्रण मिलता है।

अतः कहा जा सकता है कि यशपाल के उपन्यासों में संस्कृति स्थिर एवं जड़ व्यवस्था के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और मानवीय संघर्ष के साथ निरंतर विकसित होने वाली जीवन-पद्धति के रूप में उपस्थित है। उनकी सांस्कृतिक दृष्टि लोकजीवन, सामाजिक यथार्थ और प्रगतिशील विचारधारा के समन्वय से निर्मित होती है। इस दृष्टि से यशपाल के उपन्यास भारतीय समाज के सांस्कृतिक संक्रमण, लोकचेतना और सामाजिक परिवर्तन को समझने के महत्वपूर्ण साहित्यिक स्रोत सिद्ध होते हैं।

बीज शब्द : उपन्यास, लोक-संस्कृति, लोकजीवन, सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक यथार्थ, नारी विमर्श, विस्थापन, रूढ़ियाँ, प्रगतिशीलता।

मूल आलेख : यशपाल के उपन्यासों की संस्कृति की झलक अनेक रूपों में प्रदर्शित होती आई है। यहां का रूप भौगोलिक धरातल, यहां के ऊंचे-ऊंचे रेतीले टीले जिन पर ऊंटों की सवारी, यहां के लोगों का वस्त्राभूषण, तीज-त्यौहार, लोकगीत, लोक नृत्य, लोक कथाएं, देवी-देवता, मंदिर, पूजा-पाठ, खान-पान, मेले-ठेले आदि में यहां की संस्कृति दिग्दर्शित

होती है।

लोक-कलाओं के साथ-साथ सांस्कृतिक इतिहास में भारत व यशपाल के उपन्यासों की मूर्तिकला का अपना स्वतंत्र महत्व रहा है। इस कला से यहां की युग-युगान्तर की सांस्कृतिक प्रगति का साक्षात्कार होता है। इसमें ऐसा आभास होता है। जीवन संबंधी सभी विषयों को समावेशित कर शिल्पियों ने सामाजिक व सांस्कृतिक अध्ययन के खुले पन्ने हमारे समक्ष उपस्थित कर दिए हों।

हिंदी लोक साहित्य में यशपाल के उपन्यासों की संस्कृति को बहुत ही रूचिपूर्णता से देखा जा सकता है। उसमें औचित्य भी है और अवधारणा भी। पारम्परिक दृष्टि से जहां भारत हरी-भरी हरियाली का प्रतीक है, वहीं यशपाल के उपन्यासों को ऐतिहासिक स्थलों का द्योतक माना जाता है। हमारे लोक जीवन और लोक संस्कृति के विभिन्न उपादानों में लोक कथाओं, लोकगीतों, लोक नाट्यों, लोकगाहों को दोनों देशों के लोक साहित्य की तुलनात्मक पद्धति से देखा गया है, जिसमें तरह-तरह के क्रियाकलापों वृत-उत्सव, टोने-टोटके, गण्डा ताबीज, देवी-देवता, भूत-प्रेत, शकुन-अपशकुन आदि के भाव विद्यमान रहते हैं। भारत व यशपाल के उपन्यासों के लोकतत्व अपने सांस्कृतिक स्वरूप की दृष्टि से समान भावों का प्रतीक रहे हैं।

इनके सभी उपन्यासों में लोक तत्त्वों की व्याप्ति कहीं न कहीं निरूपित अवश्य हुई है। झूठा सच उपन्यास के जयदेव, तारा, शीलो, सोमनाथ, असद और 'मनुष्य के रूप' उपन्यास के मनोरमा, सोमा, भूषण, नीता, जोशी, धनसिंह, जगदीश सहाय और 'दादा-कॉमरेड' उपन्यास के यशोदा, शैल, हरीश, अमरनाथ, जे.आर. शुक्ला, ध्यानचंद आदि के माध्यम से लोक तत्त्वों को व्यक्त किया है। विस्थापित वर्ग से जुड़े पात्रों के पास न छत है, न दीवार, मात्र टसकती हुई जिजीविषा है, जिसे वे ढोये जाने को विवश हैं। आंतरिक तौर पर विस्थापन के उत्तरदायी लोग जो वैसे ही दकियानूस विचारों के हैं वे स्वतंत्रताओं के हिमायती होने का ढोंग और सफल अभिनय करते हैं। यानी वे महसूस तो करते हैं कि स्वतंत्र होकर, मुक्त व्यवहारों में जीना एक उपलब्धि है, लेकिन उनके निर्दयी संस्कारों ने उन्हें इतनी गहराई से, जड़ों से बाँध रखा है कि वे जीवन में विस्थापित होकर उस स्वतंत्रता के खतरों को झेलते हुए नजर आते हैं। जैसे झूठा सचश उपन्यास में जयदेव, तारा परिवार से पारंपरिक संस्कृति के होते हुए भी स्वतंत्रता संग्राम में अपना योगदान देते हुए कई समस्याओं का सामना करते हैं पर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इनका स्वयं का दृष्टिकोण ही बदल जाता है। उर्मिला और कनक जो नारी वर्ग की पात्र हैं उनको भी कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। 'मनुष्य के रूप उपन्यास में सोमा जो एक विधवा औरत है अपने ससुराल वालों के द्वारा तंग किए जाने पर धनसिंह ड्राइवर के साथ प्रेम के कारण घर से भाग जाती है। परंतु पुलिस द्वारा उनको पकड़ लिया जाता है और पुलिस इन दोनों पर अत्याचार करती है। सोमा कई समस्याओं को झेलते हुए जब आर्यसमाजी सज्जन लाला गोपीचंद सर्राफ के यहाँ जाती है तो घर की स्त्रियाँ उसका घर में रहना अच्छा नहीं मानती। तब लाला जी स्त्रियों को समझाते हुए कहते हैं कि जो हो यह लड़की हिन्दू है इसे घर में नहीं रखेंगे तो यह किसी मुसलमान के हाथ पड़ जायेगी, धर्म से जायेगी और जात से भी।' कभी हिंदू-मुसलमान तो कभी सिख हिंदू साथ-साथ नहीं रह पाते। वे अपने उन्हीं आदर्शों में दुबक जाते हैं और उनके टूटने के डर से क्रोधित होते हैं, नैतिकता की दुहाई देने लगते हैं। यशपाल के उपन्यास जनमानस की ऐसी सीमाओं के खिलाफ खुले हुए रूप में सब कुछ कह देते हैं। उपन्यासकार बहुत ही तीखे लेकिन सरल ढंग से विस्थापन की पीड़ा को एक छिपे हुए व्यंग्य की नोक से कुरेद देता है। स्वतंत्रता को दिखावटी तौर पर जीते रहने का दम्भ भरना ओर बात है और उस विस्थापन के खतरों का सामना करना दूसरी बात है। जीने की शर्त पर अपनी उन भीतरी सीमाओं को तोड़कर उस स्वतंत्रता को प्राप्त करना निश्चित रूप से एक उपलब्धि है, लेकिन इसके लिए खोलों वाली, मुखौटों वाली भयानक जिन्दगी नहीं। जैसे सभी उपन्यासों के पात्र इसी मनःस्थिति से गुजरते हुए दिखाई देते हैं। इनके उपन्यासों में स्त्रियों की दुर्रावस्था और मनःस्थिति का बडा ही मार्मिक चित्रण पेश किया गया है। भीतर-बाहर दोनों स्तरों परस्वतंत्र होने की जिंदगी को ईमानदारी से जीना है। निरीह लोगों को घसीट-घसीटकर गोली मार दी गई, सम्पत्ति लूट ली गई। सुअर के बच्चे कहकर 'कत्लेआम के फतवे विस्थापन के प्रमुख कारण बने। जैसे 'देशद्रोही उपन्यास में डॉ० खन्ना को एक गिरोह लूटपाट के साथ उठा ले जाता है तब डॉ० खन्ना अपनी स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं 'अन्जानी अंधेरी राह पर उसे घसीटे लिए जा रहे थे, आँखों पर कपडा बंधा था,

दोनों हाथ पीठ पीछे जकड़े हुए, गले और कमर में दायें-बायें से फंदे पड़े थे। जो कुछ सुनाई पड़ रहा था, उससे वह समझ सका, उसके आगे-पीछे, अगल-बगल आदमियों के भारी-भारी चुस्त कदम पड़ रहे हैं। उसके नंगे पाँव सुन्न हो चुके थे। पाँव के नीचे कंकड़ है या पत्थर, रेत है या धूल, समझ पाने लायक मस्तिष्क की अवस्था नहीं थी। किसी अज्ञात प्राणांतक भय की ओर वह जा रहा है, जो आशा और कल्पना के क्षितिज से परे था, जहाँ निश्चय था केवल मृत्यु का। ... किसी भी रूप में हो। लेखक 'झूठा सच उपन्यास के माध्यम से एक विद्रोह की त्रासद मनःस्थिति में स्वयं को पाता है। वस्तुतः उनकी मुक्त हंसी और खुले हुए व्यवहार से जनमानस अप्रत्यक्ष रूप से आक्रान्त होता है- वह अपने घर और दूसरे घर में तुलना करता है और परेशान होता है। अपने घर के परिवेष की सारी कमियां लोकमानस के दिमाग में ज्यादा उभर कर आती हैं और स्वयंमेव एक लम्बी साँस छूट जाती है। जैसे झूठा सच उपन्यास के खण्ड-2 में बंती की स्थिति दिखाई गई है। कनक के माध्यम से भी इस स्थिति का बडा मार्मिक चित्रण पेश किया गया है। 'दिव्या उपन्यास में भी इस स्थिति का बड़ा मार्मिक चित्रण पेश किया गया है। दिव्या जो इस उपन्यास की मुख्य पात्र है वह अनेक पुरुषों के हाथ पड़ती है। पृथुसेन पर वह अटूट विश्वास करती थी और बाद में यह भी उसे छोड़ देता है जिसके कारण उसे अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। रामज्वाया अपने छोटे भाई रामलुभाया की नासमझी पर खेद प्रकट करते हुए और लोक-लाज से उसे समझाते हैं—"तुम्हें खबर मिल गयी थी तो कान में तेल डाले बैठे रहे। तुम्हें अपने संबंध का भी कुछ ख्याल नहीं। उनका बेटा है तो तुम्हारा भी तो दामाद है। एक बार सुखलाल साहनी के यहाँ जाकर पूछताछ तो करनी चाहिए थी।"

सांस्कृतिक परंपरा के अनुसार मंगल वाद्य कर्णप्रिय नाथ के साथ मंगलाचरण प्रस्तुत किया जाता है। चारण तूर्यनाद करते हुए कला की देवी राजनर्तकी मल्लिका के सभास्थल में प्रवेश की घोषणा करते हैं, "कला की अधिष्ठात्री नगर श्री राजर्नतकी देवी मल्लिका सभास्थल में पधार रही हैं।"[5]

संस्कृति के जीवंत निरूपण के अनेक उदाहरण उपन्यास में बिखरे पड़े हैं। आतिथ्य सत्कार की तत्कालीन परंपरा का एक प्रसंग दृष्टव्य है 'दिव्या दासी के हाथों में रजत आधार पर ताम्बूल और अर्घ्य लेकर आस्थानागर पहुँची..... दिव्या ने अभ्यागत के सम्मुख बद्ध कर नासिका तक उठाकर नमस्कार के साथ स्वागत किया, 'आर्य, आस्यताम् ।.... अर्घ्य ग्रहण करें।"

सोमा ही उसको पहचानने से मना कर देती है जिस सोमा के लिए उसने यातनाएँ सही, जेल यात्राएँ की, खून किये और अपनी पूरी जिंदगी खराब कर दी उसी के द्वारा न पहचाने जाने पर वह अत्यंत दुखी होता है और सोचता है कि मनुष्य के कितने रूप हो सकते हैं।[7]

'झूठा सच' उपन्यास में तारा की तायी ने आकर तारा की माँ को समझाया "लड़की को कॉलेज में पढ़ाकर तुमने क्या लेना है लड़के के बराबर तो अभी पढ़ चुकी है उन लोगों के यहां जाकर इसे कौन स्कूल मास्टरी, मुंशीगिरी करनी है। क्या बच्चों को अंग्रेजी में लोरी देगी? लडकी तो बहन पराई जमानत है। जब लड़का ही बी.ए. पास नहीं तो लड़की का बी.ए. पास करना क्या भला लगेगा? व्यर्थ जग हँसाई होगी।"[8] इस उपन्यास के माध्यम से यह दिखाया गया है कि पुरुष की तुलना में स्त्री की हीनता स्वाभाविक तो नहीं, परंतु आवश्यक बना दी गई है।

'अमिता उपन्यास में दिखाया गया है कि युवक सामंत स्कन्द अपने सम्मान की रक्षा के लिए सौ पुरुषों का रक्त बहा देने में भी संकोच नहीं करता, परंतु देवता और राजा के सम्मुख उसकी ग्रीवा नहीं उठ सकती थी। वह भाग्य की इस विडंबना को सह जाने के लिए विवश था और मृत्यु से भी दारुण पीड़ा को अनुभव कर रहा था।

संयुक्त परिवार की प्रेम-भावना कितनी खोखली और अस्थिर है इसका उदाहरण 'देश द्रोही' उपन्यास में भली-भाँति देखने को मिलता है- नए ढंग की पढ़ी-लिखी बहू के घर आने से बुआ और जेठानी ने परेशानी अनुभव की थी. परंतु डॉक्टर की ऊँची नौकरी पा जाने के उत्साह में वह भुला दी गई थी। घर में बहू के आने पर लक्ष्मी के चरण पड़ने के कारण वह लाड़ली बन गई थी। सास के आसन की अधिकारी बुआ और जेठानी उसे कुछ न कह सकती थी, परंतु कुलक्षणा विधवा हो जाने पर वह बहू बोड़ा बन गई।[10]

सामाजिक रूढियों और मान्यताओं के नाम पर नारियों का शोषण होता रहा है। यशपाल ने अपने उपन्यास में ऐसी समस्याओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करके एक ओर जहाँ उस समस्या से परिचित कराया है वहीं दूसरी ओर उस समस्या से पीड़ित नारी को मुक्ति दिलाने का भी प्रयास किया है। यशपाल नारी को समानाधिकार देने के समर्थक हैं। उनके शब्दों में "आज हमारे समाज का आधा भाग यानी नारी समाज की कठिनाई और संघर्ष में अपने आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक दायित्वों को समझें, वे केवल कंधों पर बोझ न बनी रहें।"

यशपाल के उपन्यासों के नारी पात्र अभिजात वर्ग और मध्यवर्ग से संबंधित हैं। ये सभी नारी पात्र जीवन में दोहरा संघर्ष करती हैं। एक और सभी नारियाँ सामाजिक परंपराओं, रूढ़ियों और मान्यताओं के प्रति विद्रोह करती हैं तो दूसरी और पूँजीवादी शोषक व्यवस्था को समाप्त करने के लिए राजनीतिक क्षेत्र में भी अहम् भूमिका निभाती हैं। 'दादा-कॉमरेड' उपन्यास की नायिका शैलबाला स्वतंत्र प्रकृति की नारी है। उसका दृष्टिकोण सामान्य नारियों से भिन्न है। वह शादी का विरोध करती है। शैल का नारी स्वातंत्र्य सामाजिक विचारों की अवहेलना के साथ ही सदाचार और व्यवहार की भी अपेक्षा करता है। शैल का आचरण, व्यवहार और मानसिकता भारतीय संस्कृति और सभ्यता से नितांत अलग है। उसका स्वच्छंद आचरण देखकर ऐसा लगता है मानो वह पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति में जी रही हो।

सदंर्भ

1. यशपाल, 'देशद्रोही', पृ० 50-51
2. यशपाल, 'देशद्रोही', पृ० 5
3. यशपाल, 'देशद्रोही', पृ० 5
4. यशपाल, 'झूठा सच (वतन और देश भाग-1), पृ० 39 4.
5. यशपाल, 'दिव्या, पृ० 6
6. यशपाल, 'दिव्या, पृ० 15
7. यशपाल, 'मनुष्य के रूप', पृ० 215
8. यशपाल, 'झूठा सच (वतन और देश भाग-1), पृ० 40
9. यशपाल, 'देशद्रोही', पृ० 27
10. यशपाल, 'झूठा सच (वतन और देश)

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों में ग्रामीण जीवन : संवेदना, संघर्ष और मानवीयता

विपुल कुमार
शोधार्थी, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना।
मो 6287060526
ईमेल kumarvipul4327@gmail.com

डॉ. श्रीकांत सिंह
शोध निदेशक, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी-विभाग, स्नातकोत्तर केंद्र
कॉलेज ऑफ कॉमर्स, आर्ट्स एंड सायंस, पटना-20

शोध-सारांश

हिंदी साहित्य में महादेवी वर्मा का रचनात्मक व्यक्तित्व बहुआयामी है। वे मुख्यतः छायावादी कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध हैं, किंतु उनके गद्य-साहित्य में भी मानवीय संवेदना, सामाजिक चेतना और जीवन के उपेक्षित वर्गों के प्रति गहरी आत्मीयता दिखाई देती है। उनके रेखाचित्रों में ग्रामीण जीवन का चित्रण केवल प्राकृतिक सौंदर्य अथवा ग्राम्य परिवेश के वर्णन तक सीमित नहीं है, बल्कि उसके भीतर छिपे सामाजिक यथार्थ, आर्थिक अभाव, स्त्री-जीवन की पीड़ा, श्रमशीलता, रूढ़ियों और मानवीय संघर्षों को भी अभिव्यक्त करता है। महादेवी वर्मा ने ग्रामीण समाज के उन पात्रों को अपनी रचनाओं का केंद्र बनाया जिन्हें तत्कालीन साहित्य और समाज में प्रायः हाशिए पर रखा जाता था। उनके रेखाचित्रों में ग्रामीण स्त्रियाँ, श्रमिक, निर्धन, पशु-पक्षी तथा सामान्य जन जीवन की मार्मिक उपस्थिति दर्ज कराते हैं।

महादेवी की दृष्टि में ग्रामीण जीवन केवल अभाव का जीवन नहीं है। उसमें प्रेम, करुणा, आत्मसम्मान, सहकारिता, श्रम और प्रकृति के साथ गहरा संबंध भी विद्यमान है। उनके रेखाचित्रों में ग्रामीण स्त्री विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। वह एक ओर सामाजिक एवं आर्थिक शोषण का शिकार है, तो दूसरी ओर त्याग, साहस और जीवन-संघर्ष की प्रतीक भी है। प्रस्तुत शोध-आलेख में महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों के आधार पर ग्रामीण जीवन के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय पक्षों का अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द : महादेवी वर्मा, रेखाचित्र, ग्रामीण जीवन, ग्रामीण स्त्री, सामाजिक यथार्थ, मानवीय संवेदना, श्रम, प्रकृति।

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास में महादेवी वर्मा का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनकी रचनात्मकता ने कविता और गद्य दोनों को समृद्ध किया। उनकी कविताओं में जहाँ आत्मानुभूति, करुणा, विरह और आध्यात्मिक संवेदना का स्वर प्रमुख है, वहीं उनके गद्य में सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं का अत्यंत संवेदनशील चित्रण मिलता है। विशेष रूप से उनके रेखाचित्रों में समाज के सामान्य और उपेक्षित व्यक्तियों का जीवन अपनी पूरी मार्मिकता के साथ सामने आता है।

रेखाचित्र विधा में लेखक किसी व्यक्ति, घटना या जीवन-परिस्थिति के कुछ विशिष्ट पक्षों को उभारकर उसका प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत करता है। महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों की विशेषता यह है कि उनमें बाहरी रूप-वर्णन की अपेक्षा पात्र के अंतर्मन

और उसकी जीवन-स्थितियों को अधिक महत्व दिया गया है। यही कारण है कि उनके पात्र केवल साहित्यिक चरित्र नहीं रह जाते, बल्कि अपने समय और समाज के प्रतिनिधि बन जाते हैं।

महादेवी वर्मा ने अपने आसपास के ग्रामीण और निम्नवर्गीय जीवन को निकट से देखा था। उनके रेखाचित्रों में ग्रामीण समाज की आर्थिक कठिनाइयाँ, सामाजिक रूढ़ियाँ, स्त्री की स्थिति, श्रम की महत्ता तथा प्रकृति के साथ मनुष्य के संबंध का अत्यंत मार्मिक चित्रण मिलता है। वे ग्रामीण जीवन को किसी रोमानी कल्पना के रूप में प्रस्तुत नहीं करतीं, बल्कि उसके सुख-दुःख, अभाव और संघर्ष को संवेदनशील दृष्टि से देखती हैं।

ग्रामीण जीवन का यथार्थपरक चित्रण

महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों में ग्रामीण जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष उसका यथार्थ है। ग्रामीण समाज के जीवन में आर्थिक अभाव, अशिक्षा, सामाजिक असमानता और रूढ़ियों का प्रभाव दिखाई देता है। गाँव का सामान्य व्यक्ति निरंतर श्रम करता है, किंतु उसके जीवन में सुविधाओं का अभाव बना रहता है।

महादेवी की दृष्टि ग्रामीण जीवन को केवल बाहर से देखने वाली दृष्टि नहीं है। वे ग्रामीण पात्रों के साथ भावनात्मक स्तर पर जुड़ती हैं। इसलिए उनके जीवन की छोटी-सी घटना भी लेखिका के लिए बड़ी मानवीय अनुभूति बन जाती है। ग्रामीण समाज के निर्धन पात्रों की विवशता को चित्रित करते हुए लेखिका उनके भीतर मौजूद आत्मसम्मान और मानवीय गरिमा को भी सामने लाती हैं।

उनके रेखाचित्रों में ग्रामीण परिवेश के माध्यम से तत्कालीन भारतीय समाज की आर्थिक विषमता भी स्पष्ट होती है। एक ओर संपन्न वर्ग है और दूसरी ओर वह श्रमिक वर्ग है जो अपनी मेहनत से जीवन चलाता है। यह अंतर महादेवी के संवेदनशील मन को प्रभावित करता है और उनकी लेखनी में करुणा का रूप ग्रहण करता है।

ग्रामीण स्त्री का संघर्ष

महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों में ग्रामीण स्त्री की उपस्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनकी स्त्रियाँ केवल दया की पात्र नहीं हैं, बल्कि वे जीवन-संघर्ष में सक्रिय भागीदारी करने वाली व्यक्तित्व-संपन्न महिलाएँ हैं। ग्रामीण स्त्री परिवार, समाज और आर्थिक कठिनाइयों के बीच निरंतर श्रम करती है।

ग्रामीण स्त्री का जीवन अनेक स्तरों पर संघर्षपूर्ण दिखाई देता है। वह घर की जिम्मेदारियों के साथ-साथ खेत, पशुपालन और अन्य घरेलू कार्यों में भी योगदान देती है। इसके बावजूद सामाजिक व्यवस्था में उसे समान सम्मान और अधिकार प्राप्त नहीं होते। महादेवी इस विडंबना को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती हैं।

उनकी ग्रामीण स्त्रियों में त्याग और करुणा के साथ-साथ आत्मसम्मान भी दिखाई देता है। वे परिस्थितियों के सामने पूरी तरह टूट नहीं जातीं। उनके व्यक्तित्व में सहनशीलता और संघर्षशीलता दोनों का समन्वय मिलता है। इस दृष्टि से महादेवी वर्मा का ग्रामीण स्त्री-चित्रण नारीवादी चेतना के आरंभिक महत्वपूर्ण रूपों में देखा जा सकता है।

महादेवी ग्रामीण स्त्री की पीड़ा को केवल व्यक्तिगत समस्या के रूप में नहीं देखतीं, बल्कि उसे सामाजिक व्यवस्था से जोड़ती हैं। विवाह, गरीबी, पितृसत्तात्मक सोच, अशिक्षा और सामाजिक रूढ़ियाँ उसके जीवन को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार ग्रामीण स्त्री उनके साहित्य में व्यापक सामाजिक प्रश्न का प्रतिनिधित्व करती है।

श्रम और श्रमिक जीवन

महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों में श्रम की गरिमा का विशेष महत्व है। ग्रामीण समाज श्रम पर आधारित है। किसान, मजदूर, घरेलू श्रमिक और ग्रामीण स्त्रियाँ अपने परिश्रम से समाज की आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, किंतु उन्हें पर्याप्त सम्मान और सुविधाएँ नहीं मिलतीं।

महादेवी श्रम को केवल आर्थिक गतिविधि के रूप में नहीं देखतीं। उनके लिए श्रम मनुष्य के व्यक्तित्व और आत्मसम्मान से जुड़ा हुआ है। उनके पात्र कठिन परिस्थितियों में भी कार्य करते हैं और जीवन को आगे बढ़ाते हैं। यही उनकी मानवीय शक्ति है।

ग्रामीण जीवन का यह श्रम-संस्कृति पक्ष महादेवी के रेखाचित्रों को विशेष महत्त्व प्रदान करता है। वे ग्रामीण व्यक्ति के जीवन को उसकी मेहनत और संघर्ष के संदर्भ में समझती हैं। इसलिए उनके रेखाचित्रों में श्रमिक पात्रों के प्रति सहानुभूति के साथ-साथ सम्मान का भाव भी दिखाई देता है।

गरीबी और आर्थिक विषमता

महादेवी के ग्रामीण जीवन-चित्रण में गरीबी एक महत्वपूर्ण सामाजिक समस्या के रूप में सामने आती है। आर्थिक अभाव ग्रामीण जीवन की अनेक समस्याओं का मूल कारण है। निर्धन व्यक्ति अपने श्रम के बावजूद जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित रहता है।

गरीबी का प्रभाव केवल भोजन और वस्त्र तक सीमित नहीं रहता। यह शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सम्मान और जीवन के अवसरों को भी प्रभावित करता है। ग्रामीण स्त्रियों और बच्चों की स्थिति विशेष रूप से कठिन होती है।

महादेवी गरीबी का वर्णन करते समय अतिनाटकीयता का सहारा नहीं लेतीं। वे छोटी-छोटी घटनाओं और पात्रों की जीवन-स्थितियों के माध्यम से अभाव की गहराई को व्यक्त करती हैं। यही उनकी रचनात्मक संवेदना की विशेषता है। उनके यहाँ करुणा भावुकता नहीं बनती, बल्कि सामाजिक यथार्थ को समझने का माध्यम बनती है।

प्रकृति और ग्रामीण जीवन

महादेवी वर्मा के साहित्य में प्रकृति का विशेष स्थान है। उनके रेखाचित्रों में भी ग्रामीण जीवन और प्रकृति का संबंध अत्यंत आत्मीय रूप में दिखाई देता है। गाँव का जीवन खेतों, पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों, ऋतुओं और प्राकृतिक वातावरण से गहराई से जुड़ा हुआ है।

ग्रामीण व्यक्ति प्रकृति को केवल बाहरी दृश्य के रूप में नहीं देखता। उसके जीवन और आजीविका का संबंध सीधे प्रकृति से होता है। वर्षा, धूप, फसल, नदी, मिट्टी और ऋतुओं का परिवर्तन उसके जीवन को प्रभावित करता है। महादेवी इस संबंध को संवेदनशील दृष्टि से प्रस्तुत करती हैं।

प्रकृति उनके रेखाचित्रों में ग्रामीण जीवन की पृष्ठभूमि भर नहीं है। वह पात्रों के सुख-दुःख की सहभागी बन जाती है। ग्रामीण परिवेश की प्रकृति और पात्रों की भावनाएँ एक-दूसरे से जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं। इस प्रकार प्रकृति उनके रेखाचित्रों में जीवन की सक्रिय उपस्थिति है।

लोक-संस्कृति और सामाजिक संबंध

ग्रामीण जीवन की अपनी विशिष्ट लोक-संस्कृति होती है। लोक-विश्वास, रीति-रिवाज, पारिवारिक संबंध, सामाजिक परंपराएँ और सामुदायिक जीवन ग्रामीण समाज को विशिष्ट पहचान प्रदान करते हैं। महादेवी वर्मा ने इन तत्वों को सहजता से अपने रेखाचित्रों में स्थान दिया है।

ग्रामीण समाज में सामूहिकता का भाव भी दिखाई देता है। लोग एक-दूसरे के सुख-दुःख में सहभागी होते हैं। किंतु इसी सामुदायिक व्यवस्था के भीतर अनेक रूढ़ियाँ और सामाजिक असमानताएँ भी मौजूद रहती हैं। महादेवी इन दोनों पक्षों को संतुलित दृष्टि से प्रस्तुत करती हैं।

उनकी दृष्टि न तो ग्रामीण जीवन का अंधा महिमामंडन करती है और न ही उसे केवल पिछड़ेपन के रूप में देखती है। वे उसके भीतर मौजूद मानवीय मूल्यों और सामाजिक विसंगतियों दोनों को पहचानती हैं।

मानवीय करुणा और संवेदना

महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों की सबसे बड़ी शक्ति उनकी मानवीय संवेदना है। उनके पात्र चाहे निर्धन हों, ग्रामीण हों, स्त्रियाँ हों अथवा समाज के उपेक्षित वर्ग से संबंधित हों—लेखिका उनके जीवन को सम्मान और आत्मीयता के साथ देखती हैं।

उनकी करुणा केवल भावुक सहानुभूति नहीं है। वह मनुष्य की गरिमा की रक्षा करने वाली करुणा है। वे पाठक को यह अनुभव कराती हैं कि समाज के हाशिए पर खड़े व्यक्ति भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने समाज के संपन्न और प्रभावशाली लोग।

महादेवी का संवेदनशील दृष्टिकोण उनके रेखाचित्रों को सामाजिक दस्तावेज का स्वरूप भी प्रदान करता है। उनके पात्रों के माध्यम से तत्कालीन ग्रामीण समाज की अनेक वास्तविकताएँ हमारे सामने आती हैं। इसीलिए उनके रेखाचित्र आज भी सामाजिक और साहित्यिक अध्ययन के लिए प्रासंगिक हैं।

ग्रामीण जीवन और नारी चेतना

महादेवी वर्मा की रचनाओं में नारी के प्रति गहरी संवेदनशीलता दिखाई देती है। ग्रामीण स्त्री के संदर्भ में उनकी नारी चेतना और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि यहाँ स्त्री को आर्थिक और सामाजिक दोनों प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

महादेवी स्त्री को केवल त्याग और सहनशीलता की प्रतिमूर्ति के रूप में प्रस्तुत नहीं करतीं। वे उसके भीतर छिपे व्यक्तित्व, आकांक्षाओं और आत्मसम्मान को भी पहचानती हैं। उनके ग्रामीण स्त्री-पात्र अपने सीमित सामाजिक परिवेश में भी जीवन के प्रति अपनी सक्रियता बनाए रखते हैं।

इस प्रकार महादेवी का ग्रामीण स्त्री-चित्रण स्त्री की स्थिति पर प्रश्न उठाता है। वह अप्रत्यक्ष रूप से यह संकेत करता है कि किसी समाज की वास्तविक प्रगति तभी संभव है जब उसमें स्त्री को सम्मान, शिक्षा और स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त हो।

रेखाचित्रों की भाषा और शैली

महादेवी वर्मा की भाषा अत्यंत चित्रात्मक, भावपूर्ण और संवेदनशील है। उनके रेखाचित्रों में भाषा पात्रों और परिवेश के अनुरूप अपना रूप ग्रहण करती है। कहीं भाषा सरल और बोलचाल के निकट दिखाई देती है, तो कहीं उसमें काव्यात्मकता दिखाई देती है।

उनकी शैली की सबसे बड़ी विशेषता सूक्ष्म निरीक्षण है। वे पात्र के व्यक्तित्व को कुछ विशेष घटनाओं, व्यवहारों और भावनात्मक संकेतों के माध्यम से उभारती हैं। इसलिए उनके रेखाचित्र विस्तृत जीवन-वृत्तांत न होकर जीवन के प्रभावशाली क्षणों का सघन चित्र बन जाते हैं।

प्रकृति-वर्णन, संवाद, आत्मीय संबोधन और भावात्मक भाषा उनके रेखाचित्रों को प्रभावशाली बनाते हैं। उनकी भाषा में करुणा है, लेकिन वह कृत्रिम नहीं लगती। यही सहजता उनके ग्रामीण जीवन-चित्रण को विश्वसनीय बनाती है।

समकालीन संदर्भ में प्रासंगिकता

महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों में प्रस्तुत ग्रामीण जीवन आज भी कई स्तरों पर प्रासंगिक है। यद्यपि ग्रामीण भारत में शिक्षा, तकनीक और संचार के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन हुए हैं, फिर भी आर्थिक असमानता, श्रम की उपेक्षा, लैंगिक भेदभाव और सामाजिक विषमता जैसी समस्याएँ पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं।

महादेवी की रचनाएँ हमें यह समझने की प्रेरणा देती हैं कि विकास का वास्तविक अर्थ केवल भौतिक सुविधाओं की वृद्धि नहीं, बल्कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में सम्मान और अवसर की उपलब्धता है।

उनकी मानवीय दृष्टि आज के समय में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। जब साहित्य और समाज में हाशिए के समुदायों की आवाज़ को महत्व दिया जा रहा है, तब महादेवी के रेखाचित्र हमें संवेदनशील और मानवीय दृष्टि से समाज को देखने की प्रेरणा देते हैं।

निष्कर्ष

महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों में ग्रामीण जीवन का चित्रण बहुआयामी है। उन्होंने गाँव को केवल प्राकृतिक सौंदर्य, सरलता और निष्कपटता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि ग्रामीण जीवन की वास्तविक समस्याओं और संघर्षों को भी सामने रखा। उनके रेखाचित्रों में गरीबी, श्रम, सामाजिक विषमता, स्त्री-जीवन, रूढ़ियाँ और अभाव के साथ-साथ प्रेम, आत्मीयता, मानवीय गरिमा और प्रकृति से गहरा संबंध भी दिखाई देता है।

विशेष रूप से ग्रामीण स्त्री का चित्रण उनकी रचनात्मक संवेदना का महत्वपूर्ण पक्ष है। ग्रामीण स्त्री उनके यहाँ शोषित और पीड़ित होने के साथ-साथ संघर्षशील, सहनशील और आत्मसम्मान से युक्त व्यक्तित्व भी है। इस प्रकार महादेवी वर्मा का ग्रामीण जीवन-चित्रण सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदना का सुंदर समन्वय प्रस्तुत करता है।

उनकी रचनाओं का मूल आग्रह मनुष्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का है। वे समाज के उन लोगों को साहित्य में स्थान देती हैं जिनकी आवाज़ अक्सर दब जाती है। यही कारण है कि उनके रेखाचित्र केवल किसी काल विशेष के ग्रामीण जीवन का दस्तावेज नहीं हैं, बल्कि वे मानवीय करुणा, सामाजिक न्याय और संवेदनशीलता के शाश्वत संदेश को अभिव्यक्त करते हैं।

अतः कहा जा सकता है कि महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों में ग्रामीण जीवन का स्वरूप यथार्थ, करुणा, संघर्ष और मानवीय गरिमा के आधार पर निर्मित होता है। उनकी दृष्टि ग्रामीण जीवन की बाहरी तस्वीर से आगे जाकर उसके अंतःकरण तक पहुँचती है। यही उनकी रेखाचित्र-कला की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

संदर्भ सूची

1. वर्मा, महादेवी। (1941)। अतीत के चलचित्र। इलाहाबाद : साहित्य भवन।
2. वर्मा, महादेवी। (1943)। स्मृति की रेखाएँ। इलाहाबाद : साहित्य भवन।
3. वर्मा, महादेवी। (1956)। पथ के साथी। इलाहाबाद : साहित्य भवन।
4. वर्मा, महादेवी। (1972)। मेरा परिवार। इलाहाबाद : साहित्य भवन।
5. शुक्ल, रामचंद्र। (1929)। हिंदी साहित्य का इतिहास। वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा।
6. द्विवेदी, हजारीप्रसाद। (1952)। हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास। नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
7. सिंह, नामवर। (1955)। छायावाद। नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

मोहन राकेश के नाटकों में नारी मनोविज्ञान और संघर्ष

Dr. Anupama
Assistant Professor, Department of Hindi
Mount Carmel College, Autonomous,
#58, Palace Road, Abshot Layout,
Vasanth Nagar, Bangalore-560001.
Phone Number-8105566341
Email.Id- pa.anupama09@gmail.com

भूमिका

आधुनिक हिन्दी साहित्य में नाटक विधा का विशेष महत्व है। हिन्दी नाटक ने समय-समय पर भारतीय समाज, संस्कृति, मानवीय संवेदनाओं तथा सामाजिक परिवर्तनों को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। भारतेन्दु युग से आरंभ होकर हिन्दी नाटक परंपरा ने निरंतर विकास किया और आधुनिक काल में यह अधिक यथार्थवादी एवं मनोवैज्ञानिक स्वरूप ग्रहण करती गई। प्रारंभिक हिन्दी नाटकों में ऐतिहासिक, पौराणिक एवं सामाजिक विषयों की प्रधानता थीं, किंतु आधुनिक युग में नाटककारों ने व्यक्ति के अंतर्द्वंद्व, पारिवारिक विघटन, सामाजिक विसंगतियों तथा अस्तित्व संबंधी प्रश्नों को केंद्र में रखा। इस प्रकार हिन्दी नाटक केवल मनोरंजन का माध्यम न रहकर सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति का सशक्त साधन बन गया। आधुनिक हिन्दी नाटक को नई दिशा प्रदान करने वाले प्रमुख साहित्यकारों में मोहन राकेश का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने हिन्दी नाटक को आधुनिक संवेदना, मनोवैज्ञानिक गहराई और यथार्थपरक दृष्टि प्रदान की। उनके नाटकों में व्यक्ति के भीतर चल रहे मानसिक संघर्ष, टूटते पारिवारिक संबंध, अकेलापन, असंतोष तथा अस्तित्वबोध का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण मिलता है। विशेष रूप से उनके नारी पात्र अत्यंत जीवंत, संवेदनशील और संघर्षशील दिखाई देते हैं। 'आधे-अधूरे', 'आषाढ़ का एक दिन', तथा 'लहरों के राजहंस' जैसे नाटकों में स्त्रीमन की जटिलताओं, भावनात्मक दवंदवों तथा सामाजिक बंधनों का अत्यंत मार्मिक चित्रण हुआ है। उनके नारी पात्र केवल सहानुभूति की पात्र नहीं है, बल्कि वह अपने अधिकार, आत्मसम्मान और अस्तित्व के लिए संघर्ष करने वाली सशक्त चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। उनके भीतर प्रेम, त्याग, असंतोष, विद्रोह, अकेलापन और आत्मसंघर्ष जैसी अनेक मनोवैज्ञानिक अवस्थाएँ विद्यमान हैं। इस दृष्टि से मोहन राकेश के नाटकों का अध्ययन आधुनिक स्त्री जीवन और उसके मानसिक संघर्षों को समझने में अत्यंत सहायक सिद्ध होता है।

स्त्री मन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसकी भावनात्मक गहराई है। वह अपने संबंधों को केवल सामाजिक दायित्व के रूप में नहीं, बल्कि आत्मीक जुड़ाव के रूप में देखती है। यही कारण हैं कि, उपेक्षा, असफलता, संबंधों में टूटन अथवा असंतोष की स्थिति उसे मानसिक रूप से अत्यधिक प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त नारी मन में आत्मसम्मान और स्वतंत्रता की भावना भी विद्यमान रहती है। सामाजिक अपेक्षाएँ स्त्री को आदर्श पत्नी, माता और गृहिणी की भूमिका तक सीमित करने का प्रयास करती रही है। परिणामस्वरूप अनेक स्त्रियाँ अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और आत्मसम्मान को दबाने के लिए विवश होती है। इससे उनके भीतर मानसिक तनाव, असंतोष और आत्मसंघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। आधुनिक समाज में शिक्षा,

आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक जागरूकता के कारण स्त्री की स्थिति में परिवर्तन अवश्य आया है, किंतु आज भी उसे सामाजिक रूढ़ियों, लैंगिक भेदभाव, पारिवारिक दबाव तथा असुरक्षा जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। मोहन राकेश ने अपने नाटकों में आधुनिक जीवन की जटिलताओं, मानवीय संबंधों की विडंबनाओं तथा व्यक्ति के मानसिक संघर्षों को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

मोहन राकेश के नाटकों में नारी संघर्ष

(क) पारिवारिक संघर्ष

मोहन राकेश के नाटकों में दांपत्य जीवन की समस्याएँ अत्यंत यथार्थवादी रूप में चित्रित हुई हैं। आधुनिक जीवन की भागदौड़, आर्थिक दबाव, पारस्परिक असंतोष और भावनात्मक दूरी पति-पत्नी संबंधों को प्रभावित करती है। उनके नाटकों में पति-पत्नी के बीच प्रेम और विश्वास की कमी दिखाई देती है, जिसके कारण वैवाहिक जीवन तनावपूर्ण बन जाता है। मोहन राकेश के आधे-अधूरे में परिवार केवल सामाजिक संस्था नहीं, बल्कि व्यक्ति के भीतर के तनाव और असंतोष का केंद्र बन जाता है। पति-पत्नी के संबंधों में बढ़ती दूरी, आर्थिक संघर्ष और भावनात्मक असुरक्षा के कारण परिवार का विघटन सामने आता है।"[1] 'आधे-अधूरे' नाटक इसका सबसे सशक्त उदाहरण है। इस नाटक की नायिका सावित्री अपने वैवाहिक जीवन से संतुष्ट नहीं है। उसका पति महेंद्रनाथ आर्थिक और मानसिक रूप से कमज़ोर व्यक्ति है, जो परिवार की जिम्मेदारियों को ठीक प्रकार से निभाने में असफल रहता है। परिणामस्वरूप सावित्री के भीतर असंतोष और कुंठा की भावना उत्पन्न होती है। वह अपने जीवन में स्थिरता, सुरक्षा और आत्मसम्मान की तलाश करती है, किंतु उसे हर ओर निराशा की प्राप्त होती है। दांपत्य जीवन में संवेदनहीनता भी एक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में उभरती है। पति-पत्नी एक-दूसरे की भावनाओं और आवश्यकताओं को समझने में असफल रहते हैं। इससे उनके बीच मानसिक दूरी बढ़ती जाती है और संबंध केवल औपचारिकता बनकर रह जाते हैं। मोहन राकेश ने यह स्पष्ट किया है कि आधुनिक जीवन की परिस्थितियों ने वैवाहिक संबंधों की आत्मीयता को कमजोर कर दिया है।

मोहन राकेश के नाटकों में पति-पत्नी संबंधों में तनाव आधुनिक समाज की एक गंभीर समस्या के रूप में प्रस्तुत हुआ है। उनके पात्र मानसिक असंतोष, आर्थिक अस्थिरता और व्यक्तिगत आकांक्षाओं के कारण निरतंर संघर्ष करते दिखाई देते हैं। यह तनाव केवल बाहरी परिस्थितियों का परिणाम नहीं है, बल्कि व्यक्ति के भीतर की अधूरी इच्छाओं और आत्म संघर्ष से भी उत्पन्न होता है। 'आधे-अधूरे' में सावित्री और महेंद्रनाथ के संबंध तनाव, कटुता और असंतोष से भरे हुए हैं। सावित्री अपने पति को असफल और कमजोर मानती है, जबकि महेंद्रनाथ स्वयं को उपेक्षित और अपमानित अनुभव करता है। दोनों के बीच पारस्परिक समझ और भावनात्मक निकटता का अभाव है। परिणामस्वरुप उनका संबंध निरंतर टूटन की ओर बढ़ता जाता है। इसी प्रकार 'लहरों के राजहंस' में भी वैवाहिक संबंधों की जटिलता दिखाई देती है। नाटक के पात्र अपने भीतर चल रहे मानसिक दवंदवों और असुरक्षाओं के कारण संबंधों में संतुलन स्थापित नहीं कर पाते। स्त्री पात्र अपने पति के व्यवहार, उपेक्षा और अस्थिरता से मानसिक रूप से पीड़ित दिखाई देती है। मोहन राकेश ने यह दर्शाया है कि आधुनिक दांपत्य जीवन में केवल सामाजिक बंधन पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि संबंधों को जीवित रखने के लिए पारस्परिक विश्वास, सम्मान और संवेदनशीलता भी आवश्यक है। जब यह तत्व समाप्त हो जाते हैं, तब संबंध तनाव और विघटन का शिकार हो जाते हैं।

(ख) सामाजिक यथार्थ

भारतीय समाज लंबे समय तक पुरुष प्रधान व्यवस्था से संचालित रहा है, जहाँ स्त्री को पुरुष की अपेक्षा कम महत्व दिया गया। समाज ने स्त्री के लिए अनेक सीमाएँ निर्धारित की और उसे परिवार तथा परंपराओं के दायरे में बाँधकर रखा। पुरुष प्रधान मानसिकता ने स्त्री को स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार करने के स्थान पर उसे केवल पत्नी, माँ और गृहिणी की भूमिका तक सीमित करने का प्रयास किया। उनके नारी पात्र अपने जीवन में सम्मान, स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता की इच्छा रखती हैं, किंतु समाज उन्हें अपनी इच्छानुसार जीवन जीने की अनुमति नहीं देता। 'आधे-अधूरे' की सावित्री इसका प्रमुख

उदाहरण है। वह आर्थिक और मानसिक रूप से आत्मनिर्भर बनने का प्रयास करती है, किंतु परिवार और समाज उसके व्यक्तित्व को संदेह और आलोचना की दृष्टि से देखते हैं। यदि वह अपने स्वतंत्र पहचान बनाने या अपने अधिकारों की बात करती हैं, तो समाज उसे विद्रोही और असंस्कृत मानने लगता है। यही परिस्थितियाँ स्त्री के भीतर संघर्ष और असंतोष की भावना उत्पन्न करती है। इस प्रकार "मोहन राकेश के नाटकों में व्यक्ति अपने सामाजिक परिवेश से अलग नहीं है; उसकी व्यक्तिगत पीड़ा और विफलता के पीछे तत्कालीन समाज की आर्थिक, पारिवारिक और नैतिक परिस्थितियाँ सक्रिय दिखाई देती हैं।"(2)

स्त्री स्वतंत्रता आधुनिक समाज का एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। शिक्षा और जागरूकता के विकास के बावजूद समाज आज भी स्त्री की स्वतंत्रता को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं कर पाया है। स्त्री के जीवन, व्यवहार, पहनावे, विचार और निर्णयों पर समाज अनेक प्रकार के नियंत्रण स्थापित करता है। यही सामाजिक बंधन उसके व्यक्तित्व के विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं। उनके नाटकों में स्त्री पात्र अपनी स्वतंत्र पहचान और आत्मसम्मान की खोज में संघर्ष करती दिखाई देती है। वे केवल सामाजिक नियमों का पालन करने वाली निष्क्रिय पात्र नहीं है, बल्कि अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेने की आकांक्षा रखती है। किंतु समाज उसकी पहचान को स्वतंत्रता को संदेह की दृष्टि से देखता है और उन्हें परंपरागत भूमिकाओं में सीमित रखना चाहता है। 'आषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका अपने प्रेम और भावनाओं के प्रति ईमानदार है, किंतु सामाजिक परिस्थितियाँ उसे अपने जीवन की इच्छाओं का त्याग करने के लिए विवश कर देती हैं। इसी प्रकार 'आधे-अधूरे' की सावित्री आर्थिक और मानसिक स्वतंत्रता की तलाश करती हैं, परंतु समाज उसके व्यक्तित्व को स्वीकार नहीं कर पाता।

समाज की परंपराएँ और मान्यताएँ व्यक्ति के जीवन को गहराई से प्रभावित करती है। भारतीय समाज में स्त्री के लिए अनेक आदर्श और मर्यादाएँ निर्धारित की गई है। उससे अपेक्षा की जाती है कि, वह परिवार की प्रतिष्ठा, संस्कार और सामाजिक नियमों का पालन करें। परिणामस्वरुप स्त्री अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को दबाने के लिए विवश हो जाती है। उनके नारी पात्र परंपरागत मूल्यों और आधुनिक चेतना के बीच निरंतर संघर्ष करती है। वे अपनी भावनाओं और इच्छाओं को व्यक्त करना चाहती है, किंतु सामाजिक भय और पारिवारिक मर्यादाएँ उन्हें रुकती है। 'लहरों के राजहंस' में स्त्री पात्रों के भीतर यह द्वंद्व स्पष्ट दिखाई देता है। वे सामाजिक अपेक्षाओं और व्यक्तिगत इच्छाओं के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है, किंतु अंततरू मानसिक असंतोष और अकेलेपन का अनुभव करती हैं।

(ग) मानसिक एवं भावनात्मक संघर्ष

प्रेम मानव जीवन की सबसे महत्वपूर्ण भावना है, किंतु जब प्रेम के स्थान पर उपेक्षा, असंवेदनशीलता और दूरी आ जाती है, तब वह व्यक्ति मानसिक रूप से अत्यंत पीड़ित हो जाता है। मोहन राकेश के नाटकों में नारी पात्र प्रेम और भावनात्मक सुरक्षा की आकांक्षा रखती है, किंतु उन्हें अक्सर उपेक्षा और असंतोष का सामना करना पड़ता है। 'आषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका प्रेम और समर्पण के प्रतीक है। वह कालिदास से गहरा प्रेम करती है और उसके जीवन की सफलता में अपना संपूर्ण योगदान देती है, किंतु अंततरू उसे उपेक्षा और अकेलेपन का अनुभव होता है। उसका प्रेम त्याग और प्रतीक्षा में बदल जाता है। यह स्थिति उसके भीतर गहरे भावनात्मक द्वन्द्व को जन्म देती है। इसी प्रकार 'आधे-अधूरे' की सावित्री अपने जीवन में भावनात्मक संतुलन और आत्मीयता की तलाश करती है, परंतु उसे अपनी पति और परिवार से वह सम्मान और प्रेम नहीं मिल पाता जिसकी वह अपेक्षा करती है। परिणामस्वरुप उसके भीतर निराशा, क्रोध और असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है। उनके नारी पात्र प्रेम की आकांक्षा और उपेक्षा की वास्तविकता के बीच निरंतर संघर्ष करते दिखाई देते हैं।

मोहन राकेश के नाटकों में अस्तित्वबोध अत्यंत प्रभावशाली रूप से अभिव्यक्त हुआ है। 'आधे-अधूरे' की सावित्री अपने परिवार की जिम्मेदारियों को निभाने के साथ-साथ अपनी व्यक्तिगत पहचान की भी तलाश करती है। वह केवल पत्नी और माँ की भूमिका तक सीमित नहीं रहना चाहती, बल्कि एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार किए जाने की इच्छा रखती है। किंतु समाज और परिवार इस आकांक्षा को समझने में असफल रहते हैं। 'लहरों के राजहंस' में भी स्त्री पात्र अपने अस्तित्व और आत्मसम्मान के प्रश्नों से जूझती दिखाई देती है। वे अपने संबंधों और सामाजिक भूमिकाओं के बीच स्वयं को खोजने का प्रयास करती है। उनके भीतर यह प्रश्न निरंतर बना रहता है कि उनका वास्तविक जीवन क्या है और वे स्वयं को किस

रूप में देखना चाहती है। आत्मसंघर्ष, प्रेम और उपेक्षा की पीड़ा तथा अस्तित्व और पहचान की तलाश उनके नारी पात्रों के जीवन की प्रमुख समस्याएँ हैं।

प्रमुख नाटकों में नारी मनोविज्ञान का विश्लेषण :

आधे-अधूरे

'आधे-अधूरे' आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार की विघटित स्थिति, पारिवारिक तनाव, दांपत्य असफलता तथा व्यक्ति के मानसिक अकेलेपन का अत्यंत आधारित यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करता है। इस नाटक की केंद्रीय पात्र सावित्री आधुनिक स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है, जो परिवार, समाज और स्वयं के भीतर चल रहे संघर्षों से निरंतर जूझती दिखाई देती है। वह एक ऐसी स्त्री है जो अपने परिवार की आर्थिक और सामाजिक जिम्मेदारियों को निभाने का प्रयास करती है। उसके व्यक्तित्व में आत्मनिर्भरता, संघर्षशीलता और आत्म सम्मान की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वह अपने परिवार को संभालने के लिए निरंतर प्रयासरत रहते हैं, क्योंकि उसका पति महेंद्रनाथ एक कमजोर और अस्थिर व्यक्तित्व का प्रतीक है। सावित्री केवल पारंपरिक गृहिणी नहीं है, बल्कि वह आधुनिक चेतना से युक्त एक ऐसी स्त्री है जो अपने जीवन में स्थिरता सुरक्षा और सम्मान की आकांक्षा रखती है। वह अपने पति की निष्क्रियता और असफलता से असंतुष्ट है। "सावित्री... अपनी बेचैनी और अधूरेपन को नहीं समझ पाती। यही कारण है कि वह लगातार इधर से उधर भटकती रहती है। एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक जाना इसी बात का सूचक है।"[3] यही कारण है कि उसके व्यवहार में कटुता, आक्रोश और असंतोष दिखाई देता है। उसके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह परिस्थितियों के सामने पूरी तरह टूटती नहीं है। वह संघर्ष करती है, विरोध करती है और अपने जीवन की अपूर्णताओं को समझने का प्रयास करती है। किंतु इसके साथ ही उसके भीतर गहरा मानसिक अकेलापन और भावनात्मक असंतुलन भी विद्यमान है। वह अपने जीवन में पूर्णता की तलाश करती है, परंतु उसे हर संबंध अधूरा और असफल प्रतीत होता है। पति-पत्नी के बीच संवादहीनता और पारस्परिक समझ का अभाव उनके दांपत्य जीवन को और अधिक तनावपूर्ण बना देता है। सावित्री का असंतोष केवल व्यक्तिगत नहीं है, बल्कि वह आधुनिक स्त्री की उसे मानसिक स्थिति का प्रतीक है जिसमें वह अपने अस्तित्व, सम्मान और आत्मपहचान के लिए संघर्ष करती है। वह समाज और परिवार द्वारा निर्धारित सीमाओं को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। यही कारण है कि उसके भीतर विद्रोह, असुरक्षा और मानसिक द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न होती है। मोहन राकेश ने सावित्री के माध्यम से आधुनिक नारी की उस त्रासदी को उजागर किया है, जिसमें वह परिवार के बीच रहते हुए भी भावनात्मक रूप से अकेली और असंतुष्ट रहती है। इस प्रकार 'आधे-अधूरे' में सावित्री का चरित्र आधुनिक स्त्री जीवन की जटिलतावों, मानसिक संघर्षों और अस्तित्व बोध का सशक्त प्रतिनिधित्व करता है।

आषाढ़ का एक दिन

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक महाकवि कालिदास के जीवन और उनकी भावनात्मक परिस्थितियों के पृष्ठभूमि पर आधारित है। नाटक में प्रेम, त्याग, महत्वाकांक्षा, संवेदना तथा मानवीय संबंधों की जटिलताओं का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया गया है। इसकी प्रमुख पात्र मल्लिका भारतीय नारी के संवेदनशीलता, समर्पण और आत्मिक प्रेम का प्रतीक है। मल्लिका का प्रेम नाटक की केंद्रीय शक्ति है। वह कालिदास से निस्वार्थ और गहरा प्रेम करती है। उसका प्रेम केवल आकर्षण या व्यक्तिगत सुख तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें आत्मिक समर्पण और त्याग की भावना विद्यमान है। वह कालिदास की प्रतिभा और उसकी रचनात्मकता को समझती हैं तथा उसके विकास और सफलता के लिए स्वयं के सुखों का भी त्याग कर देती हैं। जब कालिदास उज्जैनी जाने का निर्णय लेता है, तब मल्लिका अपने व्यक्तिगत प्रेम से अधिक उसकी भविष्य और प्रतिभा को महत्व देती है। वह चाहती तो उसे रोक सकती थी, किंतु उसने अपने प्रेम को बंधन नहीं बनने दिया। "मल्लिका का यह अटूट

आस्थामय त्याग, चिर-वियोग और आजन्म दुःख उसके अपने निर्णय एवं चुनाव का परिणाम है। वरण की स्वतंत्रता के उपयोग से अनिवार्यतः जुड़े होने के कारण इस चरित्र में एक सार्वजनीन और सार्वकालिक प्रभावशीलता आ गई है।"[4] यही त्याग उसके चरित्र को महानता प्रदान करता है। मल्लिका का प्रेम अत्यंत पवित्र, धैर्यपूर्ण और संवेदनात्मक है। वह कालिदास के प्रति अपनी निष्ठा और समर्पण को अंत तक बनाए रखती है। उसके प्रेम में अधिकार की भावना नहीं, बल्कि आत्मीयता और त्याग का भाव अधिक दिखाई देता है। यही कारण है कि उसका चरित्र भारतीय नारी की त्यागमयी और सहनशील छवि का प्रतिनिधित्व करता है। किंतु उसके जीवन की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि जिस प्रेम के लिए उसने अपना सर्वस्व समर्पित किया, वहीं प्रेम अंततः उसे अकेलापन और पीड़ा प्रदान करता है। यह स्थिति उसके त्याग को और अधिक मार्मिक बना देती है। मल्लिका एक ओर कालिदास की सफलता पर गर्व अनुभव करती है, वहीं दूसरी ओर उसके मन में विरह, अकेलापन और उपेक्षा की पीड़ा भी विद्यमान रहती है। वह अपने प्रेम और आत्मसम्मान के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है, किंतु उसका जीवन प्रतीक्षा और अधूरेपन का प्रतीक बन जाता है। मोहन राकेश ने मल्लिका के माध्यम से स्त्री जीवन की उस विडंबना को उजागर किया है, जिसमें स्त्री अपने संबंधों और भावनाओं के प्रति पूर्ण समर्पित रहती है, किंतु उसे बदले में अक्सर अकेलापन और अपेक्षा प्राप्त होती है। मल्लिका अपने भीतर की पीड़ा को व्यक्त करने के स्थान पर उसे मौन रूप से सहन करती है। यही मौन उसकी संवेदनात्मक गहराई को और अधिक मार्मिक बना देता है।

लहरों के राजहंस

'लहरों के राजहंस' नाटक में मानवीय संबंधों, वैवाहिक जीवन, मानसिक अस्थिरता तथा अस्तित्व संबंधी प्रश्नों का अत्यंत गहन और संवेदनशील चित्रण किया गया है। नाटक की प्रमुख पात्र सुंदरी आधुनिक नारी के उस मनोवैज्ञानिक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है जो प्रेम, अधिकार, असुरक्षा और आत्मसम्मान के बीच निरंतर संघर्ष करती रहती है। वह अपने पति नंद के प्रति प्रेम और अधिकार की भावना रखती है, किंतु उसके व्यवहार और मानसिक स्थिति को लेकर निरंतर असुरक्षा अनुभव करती। नंद का वैराग्य की ओर झुकाव और सांसारिक जीवन से विमुख होना सुंदरी के भीतर भय, असंतोष और अकेलेपन की भावना उत्पन्न करता हैं। सुंदरी का सबसे बड़ा संघर्ष उसके मन के भीतर है। वह एक ओर अपने दांपत्य जीवन को सुरक्षित रखना चाहती है, वहीं दूसरी ओर उसे यह भय भी सताता रहता है कि उसका पति उससे दूर होता जा रहा है। यही द्वंदव उसके मन को अस्थिर और चिंताग्रस्त बना देता है। उसके भीतर प्रेम, अधिकार, असुरक्षा और आत्मसम्मान की भावनाएँ एक साथ सक्रिय रहती है। वह अपने पति को खोना नहीं चाहती, किंतु उसके भीतर यह पीड़ा भी है कि, वह अपने पति के मन को पूरी तरह बाँध नहीं पा रही है। यही स्थिति उसे मानसिक रूप से अत्यंत संवेदनशील और द्वंदवग्रस्त बना देती है।

'लहरों के राजहंस' में वैवाहिक संबंधों की जटिलता और उनसे उत्पन्न मानसिक असुरक्षा का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण हुआ है। सुंदरी और नंद का संबंध केवल पति-पत्नी का संबंध नहीं है, बल्कि वह दो भिन्न मानसिकताओं और जीवन- दृष्टियों का भी संघर्ष है। मोहन राकेश ने यह दिखाया है कि स्त्री का संघर्ष केवल सामाजिक नहीं, बल्कि गहरे मानसिक और भावनात्मक स्तर पर भी होता है। सुंदरी का चरित्र आधुनिक स्त्री के उस अंतर्द्वंद्व को उजागर करता है, जिसमें वह प्रेम, संबंध और आत्मसम्मान के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती हैं।

मोहन राकेश के नाटकों में नारी चेतना

मोहन राकेश के नाटकों में नारी पात्र आत्मनिर्भरता की भावना से प्रेरित दिखाई देती है। वे केवल परिवार पर आश्रित जीवन जीने के पक्ष में नहीं है, बल्कि अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व को स्वतंत्र रूप से स्थापित करना चाहती है। 'आधे-अधूरे' की सावित्री इसका प्रमुख उदाहरण है। वह अपने परिवार की आर्थिक जिम्मेदारियों को निभाने के लिए कार्य करती है और परिवार को संभालने का प्रयासभी करती है। उसका संघर्ष केवल आर्थिक नहीं है, बल्कि वह अपने जीवन में सम्मान और

आत्मनिर्भरता की तलाश भी करती। वह परिस्थितियों के सामने पूरी तरह समर्पण नहीं करती, बल्कि संघर्ष करते हुए अपने अस्तित्व को बनाए रखने का प्रयास करती है। इसी प्रकार 'आषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका भी आत्मिक रूप से अत्यंत मज़बूत और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व की प्रतीक है। वह अपने प्रेम में समर्पित होते हुए भी आत्मसम्मान को बनाए रखती है। उसके भीतर परिस्थितियों को स्वीकार करने की शक्ति और धैर्य दिखाई देता है।

मोहन राकेश के नारी पात्र समाज द्वारा निर्धारित पारंपरिक मान्यताओं और रुढ़ीगत भूमिकाओं को आँख मूँदकर स्वीकारा नहीं। वे अपने जीवन की अपूर्णताओं और अन्याय के विरुद्ध विरोध व्यक्त करती है। सावित्री का चरित्र आधुनिक स्त्री के इसी विद्रोही स्वर का सशक्त उदाहरण है। वह अपने पति की निष्क्रियता, परिवार की विघटित स्थिति और सामाजिक अपेक्षाओं के प्रति असंतोष व्यक्त करती है। उसका आक्रोश यह दर्शाता है कि आधुनिक स्त्री अब केवल सहन करने के लिए तैयार नहीं है, बल्कि वह अपनी अधिकारों और इच्छाओं की अभिव्यक्ति करना चाहती है। यह विद्रोह केवल बाहरी परिस्थितियों के विरुद्ध नहीं है, बल्कि वह स्त्री के भीतर उत्पन्न आत्मचेतना का परिणाम भी है। आधुनिक समाज में सामाजिक मूल्यों और पारिवारिक संरचनाओं में व्यापक परिवर्तन आया है। शिक्षा, औद्योगिकरण, नगरीकरण और आधुनिकता के प्रभाव से स्त्री की भूमिका और उसकी सामाजिक स्थिति में भी परिवर्तन हुआ है। मोहन राकेश के नाटकों में इस बदलते सामाजिक मूल्यों का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। स्त्री अब केवल परिवार तक सीमित नहीं रहना चाहती, बल्कि वह अपनी स्वतंत्र पहचान और आत्मनिर्भरता की तलाश करती है। 'आधे-अधूरे' में आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार की टूटती संरचना और बदलते मूल्यों का अत्यंत यथार्थवादी चित्रण मिलता है। परिवार के सदस्यों के बीच आत्मीयता और विश्वास का अभाव दिखाई देता है। इसी प्रकार 'लहरों के राजहंस' में वैवाहिक संबंधों और मानसिक असुरक्षाओं के माध्यम से आधुनिक जीवन की जटिलताओं को प्रस्तुत किया गया है। मोहन राकेश ने यह स्पष्ट किया है कि बदलते सामाजिक मूल्य स्त्री चेतना को नई दिशा प्रदान कर रहे हैं। आधुनिक स्त्री अब अपने अधिकारों, इच्छाओं और स्वतंत्रता के प्रति अधिक जागरूक हो गई है। यही चेतन उसे संघर्षशील, आत्मनिर्भर और विद्रोही स्वर प्रधान करती है।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

वर्तमान समाज में स्त्री की स्थिति पहले की अपेक्षा अधिक सशक्त और जागरूक अवश्य हुई है, किंतु इसके बावजूद उसे अनेक प्रकार के संघर्षों का सामना करना पड़ रहा है। आज की स्त्री परिवार, कार्य क्षेत्र और समाज- तीनों स्तरों पर संतुलन स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रही हैं। एक ओर वह आर्थिक और सामाजिक रूप से स्वतंत्र होना चाहती है, वहीं दूसरी ओर उस पर पारिवारिक जिम्मेदारियों और सामाजिक अपेक्षाओं का दबाव भी बना रहता है। मोहन राकेश के नाटकों में चित्रित स्त्री संघर्ष वर्तमान समाज की इन्हीं परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करता है। 'आधे-अधूरे' की सावित्री की तरह आज की स्त्री भी आर्थिक जिम्मेदारियों, पारिवारिक असंतोष और आत्मसम्मान के संघर्ष से गुज़र रही है। इसी प्रकार 'लहरों के राजहंस' और 'आषाढ़ का एक दिन' की स्त्रियाँ भावनात्मक असुरक्षा, प्रेम, उपेक्षा और आत्मपहचान की समस्याओं से जूझती दिखाई देती है। "मोहन राकेश के नाटकों में आधुनिक मनुष्य के जीवन की विडंबनाएँ, उसके संबंधों का तनाव और अस्तित्वगत बेचैनी प्रमुख रूप से दिखाई देती है। यही आधुनिक जीवन-बोध उनके नाटकों को अपने समय से आगे ले जाकर आज भी प्रासंगिक बनाता है।"[5]

मोहन राकेश के नारी पात्र केवल काल्पनिक चरित्र नहीं है, बल्कि वे आधुनिक स्त्री की वास्तविक मानसिक और सामाजिक स्थितियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वह केवल पारंपरिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं रहना चाहती, बल्कि अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेने की इच्छा रखती है। किंतु इसके साथ ही उसे संबंधों की टूटन, भावनात्मक अकेलापन, सामाजिक दबाव और मानसिक तनाव जैसी समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। मोहन राकेश के नाटकों में यही आधुनिक जीवन-बोध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

मोहन राकेश ने अपने साहित्य को प्रत्यक्ष रूप से स्त्री विमर्श के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, फिर भी उनके नारी पात्र

आधुनिक स्त्री चेतना और उसके संघर्षों का अत्यंत सशक्त प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके नाटकों की स्त्रियाँ केवल सहनशील और त्याग में नहीं है, बल्कि वे आत्म सम्मानी, संवेदनशील और अपने अस्तित्व के प्रति सजग है। मोहन राकेश की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि, उन्होंने स्त्री को केवल आदर्शवादी दृष्टि से नहीं देखा, बल्कि उसे एक वास्तविक, संवेदनशील और संघर्षशील मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया। उनके नाटकों में स्त्री की मानसिक पीड़ा, भावनात्मक जटिलता और आत्मपहचान के संघर्ष का अत्यंत गहरा चित्रण मिलता है। यही कारण है कि उनका साहित्य आज के स्त्री विमर्श के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रासंगिक माना जाता है।

निष्कर्ष

मोहन राकेश के नाटकों में नारी मनोविज्ञान का चित्रण अत्यंत गहन और बहुआयामी है। उनके पात्र प्रेम, उपेक्षा, अकेलापन, आत्मसंघर्ष और असंतोष जैसी मानसिक अवस्थाओं से गुजरते हैं। 'आधे-अधूरे' की सावित्री, 'आषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका तथा 'लहरों के राजहंस' की सुंदरी आधुनिक स्त्री जीवन की विभिन्न मनोवैज्ञानिक स्थितियों और संघर्षों का प्रतिनिधित्व करती है। ये पात्र यह स्पष्ट करते हैं कि आधुनिक स्त्री केवल सामाजिक बंधनों से ही नहीं, बल्कि अपने भीतर के द्वंदवों और अधूरी आकांक्षाओं से भी निरंतर संघर्ष करती हैं। सामाजिक दृष्टि से मोहन राकेश के नाटक आधुनिक समाज की विडंबनाओं, पारिवारिक विघटन, दांपत्य असंतोष, पुरुष प्रधान मानसिकता तथा बदलते सामाजिक मूल्यों का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत करते हैं। उनके नाटकों में मध्यवर्गीय जीवन के वास्तविक समस्याएँ और संबंधों की जटिलताएँ अत्यंत यथार्थ रूप में सामने आती है। उन्होंने यह दिखाया है कि आधुनिक जीवन में व्यक्ति संबंधों के बीच रहते हुए भी मानसिक रूप से अकेला और असंतुष्ट हो सकता है। विशेष रूप से स्त्री इस विघटन और संवेदनात्मक रिक्तता को अधिक गहराई से अनुभव करती है। उनके नाटकों में संवाद, परिस्थितियाँ और पात्रों की मानसिक प्रतिक्रियाएँ आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से अत्यंत प्रभावशाली प्रतीत होती है। यही कारण है कि उनके नाटक केवल साहित्यिक कृतियाँ न होकर मानव मन के अध्ययन का भी महत्वपूर्ण माध्यम बन जाते हैं। उन्होंने हिन्दी नाटक को पारंपरिक आदर्शवाद से निकालकर आधुनिक यथार्थ और मनोवैज्ञानिक संवेदनाओं की भूमि पर स्थापित किया। इस कारण उन्हें आधुनिक हिन्दी नाटक का प्रमुख शिल्पी माना जाता है। उनके नारी पात्रों की तुलना समकालीन तथा अन्य भारतीय भाषाओं के नाटककारों के स्त्री पात्रों से भी की जा सकती है। इसके अतिरिक्त उनके नाटकों में पारिवारिक विघटन, मानसिक अकेलापन, दांपत्य संबंधों की जटिलता तथा आधुनिक जीवन की विसंगतियों का अध्ययन समकालीन सामाजिक संदर्भों में भी अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। अंततरू कहा जा सकता है कि मोहन राकेश के नाटक आधुनिक नारी जीवन, उसके संघर्षों और उसकी चेतना का अत्यंत प्रामाणिक और संवेदनशील चित्र प्रस्तुत करते हैं। उनका साहित्य न केवल हिन्दी नाटक को समृद्ध बनता है, बल्कि आधुनिक समाज और स्त्री जीवन की जटिलताओं को समझने के लिए भी महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है। इसी कारण उनका साहित्य आज भी उतना ही प्रासंगिक, प्रभावशाली और विचारोत्तेजक बना हुआ है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. एस.प्रीति, मोहन राकेश कृत 'आधे-अधूरे' नाटक में पारिवारिक विघटन, International Journal of Applied Research, 2016
2. डॉ.गिरीश रस्तोगी, मोहन राकेश और उनके नाटक, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008, पृ. 17
3. जयदेव तनेजा, मोहन राकेश : रंगशील और प्रदर्शन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
4. जयदेव तनेजा, मोहन राकेश : रंगशिल्प और प्रदर्शन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 55
5. आभा गुप्ता, समय के निकष पर मोहन राकेश का रंगकर्म विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2008, पृ. 178

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

A Study on the Impact of Jain Literature and Jain Cultural Values on Students

Dr Ambika Pareek
P hd Education MA Psychology, English
Assistant professor SDDM College Sinthel

Introduction

Jain philosophy is one of the oldest philosophies in the world. Its importance is equal to that of other scriptures. Jain literature describes the scientific and moral methods of living life. Although it belongs to a particular religious tradition, it is useful for people of all religions.

The foundation of a human being is laid during the period of student life. Student life is the golden period of human life when the seeds of character, intellect, and personality are sown. It is from this stage that the construction of a bright future begins. In this study, we shall examine the impact of adopting the knowledge of Jain literature and Jain cultural values on the overall development of students.The modern education system has made students economically capable, technologically advanced, and self-reliant. At the same time, it has also made them aware of all kinds of information. However, while providing all these benefits, it has also given students mental stress, depression, falsehood, corruption, moral degradation, and tendencies of loneliness. The aim of education is not merely to acquire professional competence. The objective of education is to create a person whose character is strong, disciplined, truthful, logical in thinking, and pure in thought, and who thinks not only about his or her own development but also about the development of others.

In this context, Jain literature and Jain cultural values provide a highly scientific and practical path. Jain literature is approximately 2,500 years old and is believed to have originated from the teachings of Lord Mahavira in the 6th century BCE. Jain philosophy and literature are enriched with logical reasoning, compassion towards all living beings, and strict self-discipline.

When these values are applied in the lives of students, they bring not only religious development but also psychological, cognitive, and social transformation. Thus, the values, philosophy, and cultural principles of Jain literature are useful in resolving the complexities faced by students.

Theoretical Framework of the Study of Jain Literature and Jain Cultural Values

In Jain literature, three principles have been given to students to make learning easier and to understand cultural values. These three principles are known as the Three Pillars of Jainism, collectively called the Jain Ratnatraya (Three Jewels). These are Samyak Darshan (Right Faith), Samyak Gyan (Right Knowledge), and Samyak Charitra (Right Conduct).

1. Samyak Darshan (Right Faith)

Samyak Darshan aims to make students aware of the truth that the real purpose of human life is self-realization and the welfare of all, not merely the acquisition of material knowledge. It helps students understand what they should do and what they should avoid in life.

2. Samyak Gyan (Right Knowledge)

This principle explains that students should learn to examine every fact or piece of information with an unbiased, prejudice-free, and multidimensional perspective rather than through selfishness or preconceived notions. The knowledge they acquire should not be one-sided or biased but should include multiple dimensions and sources.

3. Samyak Charitra (Right Conduct)

Samyak Charitra explains what the character of students should be and how it should be developed. Students should put the knowledge they acquire into practice in their daily lives and cultivate self-control and discipline.

1. Cognitive and Intellectual Impact of Jain Literature and Cultural Values on Students

The study of Jain literature reveals that it contains many philosophical principles that help in developing higher-order thinking among students.

Anekantavada (Theory of Non-Absolutism)

This principle states that reality cannot be understood from only one perspective. A multidimensional approach is necessary to understand reality completely. Looking at reality from only one viewpoint leaves it incomplete. Two other principles also support this concept. They become applicable in situations where both sides may have valid arguments, helping individuals identify the correct perspective through different viewpoints.

Nayavada and Syadvada

These principles explain that every statement or expression is made from a particular point of view. If a statement does not indicate the perspective from which it has been made, it remains incomplete.

Syadvada

Syadvada explains that any proposition can be understood and clarified from multiple perspectives. Any object or situation may exist or may not exist depending on the point of view. It enables students to understand that there is not always only one absolute answer.

Swadhyaya (Self-Study)

In Jainism, Swadhyaya is considered an internal form of penance. It consists of five stages that promote the cognitive development of students:

1. Pathan/Vachan (Reading and Asking Questions)
2. Anupreksha (Reflection and Contemplation on What Has Been Studied)
3. Amnaya (Revision/Repetition)
4. Dharmopadesha (Sharing Knowledge with Others)

5. Questioning

If students regularly practise these five stages in their daily lives, they develop autonomy and the ability for self-learning.

2. Impact on Psychological Health and Stress Management

In the present era, students experience tremendous pressure due to examination results, which often leads to mental stress. The Jain way of life strengthens the mental health of students. In Jain philosophy, daily meditation is considered highly significant.

According to Jain literature, if a student practises meditation regularly for 20 to 48 minutes every day, the alpha waves of the brain increase. This provides relaxation to the brain and helps students maintain better mental health.

To purify emotions, Jain culture and literature describe four contemplative attitudes:

1. Maitri (Friendliness)

To maintain a feeling of friendship towards all classmates.

2. Pramoda (Appreciation)

To feel happy on seeing the success of others instead of becoming jealous, and to express respect and appreciation towards them.

3. Karuna (Compassion)

According to Jain values, instead of neglecting or troubling a weak, poor, or mentally distressed person, one should extend help and support.

4. Madhyastha (Equanimity/Neutrality)

If a situation arises that is contrary to your thinking, neither become angry nor anxious. Remain calm and neutral.

3. Development of Moral Strength, Integrity, and Character

Jain cultural values emphasize not only external discipline but also the development of inner discipline among students. To cultivate inner discipline, Jain educational philosophy adopts the Anuvrata Path, which consists of five Anuvratas (small vows).

1. Ahimsa Anuvrata (Vow of Non-violence)

   This vow teaches that one should not cause pain to anyone through one's thoughts, speech, or actions.

2. Satya Anuvrata (Vow of Truthfulness)

Its objective is to encourage students to maintain honesty in their academic life.

3. Achaurya Anuvrata (Vow of Non-stealing)

This vow explains that using another person's intellectual or material property without permission is wrong.

4. Brahmacharya Anuvrata (Vow of Self-restraint)

Students should not waste their energy on unnecessary activities but should utilise it in achieving their higher goals.

5. Aparigraha Anuvrata (Vow of Non-possession)

Jain cultural educational philosophy teaches that one should collect only limited and justified material resources according to one's needs and should avoid unnecessary accumulation.

4. Impact on Physical Health and Biological Well-being

Information obtained from Jain literature indicates that the dietary practices and daily discipline of Jain culture are highly similar to the principles of modern chronobiology. These practices have a positive impact on the physical and neurological health of students.

1. Avoidance of Night Meals

According to Jain educational values, eating after sunset is prohibited. Medical science has also established that meals should be taken at least three to four hours before going to bed. This allows the digestive process to be completed before sleep. As a result, during the night the body's energy is used not for digestion but for brain repair and neuro-memory functions. This enhances memory, provides energy to the brain, and enables students to wake up early in the Brahma Muhurta without heaviness or laziness.

2. Satvik Vegetarian Diet

The dietary system of Jain culture is completely non-violent and Satvik (pure vegetarian). Several research studies have indicated that excessive consumption of fatty, Tamasic, or non-vegetarian food affects both the body and behaviour. It creates heaviness in the body and dullness in the mind. In contrast, Satvik vegetarian food reduces irritability and violent tendencies among students, making them calm, peaceful, and thoughtful.

5. Social Environment and Global Citizenship

Jain culture does not only show the path of liberation (Moksha), but the relevance of Jain literature and culture has also been accepted globally. Its values help students become responsible global citizens.

1. Ecological Sensitivity

To make students sensitive towards the environment, the fundamental principle of Jain literature states that all living beings are interdependent and complementary to one another. This develops a sense of environmental responsibility among students.

For example, students learn not to waste water, to save electricity, to use paper wisely, and to minimise the unnecessary use of plastic. Jain philosophy teaches that the same pure soul resides in every human being, animal, and bird, and that all living beings are dependent upon one another.

2. Sustainable Development

Jain culture teaches a value that encourages students to accumulate only as much as they actually need and to avoid unnecessary collection of material possessions. This principle is expressed through the values of Aparigraha (Non-possession) and Self-restraint (Sanyam).

3. Social Harmony and Inclusiveness

Jain literature and cultural values inspire students to develop an inclusive outlook so that they can help and support the disadvantaged sections of society. According to Jain cultural values, all living beings are equal. There should be no discrimination on the basis of caste, class, gender, or social

status. Jain philosophy believes that the same pure soul resides within every living being.

6. Practical Examples of the Integration of Jain Values in Educational Institutions

In the modern era, several traditional and contemporary Jain educational institutions (such as Ladnun University and various Gurukuls) regularly conduct research and experimental studies to measure the impact of cultural values on students' development. In addition, many schools have made Jeevan Vigyan (Science of Living) a compulsory subject in their curriculum. Through meditation, yoga, moral education, and value-based stories inspired by Jain philosophy, efforts are being made to strengthen moral values among students so that learners from all sections of society may benefit.

7. Challenges in Applying Jain Values in Modern Student Life

Although the benefits of Jain cultural values are universal, their implementation in today's modern and westernized society faces several practical challenges. The challenges that have emerged so far are as follows:

1. Circadian Rhythm and Conflict with Study Hours

Nowadays, the trend of late-night study has increased significantly. However, according to Jain values, the consumption of food and water after sunset is prohibited. Long hours of study at night disturb the natural sleep cycle, resulting in reduced energy in the morning. Moreover, when students feel hungry late at night, it becomes difficult to follow Jain dietary rules, particularly the prohibition of night meals.

2. Pressure of Urbanization and Metro Culture

Students living in metropolitan cities, surrounded by pubs, late-night parties, and western lifestyles, often hesitate to maintain a simple, disciplined, and Satvik Jain way of life.

3. Fear of Missing Out (FOMO) and Feelings of Inferiority

After seeing social media posts displaying expensive gadgets, vacations, and glamorous lifestyles of their classmates, many students become dissatisfied with their own simple lives. This often leads to deep stress, frustration, and mental depression.

4. Language Barrier

In today's English-dominated and highly technological environment, students face great difficulty in understanding the profound Jain literature written in ancient Prakrit, Sanskrit, and regional languages and in expressing its relevance in the present context.

5. Compulsion of Academic Validation

In the present education system, grades, top ranks, and academic degrees are often considered the only indicators of success. As a result, students tend to ignore real knowledge and moral values.

6. Demand for Professional Credibility

The corporate world often demands quick success and maximum profit. Under such pressure, students may be forced to compromise their ethical principles and honesty in order to achieve professional success.

7. Anekantavada versus Social Media Trolling

In today's digital world, people become hyper-polarized very quickly on social media. In such an

environment, students who respect different viewpoints according to the principle of Anekantavada often have to face online trolling and psychological pressure.

8. Lack of Supportive Models in Educational Institutions

The infrastructure of most modern schools and colleges is primarily western and career-oriented. Consequently, students rarely find an environment that supports spiritual development, meditation, Samayika (meditative practice), or Satvik dietary habits.

Future Challenges of Jain Literature and Jain Culture in Education

Considering the rapid pace of modernization and technological development, it appears that education will face even greater challenges in the future. With the increasing influence of robotics and artificial intelligence, literature and philosophy may remain only as subjects preserved in libraries, while students may have very little time to study them in depth.

1. Lack of Balance between Modernity and the Jain Curriculum

The growing influence of modernization has deeply affected students. With increasing pressure from technological and professional courses, it has become extremely difficult for students to devote time to Jain literature, the Prakrit language, and religious studies.

2. Distance from In-depth Research and Agama Studies

In the technological era, students have become accustomed to obtaining information through Artificial Intelligence and digital resources. As a result, they may gradually lose the patience required to study ancient palm-leaf manuscripts, Jain scriptures, and classical Jain literature in depth or to conduct serious research on them.

3. Communication Gap between Jain Teachers and Modern Students

A significant gap is likely to emerge between the traditional teaching methods of Jain Acharyas and the thinking pattern of future students who are highly influenced by technology.

Conclusion

Numerous educational and philosophical studies conducted across the world indicate that Jain literature and Jain cultural values are among the most powerful means of strengthening students from

within for the future. While modern education teaches students how to compete with the external world and encourages innovation, Jain education teaches them how to conquer their own inner weaknesses such as anger, attachment, illusion, greed, and ego through self-restraint.

To maintain mental balance, Jain culture offers certain fundamental principles such as Ahimsa (Non-violence), Anekantavada (Non-absolutism), Aparigraha (Non-possession), and Self-restraint (Sanyam). Various stages of this study indicate that if a student combines modern intellectual abilities with the Jain values of Ahimsa, Anekantavada, Aparigraha, and Swadhyaya (Self-study), he or she becomes not only a successful individual but also a responsible citizen capable of guiding society in the right direction.

Considering the increasing corruption, moral decline, unhealthy lifestyles, and deteriorating mental health among students in contemporary society, it is essential to protect future generations from these destructive problems. Therefore, the inclusion of these practical, scientific, humanitarian, and

value-based principles of Jainism in education is not only important but also essential.

References

1. Arihanta Institute Research Blog (2024): Adaptability of Jainism in Contemporary Contexts and Its Influence on Modern Youth.
2. International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT, 2025): From Ahimsa to Academic Integrity: Jain Values in Education — A study on the role of the values of Truth (Satya) and Non-stealing (Achaurya) in preventing plagiarism and promoting academic integrity among students.
3. International Scholarly Research Journal (ISCA, 2025): Jain Philosophy and Education: A Critical Analysis — Research on the development of critical thinking and logical reasoning among students through the principle of Anekantavada.
4. Dr. Naval Singh Jain (Medium Studies, 2025): Why Education Needs Values More Than Ever — A practical analysis of the positive impact of Jain philosophy on modern student psychology.
5. Journal of Emerging Technologies and Innovative Research (JETIR): A study on character building through the practice of Business Ethics and Anuvratas from student life onwards.

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Food, Feast and Female: Gastro-Politics in Mughal India 1500-1700 C.E

Anjali Rajput
M.A (History), University of Delhi
Email Id: anjalirajput1302@gmail.com

Abstract

Human desire to live a blissful materialistic life (indulgence of hunger) brought the concept of heaven into religion. One who does virtues deeds awarded (resides) in heaven. FOOD, is the best way to satisfy our senses, including hunger. It gives us reason to survive, get nutrition and seek pleasure from what we eat daily. It symbolically represents us in society through self-structure, personality, identity, choices, culturally, politically and religiously. Food is a basic unit of survival and evolution of humans and building blocks of large empires and civilization. It will be no excess if we say that food and culinary practices are "mirror of human and society on plates".

In this paper, an attempt is done to examine and reconstruct food and culinary practices which were prevailed during mughal India in different societal aspects especially focusing on gender and religion, with reference of official mughal texts like Humayun nama and Aai'n- i -Akbari.

Historiography

Food, in mughal history is a matter of not just political, economic and cultural significance but, of religion and gender like societal expressions also. Where mughal rulers like Babur, Humayun, Akbar and Jehangir invested a lot during their reign. Their concern, knowledge, participation and investment into the arenas of food defines their religious ethos and gender norms into the imperial mughal society. Feasts and Banquets hosted by ladies of royal *harem* is the evidence of increasing participation and separation of food spaces between gender in late 16th century, as rightly pointed out by Divya Narayann. Ruby Lal, by taking forward Divya Narayan's point, has examined the insistence on food etiquettes and feasts into more "strict" manner, while working on the primary source HUMAYUN-NAMA. Elison Bank, Stephen Dyle, Richard Foltz and Lisa Balabalnillar are some other scholars who have extensively worked on the religious as well as gender aspects of food during mughal india.

Baburnama and Food: The Turko-Mongol Influence

Starting with Babur, the first ruler of mughal dynasty in India was not a religious and sectarian person while entering into india. The time he was the ruler of Samarqand and when he conquered india is a period of 'transition' into his personality from a ruler of single dominated religious country

(Samarqand) to the ruler of multi-religion dominated country(india). Food, till Babur's reign was a way to grow group solidarity, fraternity and loyalty between ruler and his *begs* and *mirzas* (nobles). From his popular memoir - BABURNAMA, there can be seen many instances where Babur organised, participated and cooked food in FEASTS. In these feasts, he shared the space of food with his nobles and the ladies of his royal family. Within Baburnama, there is no reference of food spaces being institutionalised and personalised. Food in the shape of FEAST, was a 'public' and a social activity to engage with nobles, royals, family and common masses for the rulers till early 16th century. It is also important to note here that gender separation regarding food weren't specify till the time of Babur, as we have no clear evidences related to that from contemporary sources. As the descent of Chingiz and Timur, all the feasts of Babur were influenced by the Turko Mongol culture, where food was equally shared among men and women into singular space. Thus, Babur into his memoir Baburnama is seen having royal table of feast food with his aunts, mothers, sisters and daughters. Feasts organized before the victory or conquest indicated towards a "shift" in the religious persona of a ruler as a way to seek legitimacy among subjects. For instance- during the battle of khanwa (1527 A.D), Babur breaking precious metallic vessels (which were auspicious in Sunni Islam) of cooked food items and wine(chahgir) to motivate his soldiers towards victory. He also, organised a feast as victory of "*jihad*" and took the title of "*GHAZI*", after the battle. Lisa Balabalnillar suggests this act of legitimacy, an attempt to understand culture, religion, law and politics in India. Apart from that, the knowledge and wisdom of Babur about flora, fauna and nature shows his keen interest in food and good health as a ruler.

Feasts: Emerging spaces for royal women

Similar to Baburnama, Babur's third daughter - Gulbadan Begum in her *Humayunama* had also mentioned about the hasty feasts (*ma-hazari*) hosted by mughal rulers influenced by central Asian empires, like ottoman, Safavids and Mongolian empires, inspired by caliphs (*Khalifa*) of Arab. Humayun nama is a first contemporary source that talks about mughal food-poison conspiracy into the broader context. Gulbadan begum accused mother of Ibrahim Lodi for the death of her *baba* in Humayun nama - "*It was in this way; this ill- fated demon (his mother) gave tola of poison to one of her maids and said to put it in some way or other into the special dishes prepared for emperor (Babur)*." Poison conspiracy in food added another side of food chronicles related to gender, especially women. In Humayun Nama, the changes in the role of gender into the food spaces can be seen carving out through *harem* and feasts. In the ruling years of Humayun, the increasing in the role of the women in organising and hosting feasts is noticeable feature of food spaces, from the source - Humayun nama. Gulbadan begum talks about many feasts like- the grand mystic feast and feast of the marriage of hindal etc. where women were actively participating in these Royal feasts. *Tuy-i-tilism* or the grand mystic feast is one of the major feasts organised on the occasion of Humayun ascended the mughal throne in December, 1530. Gulbadan begum had mentioned the names of 36 out of 96 women who attended this royal feast. The invited women weren't only the members of mughal harem in fact there were women invited from *harem*s of central Asian empires. This is one of the pieces of evidence of the significance of diversity for the mughal rulers related to food. Not only the Muslim women, but many non-Muslim from different backgrounds of mughal *harem,* are seen participating in the royal feasts during the time of Humayun. The emphasis on Turko Mongol traditions and rituals in the Baburnama is absent in the feasts of Humayun in Humayun

Nama, as he didn't give any

insistence to the old traditions followed by his ancestors. Maybe, it was another attempt by Humayun to seek new identity besides, his ancestral cultures and ethos. Apart from that, the eating manners, etiquettes and norms were starting Hierarchised and codified by Humayun with accordance to *adab* literature. Not just feast and eating practices, Humayun was very concerned about hygiene maintained before and after eating the food according to religion. Humayun nama had examples of Humayun washing his hands before and after with the particular amount of water to be used in accordance of Islamic laws. As a ruler, Humayun was also the follower of noble teachings of Islam, wherein he strictly believed in the sharing of food and water to the needy person even, if he is one of your enemies. Thus, Humayun tried to transform food arenas into more regulated form, for which he was accused of bearing loss of mughal throne and reason of empowering of Sher shah into the east, by Satish Chandra.

In any way, this "wish" of Humayun was further accomplished by Akbar in the course of his reign.

Aai'n- i Akbari: food as 'institutionalised' space

Ibn Khaldun a 14th century philosopher, had accentuated the value of food for human being as necessity of life which undergirds human and society. He had described food as divine creation of God and God fashioned man in such a form that can live and subsist only with the help of the food. Similarly, Abu'l Faz'l in his Aai'n-i Akbari, had emphasized on the value of food in the subsistence of human being (Man) - "*as equilibrium of man's nature, the strength of the body, the capacity of receiving external and internal blessings, and acquisition of worldly and religious advantages, depend ultimately on proper care being shown for appropriate food. This knowledge distinguishes man from beasts,* ". This is how abu'l faz'l linked the food with the image of ideal ruler in his work aai'n-i akbari. Akbar's reign witnessed the transformation of food domains from informal to formalised version. The kitchen, feasts and food etiquettes were started becoming more codified into the late sixteenth and seventeenth centuries. From akhlaqi norms to ni'amatnama and ardhkathanak like persian and Jain literatures, Akbar was inspired by the huge variety of religious sources regarding eating etiquettes of food. Abu'l faz'l had mentioned the imperial mughal kitchen as a space where Akbar had given much attention and wise regulations regarding to this "department". Akbar's instances of dining privately in a palace on normal days and publicly with nobles indicates the privatisation of food spheres where women were less concerned. The activeness of women of *harem* examined in the Humayun's era regarding royal feasts is less featured into the accounts of Akbar. Akbar was a very ambitious ruler in terms of expanding mughal authority in the vast land of india. In this context, instead of solely depending on Turko Mongol traditions, Akbar adopted the "fusion" Of various food traditions popular among the religions of india. There are many evidences where abu'l faz'l had mentioned about his multiple religious beliefs of Akbar about food. Abu'l faz'l in his work Aai'n-i akbari, talks about Akbar's habit of drinking hindu holy water "*gangajal*" while travelling. He had also portrayed the diversity of religion into the preparation of food for Akbar, cooked from the water of multiple holy rivers like- Jamuna, Chenab and ganga.

Another significant aspect of food during Akbar's era is abstinence (*vrat* or *roza*) preference by Akbar emphasized by abu'l faz'l also. Abstinence was a ritualistic practice in religion like- Islam and Hinduism adopted by Akbar, on auspicious occasions, holy months, solar and lunar eclipse, etc.

Whenever the long fasts of Akbar were ended, women from mughal *harem* sent various dishes of meat for Akbar. The similar gestures were done by the mughal princes and nobles of Akbar, as per the aai'n-i akbari.

Regarding to the feasts, Akbar's feasts are compared with feasts of HATIM, an Arab Christian poet famous for his lavicious and wealthy feasts. Such comparisons are the evidence of preference to wealth and authority through feasts.

The channelisation of food departments which was genealogically hierarchical was changed during the time of Akbar. He appointed the trained and experienced cooks from all over the world (*pazandgan-i-har kishwar*) who can prepare variety of dishes for the ruler. In his own administration, Akbar had an imperial officer - *mir bakawal* as master of kitchen who had the huge team of treasures, tasters, writers of recipe, sub-bakawal, diwan-i-buyutat to preparing food for emperor. They prepared three types of food - *sufiyana*(vegetarian), meat food and spiced food which placed before ruler accordingly. The authoritative control over the norms related to food is an attempt of portrayal of masculine, divine and sovereign figure of Akbar as an emperor by abu'l faz'l. Akbar's dining was a part of imperial etiquettes which started from the religious prayer, then sharing of first part of food to *dervishes* (sufi saints) and finally ended with the end of dining with prayer. Akbar has also seen doing food contribution to many sacred places like *khanqahs* of chishti sufis and many hindu temples. Ai'n-i akbari had mention of some food items which were religiously important and were cost high in the *bazars* for common people. For instance- saffron (*kesar*), ghee and butter, etc. Late sixteenth century was also the time of the coming up of many european travellers like- Nikitin, Monserrate and Manucci who had written about the food and culinary practices of common masses in mughal india into his travel accounts. Similarly, abu'l faz'l had also given the details about diverse food practices of subject population in the ruling years of Akbar differed from one state to another in accordance of religion, culture and region like- fish in bengal, meat preference in South and wheat *chapatis* in North. In toto, where diversity of religion was visible in food on one hand, there were continues decreasing of women participation of food on the other hand was going on, in the sixteenth century.

From the late seventeenth centuries onwards, food was becoming the "department" of social and economic concern of rulers where rulers found an opportunity to show the materialistic wealth through the feast.

Conclusion

To sum up, food in the form of social gatherings and feasts in early mughal period (Babur to Humayun), acted as a social hierarchical, genealogical and differentiated spaces which functioned to buttress the prestige of ruling mughal dynasty.

Religion, in food arrangements, banquets, seating arrangements and feasts played an important factor to communicate with population by ruler. Whereas, gender roles through feasts mentioned in Humayun Nama were started fluctuating according to the participation in food festivities. Ruling era of Akbar, was the interim phase of the regulation of food as "department", codification of eating norms, manners and separation of gender regarding food. Food is a journey which witnessed many transformations from Babur to Akbar during sixteenth to seventeenth centuries. Babur sticked to the timurid and Mongolian culture and ethos for food. When there was a sectarian divide between

Shias and Sunnis into central Asian empires, Babur presented equal status to both the religious nobles into his organised feasts in his political court. He even shares his food among his nobles and women of royal family during feasts. In the ruling years of Humayun, the insistence on Turko Mongol culture seems low into the feasts organised by Humayun. Feasts emerging as important ceremonial function of birth, marriages and birthdays of family of emperor is another significant aspect of food as mention of pending feast of Hindal's marriage given by Humayun in hij.938 on the recommendation of Khanzada begum. Also, in the Humayun Nama text, the active participation of women in organising royal feasts into mid sixteenth centuries. Whereas, in aai'n-i akbari the recognition of food spaces as separate arena of administration can be clearly seen. Akbar's emphasis on codification of food mannerism, separation of food as department, fusion of various religious culinary practices and adoption of various food rituals of dominant religions, like- Hinduism and Sufism were attempts of Akbar to establish power, authority and sovereignty of mughal dynasty in all over india. After Akbar, Jehangir tried to maintain the concern and spending on the food areas just as his predecessors. As we have *jahangirnama,* as a contemporary source about the vast knowledge of Jehangir, about food especially various kind of meat. He tried to acknowledge the biological functions of the body of games he hunted while travelling which extended his knowledge about food. He tried to picturise his wisdom about food through his paintings also. With the coming up of Shah Jahan onto the mughal throne, we can see another religious influence added on the food table of mughals as Christian. Many Portuguese, Dutch and English travellers started coming to india during late 16th to mid-17th century. They came along with their different understanding and culture related to food in India which finally got place into the imperial food of mughals amidst of the reign of Shahjahan. Late mughal chronicles had allude of some european food items which added into the course meal of late mughal rulers. Above all, gender relations in the milieu of food were becoming more distinct in terms of less interaction and engagement of women in food related festivities from the time of Aurangzeb.

Bibliography

1. Beveridge, Annette Susannah. 1922. The Baburnama (Memoirs of Babur), Volume-1. Luzac & Co., 46, Great Russell Street, London.
2. Beveridge, Annette Susannah. 1902. History Of Humayun - Humayun-nama by Gul badan begum. Oriental translation fund, new series-1, London.
3. Blochmann, H. 1997. The A-IN-I AKBARI, volume-1 by Abul-Fazl Allami. Low price publications, Delhi-110052
4. Mukhia, Harbans. *The Mughals of India*. Malden, MA: Blackwell Publishing, 2004.
5. Narayanan, Divya. "Cultures of Food and Gastronomy in Mughal and post-Mughal India." PhD diss., Heidelberg University, 2015.
6. Tandon, Shivangini. "Gastronomy, Household and State Formation in Early Modern South Asia: Representation of Food and Feasts in Indo-Persian Sources." *International Journal of South Asian Studies* 11 (2021): 4–17. https://doi.org/10.11384/ijsas.1006.
7. Vermani, Neha. 2022. "From the Cauldrons of History: Labour Services at Mughal Dining and

Kitchen Spaces." *South Asian History and Culture* 13 (4): 445–65. doi:10.1080/19472498.2022.2050027.

References

1. Chandra, Satish. 2007. History Of Medieval India. Orient Black Swan Private Limited, New Delhi-110002.
2. Rosenthal, Franz. Ibn Khaldun - The Muqaddimah: An introduction to history. Princeton University Press, United Kingdom.

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह के काव्य-संग्रह 'बबुरीवन' में मार्क्सवादी चेतना का वैचारिक अध्ययन

सीमा कुमारी
सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी-विभाग
गोपेश्वर महाविद्यालय हथुआ, गोपालगंज।
मो० नं०-8709097558
ई-मेल-seemakumari22529@gmail.com

सारांश

कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह हिंदी कविता के उन महत्त्वपूर्ण कवियों में हैं, जिनकी रचनात्मक चेतना सामाजिक यथार्थ, शोषित-वर्ग की पीड़ा, वर्ग-संघर्ष और परिवर्तन की आकांक्षा से गहरे रूप में जुड़ी हुई है। उनका काव्य-संग्रह 'बबुरीवन' इस दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। 'बबुरीवन' केवल बबूल के वन का द्योतक नहीं है, बल्कि कवि के यहाँ यह समकालीन सामाजिक व्यवस्था, उसके अंतर्विरोधों, शोषण, पीड़ा और संघर्ष का सशक्त प्रतीक बनकर उपस्थित होता है। संग्रह की कविताओं में शोषक और शोषित वर्ग के बीच का द्वंद्व, सर्वहारा-वर्ग की विवशता, वर्ग-चेतना का अभाव तथा परिवर्तन की आकांक्षा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। प्रस्तुत आलेख में 'बबुरीवन' के प्रतीकात्मक अर्थ, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह की मार्क्सवादी वैचारिक प्रतिबद्धता तथा उनकी कविता में अभिव्यक्त वर्ग-संघर्ष और जनचेतना का अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द : बबुरीवन, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, मार्क्सवाद, वर्ग-संघर्ष, सर्वहारा-वर्ग, वर्ग-चेतना, शोषण, प्रतिबद्धता, जनचेतना।

प्रस्तावना

'बबुरीवन' कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह के काव्य-संसार का एक महत्त्वपूर्ण प्रतीक है। 'बबुरीवन' दो शब्दों—'बबुरी' और 'वन'—के संयोग से निर्मित है। 'वन' का अर्थ है—बहुत-से पेड़-पौधों से आच्छादित विस्तृत प्राकृतिक क्षेत्र, जहाँ पेड़ों, झाड़ियों, लताओं आदि की अधिकता होती है। इस प्रकार 'बबुरीवन' का शाब्दिक अर्थ हुआ—बबूल का वन अर्थात् बबूल के पेड़ों की सघनता वाला क्षेत्र। बबूल सामान्यतः कठोरता और काँटों के लिए जाना जाता है। उसके तने और शाखाओं पर स्थित काँटे उसके समीप जाने में सावधानी की माँग करते हैं। कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह ने इसी बबूल और उसके काँटों को व्यापक सामाजिक यथार्थ के प्रतीक के रूप में ग्रहण किया है। उनके लिए 'बबुरीवन' केवल प्राकृतिक परिवेश नहीं, बल्कि ऐसा सामाजिक संसार है जिसमें मनुष्य अनेक प्रकार के शोषण, अभाव, असमानता और संघर्ष से घिरा हुआ है। इस प्रकार 'बबुरीवन' का प्रतीक सामाजिक व्यवस्था की जटिलता और उसके अंतर्विरोधों को व्यक्त करता है। कवि का समूचा रचनात्मक संसार सामाजिक प्रतिबद्धता से निर्मित है। विशेषतः 'बबुरीवन' में मार्क्सवादी विचारधारा की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। कवि के

यहाँ सर्वहारा-वर्ग की पीड़ा, शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध, वर्ग-चेतना तथा सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा प्रमुख रूप से अभिव्यक्त हुई है।

मार्क्सवाद उस विचारधारा का नाम है जिसका संबंध मुख्यतः कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स और बाद में लेनिन आदि विचारकों से है। मार्क्सवादी चिंतन के दो प्रमुख आधार हैं—द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद प्रकृति, समाज और मानव-जीवन में परिवर्तन तथा अंतर्विरोधों की प्रक्रिया को समझने का आधार प्रदान करता है, जबकि ऐतिहासिक भौतिकवाद मानव समाज के विकास को उसकी भौतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के संदर्भ में देखने की दृष्टि देता है।

मार्क्सवादी दृष्टि में किसी भी समाज की संरचना को समझने के लिए उसकी आर्थिक व्यवस्था और उत्पादन-प्रणाली को समझना आवश्यक है। इस संदर्भ में बच्चन सिंह लिखते हैं—"मार्क्सवादियों की दृष्टि में समाज का बुनियादी आधार आर्थिक है; साहित्य, कला, संगीत, राजनीति, दर्शन, कानून आदि ऊपरी ढाँचे (सुपर स्ट्रक्चर) हैं। आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन आने पर ऊपरी ढाँचे में भी परिवर्तन आता है। किन्तु परिवर्तन की प्रक्रिया काफी जटिल है।"[1]

उत्पादन-प्रणाली के साथ उत्पादन-संबंधों की अवधारणा भी महत्त्वपूर्ण है। उत्पादन के साधनों पर अधिकार रखने वाला वर्ग और उन साधनों के लिए श्रम करने वाला वर्ग समाज में असमान संबंधों को जन्म देते हैं। मार्क्सवादी चिंतन में इन्हीं संबंधों से शोषक और शोषित वर्ग की संरचना विकसित होती है। मार्क्सवादी दृष्टि में सामाजिक परिवर्तन के लिए शोषित वर्ग में वर्ग-चेतना का विकास आवश्यक है। जब शोषित वर्ग अपने शोषण और वास्तविक सामाजिक स्थिति को समझता है तथा अपने सामूहिक हितों के प्रति जागरूक होता है, तब परिवर्तन की संभावना उत्पन्न होती है। मार्क्सवादी भौतिकवाद 'हृदय-परिवर्तन' की अपेक्षा भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन को अधिक महत्त्व देता है। बच्चन सिंह के शब्दों में—"मार्क्स ने कहा है कि मनुष्य की चेतना उसके जीवन को निर्धारित नहीं करती, बल्कि उसका सामाजिक अस्तित्व उसकी चेतना को निर्धारित करता है।"[2]

अतः मार्क्सवादी साहित्य का मूल आग्रह सामाजिक यथार्थ की पहचान, शोषण के कारणों की पड़ताल तथा परिवर्तन की चेतना के विकास से जुड़ा हुआ है। 'बबुरीवन' का अध्ययन इसी वैचारिक पृष्ठभूमि में अधिक सार्थक ढंग से किया जा सकता है।

कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह का जन्म 4 जनवरी 1928 ई. को बिहार के बक्सर जिले के चौगाईं गाँव में हुआ था। वे बीसवीं शताब्दी के महत्त्वपूर्ण कवियों में गिने जाते हैं। वे प्रतिबद्ध सामाजिक मूल्यों के प्रतिनिधि रचनाकार और चिंतक थे। उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. की शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने बंबई के एक महाविद्यालय तथा कलकत्ता के एक हिंदी विद्यालय में अध्यापन कार्य किया। सन् 1969 से 1990 ई. तक वे पटना के अनुग्रह नारायण कॉलेज में हिंदी के व्याख्याता रहे। उस समय की प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओं में उनकी कविताएँ, विश्लेषणात्मक निबंध, वैचारिक लेख और संस्मरण आदि प्रकाशित होते रहे। साहित्यिक बहसों में भी उन्होंने सक्रिय भागीदारी की। 24 जून 1992 ई. को ब्रेन ट्यूमर के कारण दिल्ली में उनका निधन हुआ। उनके निधन के बाद हिंदी की कई पत्रिकाओं ने उन पर विशेषांक प्रकाशित किए। उनकी प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ हैं—

इतिहास का संवाद (1979 ई.),बबुरीवन (1989 ई.),पत्थरों का गीत (2005 ई.), बोलो मोहन गाँजू (2008 ई.),प्रतिनिधि रचनाएँ, काव्य भाषा का वाम-पक्ष— आलोचना, कविता का संघर्ष — आलोचना।

इन रचनाओं के माध्यम से कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह ने सामाजिक यथार्थ, जनजीवन, वर्गीय असमानता तथा मार्क्सवादी विचारधारा से संबद्ध प्रश्नों को अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की।

सन् 1989 ई. में प्रकाशित 'बबुरीवन' कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह के काव्य-संसार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण संग्रह है। यह वह दौर था जब देश को स्वतंत्र हुए चार दशक से अधिक समय बीत चुका था, लेकिन सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ समाप्त नहीं हुई थीं। आम आदमी, विशेषतः श्रमजीवी और वंचित वर्ग, अनेक प्रकार के अभावों और शोषण से जूझ रहा था।

ऐसे सामाजिक परिवेश में 'बबुरीवन' शीर्षक अपने आप में अत्यंत अर्थगर्भित हो उठता है। बबूल का पेड़ काँटों से भरा होता है। उसके समीप जाना सावधानी की माँग करता है। कवि ने इसी काँटेदार संरचना को सामाजिक व्यवस्था के रूपक में रूपांतरित किया है। जिस प्रकार बबूल के काँटे व्यक्ति को चोट पहुँचा सकते हैं, उसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था के अंतर्विरोध और शोषण आम मनुष्य के जीवन को पीड़ित करते हैं।

इस प्रकार 'बबुरीवन' में बबूल सामाजिक व्यवस्था का और काँटे शोषण, अभाव, असमानता तथा सामाजिक अंतर्विरोधों का प्रतीक बन जाते हैं। 'बबुरीवन' का अर्थ इसलिए केवल भौतिक वन नहीं, बल्कि ऐसा सामाजिक परिवेश है जिसमें मनुष्य निरंतर संघर्ष और असुरक्षा से घिरा हुआ है।

कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह की कविता में मार्क्सवादी चेतना किसी आरोपित विचार के रूप में नहीं, बल्कि जीवनानुभव और सामाजिक यथार्थ के रूप में अभिव्यक्त होती है। उनके चिंतन के केंद्र में सर्वहारा-वर्ग की पीड़ा और उसके जीवन की विडंबनाएँ हैं। 'बबुरीवन' की भूमिका के रूप में प्रयुक्त कविता में कवि स्वयं को 'बबुरीवन' में खड़ा हुआ बताते हैं। वे अपने साथ उन लोगों को भी देखते हैं जो "बे-घर और बे-वतन" होने के लिए अभिशप्त हैं। इस संदर्भ में कवि लिखते हैं–

"मैं बबुरीवन में खड़ा हूँ
और बबुरीवन से बोल रहा हूँ
साथ में और लोग भी हैं
जो मेरे जैसे ही
बे-घर और बे-वतन होने के लिए
अभिशप्त हैं।"[3]

यहाँ 'बबुरीवन' शोषित और विस्थापित मनुष्यों के जीवन-परिवेश का प्रतीक बन जाता है। कवि की दृष्टि केवल दिखाई देने वाले यथार्थ तक सीमित नहीं है; कवि उस अदृश्य पीड़ा को भी महसूस करते हैं जिसे शब्दों में पूरी तरह व्यक्त करना कठिन है। इसीलिए कविता में हताशा और असमर्थता के साथ-साथ परिवर्तन की आकांक्षा भी दिखाई देती है। कवि आगे सामूहिक संघर्ष की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं–

"इस दुःख को झेलने–
झेलकर उसके पीछे खड़ी हताशा से लड़ने–
और लड़कर फिर आगे का रास्ता तय करने में उम्मीद है, आप सब भी साथ होंगे।"[4]

यहाँ कवि की चेतना निराशा में समाप्त नहीं होती। वह संघर्ष और सामूहिकता के माध्यम से आगे बढ़ने की संभावना तलाशती है। यही बिंदु उनकी मार्क्सवादी प्रतिबद्धता को रेखांकित करता है।

मार्क्सवादी विचारधारा में वर्ग-संघर्ष सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख आधार है। कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह की कविता में भी समाज को वर्गीय असमानताओं के संदर्भ में देखा गया है। उनके यहाँ शोषित वर्ग की स्थिति केवल करुणा का विषय नहीं है, बल्कि सामाजिक व्यवस्था की आलोचना का आधार है।

कवि को इस बात का दुःख है कि श्रम और संघर्ष करने वाले लोगों के अनुभवों को अभी तक वह भाषा नहीं मिल सकी है, जिसके माध्यम से उनकी वास्तविक पीड़ा व्यापक समाज तक पहुँच सके। वे लिखते हैं–

"सोचता हूँ।
फिर टूट-टूट कर जुटता और सोचता हूँ–
अपने अभियान में जो अब तक हम विफल होते रहे, क्यों?"[5]

इसी क्रम में कवि मार्क्स और लेनिन के विचारों को भारतीय सामाजिक यथार्थ से जोड़ने की आवश्यकता पर बल देता है। वह भारतीय परिस्थितियों को समझे बिना किसी विचारधारा की यांत्रिक पुनरावृत्ति के पक्ष में नहीं है। उसके लिए भारतीय समाज की अपनी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ हैं, जिनके संदर्भ में परिवर्तन की रणनीति और वैचारिक

चेतना को समझना आवश्यक है।

इस प्रकार कुमारेन्द्र जी का मार्क्सवाद केवल सैद्धांतिक मार्क्सवाद नहीं, बल्कि भारतीय जमीन से जुड़ा हुआ मार्क्सवाद है। उनकी दृष्टि में भारत की अपनी मिट्टी, अपनी सामाजिक संरचना और अपने जनजीवन की विशिष्टता को समझना आवश्यक है। 'बबुरीवन' की कविताओं में शोषित-वर्ग की सबसे बड़ी समस्या केवल उसका आर्थिक शोषण नहीं, बल्कि उसके भीतर व्याप्त निष्क्रियता और वर्ग-चेतना का अभाव भी है। कवि इस स्थिति को अत्यंत प्रभावशाली प्रतीकों और बिंबों के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं–

"अंधे हैं
कुछ नहीं देखते।
कुछ भी समझते नहीं,
पागल हैं।
अंधेरे से लड़ते हैं, मरते हैं–टेरते हैं सूरज को।"[6]

इन पंक्तियों में 'अंधापन' और 'अंधेरा' केवल भौतिक स्थिति नहीं हैं। वे सामाजिक चेतना के अभाव और शोषणकारी व्यवस्था के प्रतीक हैं। 'सूरज' यहाँ जागरण, चेतना और परिवर्तन की संभावना का प्रतीक माना जा सकता है।

कवि आगे कहते हैं–

"वे बबुरीवन को और बबुरीवन उनको जगाता है।"[7]

यहाँ 'जगाना' अत्यंत महत्त्वपूर्ण क्रियात्मक बिंब है। 'बबुरीवन' स्वयं शोषित मनुष्य की चेतना को जागृत करता है और शोषित मनुष्य भी अपने संघर्ष के माध्यम से उस सामाजिक यथार्थ को अर्थ देता है। इस प्रकार कविता में अंधकार से प्रकाश, निष्क्रियता से चेतना और चेतना से संघर्ष की प्रक्रिया दिखाई देती है।

कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह की कविता की विशेषता यह है कि वे जटिल सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ को सामान्य जीवन से जुड़े प्रतीकों और बिंबों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। उनकी कविता की भाषा दुरूह या कृत्रिम नहीं है। वह सहज, बोलचाल के निकट और पाठक के जीवनानुभव से जुड़ी हुई है। डॉ. अमरनाथ के अनुसार–"प्रतीक का शाब्दिक अर्थ 'चिह्न' है। यह अंग्रेजी के सिंबल (Symbol) शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। 'प्रतीक' ऐसे चिह्न अथवा शब्द चिह्न को कहते हैं जिसके माध्यम से अन्य वस्तु का बोध होता है।"[8]

'बबुरीवन' में 'बबूल' और उसके 'काँटे' सबसे प्रमुख प्रतीकात्मक संरचना निर्मित करते हैं। इसके अतिरिक्त 'अंधेरा', 'सूरज', 'खड़ा होना', 'जागना', 'खून', 'मिट्टी' आदि शब्द अपने सामान्य अर्थ से आगे बढ़कर व्यापक सामाजिक और वैचारिक अर्थ ग्रहण करते हैं। कवि के यहाँ प्रतीक केवल सौंदर्य-सृजन के साधन नहीं हैं, वे सामाजिक यथार्थ को समझने की दृष्टि प्रदान करते हैं। इसलिए 'बबुरीवन' के प्रतीक और बिंब उसकी मार्क्सवादी चेतना को अधिक प्रभावशाली बनाते हैं।

कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह की दृष्टि में कविता केवल सौंदर्यबोध या मनोरंजन का माध्यम नहीं है। कविता अपने समय, समाज और मनुष्य के संघर्षों से जुड़ी हुई रचनात्मक अभिव्यक्ति है। कविता इतिहास नहीं होती, लेकिन इतिहास की अनुभूतियाँ उसमें जीवित रहती हैं। इसीलिए कवि के लिए कविता के पक्ष में खड़ा होना अपने समय और समाज के पक्ष में खड़ा होना है।

उनकी कविता अपनी जमीन और अपने 'जमीर' से जुड़े रहने का आग्रह करती है। यह प्रतिबद्धता ही उन्हें जनवादी और मार्क्सवादी चेतना से जोड़ती है। कवि के यहाँ साहित्य का उद्देश्य केवल यथार्थ का चित्रण करना नहीं, बल्कि यथार्थ को बदलने की चेतना उत्पन्न करना भी है। इस दृष्टि से 'बबुरीवन' का काव्य-संसार सामाजिक यथार्थ के प्रति सजग हस्तक्षेप है। कवि शोषित वर्ग की पीड़ा को सामने लाते हुए उसके भीतर प्रतिरोध और परिवर्तन की संभावना को भी रेखांकित करते हैं।

कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह साठ के दशक में उभरने वाले महत्त्वपूर्ण कवियों में हैं। उनकी रचनात्मक प्रतिबद्धता किसी

क्षणिक राजनीतिक आग्रह का परिणाम नहीं है, बल्कि उनकी समग्र काव्य-दृष्टि का आधार है। उनके लिए प्रतिबद्ध कवि की पहली लड़ाई अपनी जमीन, अपने समय और अपने ज़मीर के प्रति ईमानदार बने रहने की है। उनकी कविता के केंद्र में आम आदमी और सर्वहारा-वर्ग की पीड़ा है। वे सामाजिक असमानता को केवल देखते नहीं, बल्कि उसके कारणों को समझने का प्रयास भी करते हैं। यही कारण है कि उनकी कविता में शोषण के चित्रण के साथ वर्ग-चेतना और परिवर्तन की आकांक्षा भी दिखाई देती है। 'बबुरीवन' में कवि का आक्रोश, हताशा और निराशा सामाजिक यथार्थ की जटिलता से उत्पन्न होते हैं, लेकिन ये भाव अंततः निष्क्रिय निराशा में परिवर्तित नहीं होते। उनके भीतर परिवर्तन की संभावना बनी रहती है। यही उनकी कविता की रचनात्मक शक्ति है।

निष्कर्षतः कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह का 'बबुरीवन' केवल एक काव्य-संग्रह का शीर्षक नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक यथार्थ का सार्थक प्रतीक है। बबूल के काँटों के माध्यम से कवि ने ऐसी सामाजिक व्यवस्था का चित्र प्रस्तुत किया है जिसमें शोषित और वंचित मनुष्य निरंतर संघर्ष, अभाव और असमानता से जूझ रहा है।

'बबुरीवन' में मार्क्सवादी चेतना मुख्यतः वर्गीय असमानता, शोषक-शोषित संबंध, सर्वहारा-वर्ग की पीड़ा, वर्ग-चेतना, सामूहिक संघर्ष और सामाजिक परिवर्तन के रूप में अभिव्यक्त हुई है। कवि का मार्क्सवाद भारतीय सामाजिक यथार्थ से जुड़ा हुआ है। वे मार्क्सवादी सिद्धांतों को भारतीय परिस्थितियों की विशिष्टता के साथ देखने का आग्रह करते हैं। कवि के यहाँ 'अंधेरा' शोषण और चेतना के अभाव का, जबकि 'सूरज' जागरण और परिवर्तन का प्रतीक है। इसी प्रकार 'बबुरीवन' स्वयं ऐसी सामाजिक संरचना का प्रतीक है जिसके काँटे आम आदमी के जीवन को निरंतर घायल करते हैं। किंतु कवि इस यथार्थ के बीच भी सामूहिकता और संघर्ष की संभावना को जीवित रखते हैं। कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह की रचनात्मक उपेक्षा हिंदी साहित्य के लिए विचारणीय प्रश्न है। उनके काव्य में निहित सामाजिक सरोकार, जनपक्षधरता और मार्क्सवादी चेतना गंभीर आलोचनात्मक अध्ययन की अपेक्षा रखते हैं। 'बबुरीवन' इसी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण काव्य-संग्रह है। यह संग्रह हमें बताता है कि साहित्य केवल समाज का प्रतिबिंब नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना के विकास और परिवर्तन की आकांक्षा का माध्यम भी हो सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि 'बबुरीवन' कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह की मार्क्सवादी जनचेतना, सामाजिक प्रतिबद्धता और परिवर्तनकारी दृष्टि का सशक्त काव्यात्मक दस्तावेज है।

संदर्भ-सूची

1. सिंह, बच्चन, आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द रू वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2018, पृ०सं०-85.
2. वही.
3. सिंह, कुमारेन्द्र पारसनाथ, बबुरीवन, तनसुक लेन, कलकत्ता, प्रथम संस्करण : 1989, पृ०सं०-03.
4. वही, पृ०सं०-04.
5. समर रेखा : वार्षिकांक अक्टूबर 1992, आनंदपुरी पश्चिम बोरिंग कनाल रोड, परना, पृ० सं० - फ्रंट कवर पृष्ठ.
6. सिंह, कुमारेन्द्र पारसनाथ, बबुरीवन, तनसुक लेन, कलकत्ता, प्रथम संस्करण : 1989, पृ० सं०-42.
7. वही.
8. अमरनाथ, डॉ० हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करणः 2015, पृ०सं०-228.

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

21वीं सदी के हिंदी कहानियों में वृद्ध विमर्श

गीतु. एम
शोधार्थी
श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी
मो० : 8111810107
geethzz-1994@gmail.com

इक्कीसवीं सदी में बुजुर्गों की स्थिति दिन-ब-दिन चिंतनीय और विकट रूप ले रही है। एक समय था जब हमारे समाज में बुजुर्गों को अत्यंत आदर की दृष्टि से देखा जाता था। वे परिवार के सर्वेसर्वा होते थे और उनका हर निर्णय सर्वोपरि माना जाता था। वे नैतिक मूल्यों और संस्कारों की पहचान होने के साथ-साथ परिवार, समाज तथा राष्ट्र का मार्गदर्शन करते थे। उनके अनुभवों का अमूल्य खजाना जीवन में सही राह दिखाने और सफलता पाने का आधार बनता था।

पारंपरिक रूप से बुजुर्गों की उपस्थिति ही संयुक्त परिवारों को एकजुट रखती थी। हालाँकि, समय के साथ संयुक्त परिवार टूट रहे हैं और एकल परिवारों का चलन बढ़ रहा है। आधुनिक जीवन की आपाधापी, व्यस्तताओं और रोजगार की तलाश में युवाओं के पलायन ने वृद्धों को एकाकी, असहाय और असुरक्षित बना दिया है। वास्तव में, बुढ़ापे में भौतिक सुख-सुविधाओं की तुलना में भावनात्मक सहारे की अधिक आवश्यकता होती है। किंतु बिखरते परिवार, शहरीकरण और पश्चिमी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण हमारे बुजुर्ग हाशिए पर धकेले जा रहे हैं।

वृद्धों से जुड़ी समस्याएँ केवल पारिवारिक या शारीरिक नहीं हैं, बल्कि इनके मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आयाम भी हैं। केवल शारीरिक शक्ति घट जाने के कारण किसी व्यक्ति के पारिवारिक व सामाजिक महत्व को कम आंकना हमारी सांस्कृतिक मूल्यों की गिरावट को दर्शाता है। बुजुर्गों के प्रति समाज का यह उदासीन रवैया एक गंभीर चिंता का विषय बन चुका है।

मानव जीवन का अंतिम समय जितना दयनीय होता है, उतना ही वह गंभीर और चिंताजनक भी होता है। इंसान जीवन भर कठिन परिश्रम और संघर्ष करता रहता है, परंतु वृद्धावस्था में जब उसकी शारीरिक क्षमताएँ क्षीण हो जाती हैं, तब उसे उपेक्षा और तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। जीवन के संध्याकाल में ऐसा अकेलापन झेलना इंसान के लिए किसी अभिशाप से कम नहीं है।

अंग्रेजी के "Discourse'' शब्द को हिंदी में "विमर्श'' कहा जाता है। क्रिस बार्कर के अनुसार, विमर्श ज्ञान को स्पष्ट और व्यवस्थित रूप में समझने तथा प्रस्तुत करने का एक माध्यम है। इसी आधार पर, बुजुर्गों के जीवन, उनके संघर्षों और अस्तित्व से जुड़ी महत्वपूर्ण बातों पर विचार-विमर्श करने को "वृद्ध-विमर्श'' कहते हैं। आज बुजुर्गों की अनदेखी (उपेक्षा) केवल किसी एक जगह की नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर की एक गंभीर सामाजिक समस्या बन गई है। इस स्थिति के मुख्य कारण पूंजीवादी सोच, धन का बढ़ता महत्व और समाज में घटती मानवीय संवेदनाएं हैं। यही वजह है कि आज के दौर में कई बच्चे अपने ही बुजुर्ग माता-पिता को एक बोझ समझने लगे हैं। 21 वीं सदी के हिंदी कहानी साहित्य में बुजुर्गों की इन्हीं विविध

समस्याओं और व्यथाओं को अत्यंत सजीव एवं प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया गया है।

सुषमा बेदी की कहानी "सड़क की लय'' दो पीढ़ियों के बीच बढ़ती मानसिक दूरी और वैचारिक मतभेद को उजागर करती है। बुजुर्गों के लिए उनके पोते-पोतियां जान से भी प्यारे होते हैं, लेकिन आजकल की नई पीढ़ी के मन में अपने दादा-दादी या नाना-नानी के प्रति वह आदर और लगाव देखने को नहीं मिलता। अमेरिका में रह रहे सात साल के समीर को अपनी भारतीय संस्कृति और जीवन-मूल्यों से जोड़ने के लिए उसकी माँ अन्विता, अपनी माँ मालती सक्सेना को भारत से अमेरिका बुलाती है। परंतु समीर को अपनी नानी के संग से ज्यादा सहज एक "बेबी सिटर'' का साथ लगता है। "उसके पास दिल जमाने के लिए टी.वी. है, वी.डी.ओ. गेम्स हैं, बेसबॉल, फुटबॉल, बास्केटबॉल की गेम्स हैं, खाने के लिए फास्टफुड है, कंपनी के लिए बेबी सिटर है। उसके लिए नानी दूसरी दुनिया की चीज है। उसे न उसके बनाए खाने में रुचि है, न उसकी ड्रेस सेंस जंचती है, न रोक-टोक, न स्नेह के आवेग क्योंकि वह कहीं से भी नानी की तरह इमोशनल या कमजोर नहीं है। सात समुंदर पार से नानी का आना नानी को भावुक कर सकता है, किंतु समीर तो मात्र नानी को झेल रहा है।''

जिंदगी के आखिरी मोड़ पर भी बुजुर्गों को भांति-भांति के कष्टों और दुखों को झेलना पड़ता है, जिसमें सरकारी दफ्तरों का ढुलमुल रवैया भी उनकी परेशानियों को बढ़ाता है। तरुण भटनागर द्वारा रचित कहानी "फोटो का सच'' इसी वास्तविकता पर प्रकाश डालती है। एकमात्र पुत्र सेकेंड लेफ्टिनेंट जीवेंद्र माथुर एक सैन्य हमले में शहीद हो जाता है। शासन से सहायता राशि की स्वीकृति और आदेश जारी हो चुके हैं, तथा सभी आवश्यक दस्तावेज भी तैयार थे। "तिहत्तर वर्षीय पिता सरकार दफ्तरों में चक्कर लगा रहे हैं। क्लर्कों की चापलूसी कर रहे हैं, लेकिन उनके पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं जो सिद्ध कर सके कि वही पिता है। इस भटकन के कारण भीगे कपड़ों की तरह, मृत शरीर की तरह मन भारी रहता है।'' वृद्धावस्था को सुकून और शांति से व्यतीत होना चाहिए, परंतु जब कोई बुजुर्ग संवेदनहीन प्रशासनिक तंत्र के जटिल जाल में फँस जाता है, तो उसकी दशा अत्यंत दयनीय हो जाती है।

प्राचीन और नवीन सांस्कृतिक धारणाओं में बड़ा अंतर साफ दिखाई देता है। मनीषा कुलश्रेष्ठ की रचना "प्रेतकामना'' आधुनिक संदर्भों में वृद्धों के एकाकीपन और उनकी पीड़ा को बेहद प्रभावकारी ढंग से दर्शाती है। सेवानिवृत्त विधुर प्रोफेसर डॉ. पंत मुंबई के सी-बीच स्थित तीन कमरों वाले एक बड़े से फ्लैट में अकेले रहते हैं। "रिटायर्ड विधुर पिता टूटी दीवार से झरते सीमेंट सा भुरभुरा जीवन व्यतीत कर रहे हैं और बेटा महीनों बाद कभी खबर लेने आ जाता है। कभी वे जे. एन. यू में एन्थ्रोपालोजी के विभागाध्यक्ष थे। विदेश के चक्कर लगते रहते थे और अणिमा जैसी रिसर्च स्कॉलर विद्वत्ता के कारण उनपर मरती थी। आज बेटा इसी शहर में अलग रहता है। बेटी कलकत्ता में है। पत्नी की मृत्यु हो चुकी है। उनके इर्द-गिर्द न समाज है, न परिवार, न प्रतिष्ठा। ऐसे में अमरिका से प्रवासी सप्ताह के लिए पुरानी छात्रा अणिमा लौटती है और डॉ. पंत के प्रेत जीवन में कामनाएँ ऐसी लहराती हैं कि दोनों में शारीरिक संबंध कायम हो जाता है। पापा के इस नई दुनिया को देख बेटे के पैर दस-दस मन के भारी हो जाते हैं।"

डॉ. पंत का यह आचरण परिवार और समाज के समक्ष एक गहरी सीख प्रस्तुत करता है। जब लोग वृद्धों की सहनशीलता और क्षमता को उनकी विवशता मानकर उनके साथ मनमाना बर्ताव करने लगते हैं, तो स्वाभाविक रूप से बुजुर्ग भी अपने हित में स्वतंत्र निर्णय लेने के लिए तत्पर हो जाते हैं—चाहे इसके लिए उनका परिवार या समाज मानसिक रूप से तैयार हो या न हो।

किसी बुजुर्ग व्यक्ति को उसकी मानवीय भावनाओं और सरोकारों से दूर कर देना उनके प्रति एक बड़ा अन्याय है। कृष्णा अग्निहोत्री की कहानी "यह क्या जगह है दोस्तो'' इसी विषय को उजागर करती है। ऋतु एक बेहतरीन संगीतकार है। "ऋतु के पास न पति है, न प्रेमी, न बच्चे। यह औरत प्रेती की एय्याशियों को ढोती रही है। पति की मृत्यु के बाद बच्चे उसके मुवी या टी.वी. देखने, संगीत सुनने या रियाज करने, रेडियो प्रोग्राम देने या फोन करने, किसी शादी विवाह में जाने तक पाबंदी लगा देते हैं। यहाँ तक कि उसे साज बेच कंप्यूटर खरीदने के लिए कहा जाता है।"

मृदुला गर्ग लिखित "बेंच पर बूढ़े'' कहानी बी. के. और नितिन सोलंकी नाम के दो सेवानिवृत्त बुजुर्गों पर आधारित

है। बी. के. की पत्नी का देहांत हो चुका है। उनके दो बेटे हैं—एक अमेरिका में बस गया है और दूसरा उसी शहर में कार्यरत है। उनकी बहू पेशे से डाइटिशियन है और घर से ही काम करती है। वह ग्राहकों को घर बुलाकर सलाह देती है, इसलिए उसे बी. के. का घर में रहना पसंद नहीं आता। इसी वजह से बी. के. को रोज सुबह नाश्ता करके पार्क में जाना पड़ता है और पूरा दिन बाहर ही बिताना पड़ता है। "एक लड़का अमेरिका चला गया, उसका उनसे किसी बात से सरोकार न रहा। बेटी की शादी ज्यादा पैसेवालों से कर दी, समझ के लुट गया। बचा अमित। उसकी सलाह पर कई बिजनेस किए, लोन मिलना इस कदर आसान था कि पांव चादर से बाहर क्या पसारे, चादर दिखनी बंद हो गई। जितनी आसानी से कर्ज दिया था, उतनी ही आसानी से साहूकार अदायगी में ओढ़ना-बिछौना उठा ले गए। जो कतरन बचीं, बीमारी में खर्च हो गई। मैं दिवालिया हो गया। मकान बच रहा क्योंकि पहले ही अमित ने खरीद लिया था।" इस तरह बी. के. को उनके ही बच्चों ने धोखा दिया। उनसे मकान बनवाकर अपने नाम करवा लिया और उसकी किश्तें चुकाने का बोझ भी पिता पर डाल दिया। इसके कारण बुढ़ापे में उनकी आर्थिक हालत बेहद खराब हो गई। बहू दिन भर घर पर ही रहती है, इसलिए बी. के. को दिनभर बाहर बगीचे में घंटों अकेले बैठकर समय काटना पड़ता है, जिससे वे भारी अकेलेपन का सामना कर रहे हैं।

अंत में यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 21वीं सदी के हिंदी कहानी साहित्य में वृद्धों की समस्याओं का पर्याप्त और सजीव चित्रण किया गया है। कहानीकारों ने बुजुर्गों की उपेक्षा और उनके प्रति समाज की घटती संवेदनाओं को प्रमुखता से प्रस्तुत किया है। बुजुर्गों की दयनीय स्थिति, उनका मानसिक संताप, अकेलापन, बीमारियों से संघर्ष और सामाजिक-पारिवारिक बहिष्कार ही आज के "वृद्ध विमर्श" का मुख्य विषय है। निष्कर्ष के तौर पर ये कहानियाँ हमें एक बहुत ही गहरा संदेश देती हैं कि भले ही एक पुराना पेड़ फल देना बंद कर दे, लेकिन उसकी छाँव हमेशा सुकून देती है; ठीक वैसे ही बुजुर्गों का अनुभव और उपस्थिति परिवार के लिए एक रक्षक की तरह है।

जो परिवार या समाज अपने बुजुर्गों का तिरस्कार करता है, वह कभी भी वास्तविक सम्मान का अधिकारी नहीं बन सकता। इन साहित्यिक रचनाओं का अंतिम और सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य हम सभी को यह एहसास दिलाना है कि जिन बुजुर्गों ने अपना पूरा जीवन परिवार, समाज और राष्ट्र के निर्माण में लगा दिया, उनके जीवन के अंतिम पड़ाव को सुरक्षित, शांत और खुशहाल बनाना हम सब की सबसे बड़ी नैतिक जिम्मेदारी है।

बुजुर्ग समाज के लिए अतीत के प्रतीक और अनुभवों के अमूल्य भंडार होते हैं, जो सदैव सम्मान और श्रद्धा के योग्य हैं। यदि हम उन्हें उचित आदर दें और उनके अनुभवों का सही लाभ उठाएं, तो वे हमारी प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। यही कारण है कि वृद्धों की बढ़ती संख्या हमारे लिए चिंता का विषय नहीं है; असली चिंता केवल इस बात की होनी चाहिए कि वे हमेशा स्वस्थ, प्रसन्न और सक्रिय रहें।

संदर्भ

1. सुषमा बेदी- सड़क की लय, नेशनल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण. 2007, पृष्ठ 9
2. तरुण भटनागर -फोटो का सच, "हंस" मासिक पत्रिका, दिसंबर, 2006, पृष्ठ 18
3. मनीषा कुलश्रेष्ठ—प्रेतकामना, "हंस" मासिक पत्रिका, जनवरी, 2005, पृष्ठ 7
4. कृष्णा अग्निहोत्री-यह क्या जगह है दोस्तो, नॅशनल प्रकाशन, संस्करण. 2007, पृष्ठ 21
5. मृदुला गर्ग, बेंच पर बूढे, मुदनर दत्ता, अंतिम पडाव, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, उत्तर प्रदेश, सं. 2016, पृ.सं. 38

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

ANĀTMA VĀDA IN AŚVAGHOṢA'S BUDDHACARITA

Sharmila K Thankappan
Associate Professor, Department of Sanskrit
Government Sanskrit College, Thiruvananthapuram, Kerala,
Email: vasusharmila@gmail.com

Abstract: The philosophy of a society is the most valuable aspect of its prevalence in that society's civilization and culture because it originates from ideological beliefs. Hence, prevailing ideas significantly influence philosophies. Buddhism, which existed in India for a century, profoundly influenced all aspects of life with its distinctive philosophy. Later, literary works conveyed Buddhist philosophies in a manner understandable to common people. One such Buddhist monk and poet who significantly contributed to this was Aśvaghoṣa. His works, Buddhacarita and Saundarananda Mahākāvyas are regarded as sacred texts in Indian philosophical literature. Aśvaghoṣa skilfully presented profound philosophical concepts in a simple yet evocative language, making them emotionally impactful and accessible. The present paper explores the idea that the Anātma Vāda which is the basic tenet of Buddhism as presented in the Buddhacarita.

Key words: Asvaghosa, *Buddhacarita,* Anātma vāda, Nirvāṇa

Introduction

Buddhacarita holds an important place in Sanskrit literature and is regarded as the most renowned work of Aśvaghoṣa. The text provides a detailed description of the life and activities of Gautama Buddha, along with an exposition of Buddhist philosophy. *Buddhacarita* consists of 28 chapters (sargas). It is considered the first epic in the Kāvya tradition of Sanskrit poetry. Although it possesses all the essential qualities of an epic, *Buddhacarita* did not attain the status it deserved in the Sanskrit literary tradition. It can also be categorized as a devotional poem due to its spiritual and philosophical undertones.

Anātma vāda in *Buddhacarita*

The Buddhist philosophy which states that the soul has no permanent existence is called Anātma vāda. In Pali it is called Anātta vāda. Anātma vāda is also known as

Nairātmya vāda, Pudgalapratiṣeda vāda, and Pudgalanairātmya vāda. Buddha's Anātmavāda looks at the soul from a middle path. Buddha takes a middle path which is different from that of materialists who deny the existence of the soul and that of the spiritualists who believe in the existence of a soul that is permanent. Buddha describes the soul in a contradictory manner. The five skandhas namely form, sensation, perception, conformation and consciousness, are not the soul. Though these five skandhas themselves constitute the soul, it is a principle that is quite different from the skandhas.

Nirvāṇa (liberation) is inseparably linked to the concept of anātma vāda. Since the five skandhas are impermanent, they lead to suffering. If one believes in the existence of a soul and identifies the skandhas manifestations of that soul, they become attached to these impermanent elements. This attachment makes it difficult to develop detachment from the non-eternal, which is essential for liberation. Without complete detachment, mokṣa (liberation) cannot be attained.

Thus, anātma vāda is embraced as the Middle Path that avoids both extreme spiritualism and materialism, guiding one toward liberation by eliminating the illusion of a permanent self.

According to the Buddha, the soul is nothing more than a collection of the five skandhas: Form (rūpa), Sensation (vēdanā), Perception (saṁjñā), Mental formations (saṁskāra), and Consciousness (vijñāna). These five combined are what is referred to as the "self" or "soul." In this way, the Buddha rejects the notion of an eternal, unchanging soul in an ultimate sense.

However, he acknowledges the temporary conventional self that functions in the world of everyday experience. Self is only a combination of the five skandhas. Beyond this, there is no eternal, indestructible soul.

From the time of the Brāḥmaṇical Upaniṣads, thinkers had been deeply contemplating the various aspects of the soul's nature. However, the Vedic orthodoxy faced challenges from non-vedic or atheistic thinkers like the Cārvākas, Mahāvīra (of Jainism), and the Buddha. Meanwhile, figures such as Kapila, Gautama, and Patañjali supported the Vedic tradition.

The Cārvākās, rooted in Lokāyata philosophy, completely denied the existence of the soul. In Buddhist philosophy, the soul was seen as a significant hindrance to true knowledge. Buddha considered the belief in a soul to be an attachment that

needed to be destroyed to attain true wisdom. Therefore, form (rūpa) was considered anātma (non-self). If form was anātta, then sensation (vēdanā), perception (saṁjñā), mental formations (saṁskāra), consciousness (vijñāna), touch (sparśa), and the six sense bases (ṣaḍāyatana) were also considered anātma. Essentially, all elements of existence were seen as lacking a permanent self.

In the 16th canto of *Buddhacharita* in the context when Buddha is giving advice to King Bimbisāra, Aśvaghoṣa delves into the concept of the soul.

The notion of self is baseless because the body and senses are subjected to the influences of past births and memories (16.75).

Humans fall into the trap of ego due to the false belief in the self. When one realizes that the self does not truly exist, liberation is attained (16.78).

False perceptions lead to entanglement, while true perceptions bring about freedom. The world, trapped in the idea of self fails to see the truth (16.79).

If the soul exists, it must either be eternal or non-eternal. Both of these views have their own flaws -

"अस्त्यात्मेति च किन्नित्यः किं वाऽनित्यो मतो भवेत्।
उभयोर्मतयोर्दोषो भूरिशो वर्तते भृशम्"।। (16.80)

Further if the soul is non-eternal, then there would be no consequences of actions (karma), no rebirth, and therefore, liberation would be achieved without any effort.

"अनित्य इति चेदात्मा कर्मणो न फलं ततः।
ततश्च न पुनर्जन्म निर्वाणस्तु ततो ध्रुवम्"।। (16.81)

If the soul is eternal and omnipresent, then birth and death cannot occur. How can something that is always and everywhere present experience arising and ceasing?

"नित्यः सइति चेदात्मा जन्ममृत्यू न सम्भवौ।
व्यापिनः रवस्य नित्यस्य तदयास्तावुभौ कथम्"।। (16.82)

Finally, by accepting the fact that; Aśvaghoṣa questions how karma and its fruits could exist for something that is all-pervading.

Moreover, if the soul is all-pervasive, then there is no place where it does not exist. Therefore, if it were to cease to exist, everything would cease to exist simultaneously.

"स्वभावाच्चेदयं व्यापी रिक्तो देशो न तं विना।
भवेदस्तं यदा तस्य सर्वस्यास्तं सहैव हि"।। (16.83)

If the soul is all-pervasive, it must also be inactive, and thus no actions (karma) would occur. In that case, how would there be any connection between actions and their results?

"स्वभावाच्चेदयं व्यापी कर्मशीलः कथं भवेत्।
कर्माभावे फलेनैषां संयोगः कर्मणां कथम्"।।(16.84)

If the soul is the one performing action (karma), it would not cause itself any suffering. As the master of itself, who would bring suffering upon themselves?

"आत्मा चेत्कर्मणां कर्त्ता दुःखभागी कथं भवेत्।
स्वयं स्वामी कथं स्वस्मै दुःखदाता भवेत्क्वचित्"।। (16.85)

If the soul is considered eternal, it should not undergo any change. However, because it experiences pleasure and pain, it must be subject to change. Thus, it should be assumed that the soul undergoes change. Through this argument, Aśvaghoṣa establishes that the soul does not undergo any change.

"परिवर्तनशीलो न नित्यत्वादिति चेन्नतु।
सुखदुःखजुषस्त्वस्य दृश्यते परिवर्तनम्"।। (16.86)

Liberation is achieved through the removal of faults and the attainment of knowledge. Since the soul is inactive and all-pervasive, it does not attain liberation.

"दोषत्यागेन बोधाप्त्या निर्वाणो भुवि दृश्यते।
व्यापिनोऽकर्मिणस्त्वस्य निर्वाणः कथमात्मनः"।। (16.87)

It is impossible to assert the existence of the soul, because in reality, it does not have any existence. Since it lacks the power of causation, it is incapable of performing any actions.

"अस्तित्त्वमात्मनस्तस्मान्न मन्तव्यं कदाचन।
कथितैः कारणैस्तैस्तैस्तस्यास्तित्वं न वास्तवम्"।। (16.88)

Since it is unclear what is to be done and who the doer is, it is impossible to say whether the soul exists as permanent or impermanent. Therefore, it should be assumed that such a thing does not exist.

"किं कर्त्तव्यश्च कर्त्ता को न स्पष्टमिति विद्यते।
अनित्यः किञ्च नित्यो वा तस्मान्नात्मा न चस्थितिः"।। (16.89)

Desire leads to longing, and longing leads to attachment. Due to attachment, a person experiences suffering. There is no greater enemy than desire (23.40).

Even if a person grasps that passion is impermanent, impure, full of suffering, and lacks a permanent self, their misguided mind may still lead them to become passionate once more (23.42).

Although the soul is considered liberated because of its purity, it will be bound once more due to the persistent influence of causal conditions (12.71).

Just as a seed needs the right season, soil, and water to grow, and won't do so without these conditions, the soul is similarly affected by the presence of specific causal factors (12.72).

Although it is said that liberation is achieved by cutting off the power of actions, ignorance, and desire, complete severance from these influences is not possible as long as the soul exists (12.73).

Regarding the supposed abandonment of the ego principle, true abandonment of this principle cannot occur as long as the soul persists (12.76).

Since the soul remains engaged with the activity of reason and similar functions, it is not free from attributes and is not considered to be truly liberated (12.77).

In *Buddhacarita* Aśvaghoṣa, states that the sage Subhadra, understood the truth. Previously, Subhadra believed that the body and the soul were separate and that the soul was imperishable. However, after hearing Buddha's teachings, he understood that the world is without a permanent self and is not a result of the soul -

"न नित्यः कश्चिदात्मास्ति देहादन्यः सुनिश्चितम्।
नात्मनः परिणामश्च विश्वमेतदनीश्वरम्"।। (26.11)

He came to understand that birth is the result of the interplay of various factors and that nothing is independent. He realized that action is the cause of suffering, and liberation from suffering is achieved by the cessation of actions.

"अनेकेषाञ्च धर्माणां पारस्परिकमिश्रणात्।
जनिर्भवति जन्तूनामिति बौद्धमतं मतम्"।। (26.12)

The philosophical foundation of Buddhism resides this doctrine of non-self, which underpins all its practices and beliefs. Without understanding the nature of the self or the Dharma, people perform rituals and sacrifices seeking happiness in the afterlife or for the well-being of an impermanent self. The entire world is characterized by impermanence and suffering; hence it is not our own. Understanding this leads to the attainment of wisdom. Buddha considers all actions as the cause of suffering, and without liberation from suffering, escaping worldly problems is impossible. The ultimate

goal of life is liberation. The ultimate reality, beyond conceptualization, is the cessation of the self, making any contemplation related to the self-futile.

In the 17th chapter of the *Buddhacarita*, Aśvaghoṣa further describes the following tenets: If some things in the world are impermanent, how can there be attachment to worldly things? In this world, things that existed before either continue to exist or have ceased to exist. Therefore, one must understand the impermanence of existence. Buddha considered this world to be characterized by suffering, impermanence, emptiness, and non-self.

In the ninth chapter of the *Buddhacarita*, King Śuddhōdana sends his minister and priest to bring Siddhārtha back to the palace after he has embarked on the quest for ultimate truth. When they meet Siddhārtha, they attempt to persuade him to return to the palace using various arguments. During this encounter, the minister says to Siddhārtha:

Some believe that the process of coming into existence and ceasing to exist is entirely due to the soul. They argue that coming into existence happens effortlessly, while achieving liberation requires effort.

"केचिद्वदन्त्यात्मनिमित्तमेव प्रादुर्भवं चैव भवक्षयं च।
प्रादुर्भवं तु प्रवदन्त्यत्नाद् यत्नेन मोक्षाधिगमं ब्रुवन्ति।। (9.64)

It is believed that a person fulfills their debt to their ancestors through the procreation of offspring, to the seers by studying the Vedas, and to the gods by performing sacrifices. It is said that one is born with these three debts, and that true liberation is achieved only when these debts are discharged -

"नरः पितृणामनृणः प्रजाभिर् वेदैर्ऋषीणां क्रतुभिः सुराणाम्।
उत्पद्यते सार्धमृणैस्त्रिभिस्तैर् यस्यास्ति मोक्षः किल तस्य मोक्षः"॥ (9.65)

In this context, Buddha firmly asserts his position by stating:

Regarding the debated question of existence and non-existence in this universe, I cannot reach a conclusion based on someone else's words. I will seek the truth on my own through asceticism and quiet contemplation, and I will accept whatever is determined through this process -

"इहास्ति नास्तीति य एष संशयः परस्य वाक्यैर्न ममात्र निश्चयः।
अवेत्य तत्त्वं तपसा शमेन च स्वयं ग्रहीष्यामि यदत्र निश्चितम्"॥ (9.73)

It would not be right for me to accept a doctrinal system that is rooted in doubt, filled with obscurities, and rife with contradictions. After all, what wise person would follow another blindly, like a blind man being led through the dark by someone equally blind

"न मे क्षमं संशयजं हि दर्शनं ग्रहीतुमव्यक्तपरस्पराहतम्।
बुधः परप्रत्ययतो हि को व्रजे ज्जनोऽन्धकारेऽन्ध इवान्धदेशिकः"॥ (9.74)

Even though I have not yet discovered the ultimate truth, if the reality of good and evil is in question, I choose to side with the good. It is better to labor in vain for what is good than to enjoy the bliss, even if it is truly blissful, of a person who surrenders to what is despicable.

"अदृष्टतत्त्वस्य सतोऽपि किं तु मे शुभाशुभे संशयिते शुभे मतिः।
वृथापि खेदो हि वरं शुभात्मनः सुखं न तत्त्वेऽपि विगर्हितात्मनः"॥ (9.75)

Given this resolve, the sun may fall to the earth, and Mount Himavat may lose its stability, but I will not return to my family as a worldly man who has not discovered the ultimate truth and whose senses are still drawn to the pleasures of the world -

"तदेवमप्येव रविर्महीं पते दपि स्थिरत्वं हिमवान् गिरिस्त्यजेत्।
अदृष्टतत्त्वा विषयोन्मुखेन्द्रियः श्रयेय न त्वेव गृहान् पृथग्जनः"॥ (9.78)

I would sooner enter a blazing fire than return home with my goal unachieved. With this resolute declaration, he stood up, true to his words, and departed with complete selflessness -

"अहं विशेयं ज्वलितं हुताशनं न चाकृतार्थः प्रविशेयमालयम्।
इति प्रतिज्ञां स चकार गर्वितो यथेष्टमुत्थाय च निर्ममो ययौ"॥(9.79)

In this manner, Aśvaghoṣa makes meaningful efforts to establish the doctrine of non-self. In the twelfth chapter of the *Buddhacharita* it is noted that Buddha is not satisfied with the self-theories of the ascetic Arāḍa. Following this, Siddhārtha arrives at the hermitage of Utraka and listens to his teachings.

The sage Utraka, aware of the shortcomings of both consciousness and unconsciousness, proposed a path beyond the realm of nothingness, characterized by neither consciousness nor unconsciousness (12.51). However, Siddhartha rejected Utraka's system because it still upheld the notion of the soul's existence.

In the practical aspect of Buddhism, the self is not denied. However, at a more fundamental level, the self is understood to be nothing more than the collection of the five aggregates (form, sensation, perception, mental formations, and consciousness), rather than a permanent or independent entity. The self is neither a fixed existence

nor an eternal principle. Instead, it is seen as a temporary aggregation of the body and mind. This view challenges the notion of a permanent self and presents it as an impermanent and contingent collection.

REFERENCE

Bimala chumav(1946), Asvaghosha,Royal Asiatic Society of Bangal.

Damodaran K (2011), Bharatiya Chinta,Thiruvananthapuram: State Institute of Languages,Kerala,Thiruvananthapurm.

Dasgupta Surendranath(2018),A History of Indian Philosophy, Vol.1, Delhi: Motilal Banarsidass Publishers.

Johnston E.H(1995),Asvaghosha's Bhuddhacarita or Acts of the Buddha,Delhi: Motilal Banarsidass Publishers.

Olivelle Patrick(2009),Life of Buddha by Asvaghosa, New York: New York University Press.

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में नैतिक शिक्षा और मानव निर्माण: स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन एवं शिक्षक भूमिका का प्रासंगिक विश्लेषण

डॉ. निरूपमा जैन
शोध निर्देशिका
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, उदयपुर
ई.मेल : nirupama1806@gmail.com

विजय सिंह
शोधार्थी
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
ई.मेल : phd24_vijay@mlsu.ac.in

सारांश (Abstract) :

वर्तमान समय में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) तकनीकी विकास का चरम बिन्दु है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) जीवन को सुगम बना रहा है, लेकिन साथ ही मानवीय संवेदनाओं, नैतिकता और चारित्रिक विकास के लिए चुनौती भी पेश कर रहा है। स्वामी विवेकानंद ने बहुत पहले ही 'मानव-निर्माणकारी शिक्षा' की वकालत की थी, जो सूचनाओं के संचय से अधिक चरित्र निर्माण पर जोर देती है। यह शोध पत्र यह विश्लेषण करता है कि कैसे विवेकानंद के विचार कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के दौर में 'मानव' को 'मशीन' बनने से बचा सकते हैं।

आधुनिक युग में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) शिक्षा और समाज को तेजी से बदल रही है। यह व्यक्तिगत अधिगम, स्वचालित मूल्यांकन और बुद्धिमान निर्णय प्रणालियाँ उपलब्ध कराती है, लेकिन डेटा गोपनीयता, एल्गोरिदम पूर्वाग्रह, नैतिक निर्णय-प्रक्रिया और शिक्षक-छात्र संबंधों के क्षरण जैसी चुनौतियाँ भी उत्पन्न कर रही है।

इस शोध-पत्र में स्वामी विवेकानंद जी के शिक्षा दर्शन शिक्षा, चरित्र निर्माण, गुरु-शिष्य संबंध तथा समग्र मानव विकास को आधार बनाकर कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) युग में नैतिक शिक्षा की संभावनाओं, चुनौतियों और समाधान का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। विवेकानंद जी के विचार कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) को मानव-केंद्रित और नैतिक रूप से दिशा देने में अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होते हैं।

तकनीकी शब्दावली :
- कृत्रिम बुद्धिमत्ता।
- नैतिक निर्माण।
- स्वामी विवेकानंद।
- शिक्षा दर्शन।
- शिक्षक की भूमिका।

1. प्रस्तावना (Introduction) :

वर्तमान समय में कृत्रिम बुद्धिमत्ता शिक्षा क्षेत्र में एक क्रांतिकारी शक्ति बनकर उभरी है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) जैसे उपकरण छात्रों को व्यक्तिगत गति से सीखने, तत्काल फीडबैक और अनुकूलित सामग्री प्रदान कर रहे हैं। भारत में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) भी कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और डिजिटल प्रौद्योगिकी को शिक्षा में एकीकरण का महत्वपूर्ण स्थान देती है।

हालांकि कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के विस्तार के साथ गंभीर नैतिक प्रश्न भी सामने आ रहे हैं। क्या कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) छात्रों की गोपनीयता सुरक्षित रख पाएगा? क्या एल्गोरिदम में निहित पूर्वाग्रह सामाजिक असमानता को बढ़ावा देंगे? क्या मशीनें नैतिक निर्णय ले सकती हैं या शिक्षक की भूमिका को कमजोर कर देंगी? न्छैम्ब्यू की रिपोर्ट और विभिन्न अध्ययन इन मुद्दों को रेखांकित करते हैं।

इसी संदर्भ में स्वामी विवेकानंद जी का शिक्षा दर्शन अत्यधिक प्रासंगिक है। उन्होंने शिक्षा को मात्र जानकारी का संग्रह नहीं, बल्कि ''मनुष्य निर्माण'' और ''चरित्र निर्माण'' का साधन माना। उनका प्रसिद्ध कथन है - "Education is the manifestation of the perfection already in man."

यह शोध-पत्र विवेकानंद जी के शिक्षा एवं शिक्षक संबंधी विचारों को कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के नैतिक आयाम से जोड़कर एक समन्वित दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। शोध का उद्देश्य कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) को नैतिक और मानव-केंद्रित बनाने के लिए विवेकानंद दर्शन की उपयोगिता को स्थापित करना है।

2. स्वामी विवेकानंद जी का शिक्षा दर्शन :

स्वामी विवेकानंद ने पाश्चात्य शिक्षा की नकल की आलोचना की और भारतीय आध्यात्मिक परंपरा पर आधारित शिक्षा व्यवस्था का प्रतिपादन किया।

स्वामी विवेकानंद के अनुसार शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा :- विवेकानंद जी शिक्षा को बाहरी ज्ञान का संग्रह नहीं मानते थे। वे कहते थे कि सच्ची शिक्षा वह है जो मनुष्य के भीतर निहित पूर्णता को जागृत करती है।

- "Education is the manifestation of the perfection already in man."

विवेकानंद के अनुसार :- ''शिक्षा मनुष्य के भीतर पहले से ही विद्यमान पूर्णता की अभिव्यक्ति है।"

स्वामी विवेकानंद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य :

स्वामी विवेकानंद के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य 'बालक की अंतर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना' है।

- चरित्र निर्माण और मनुष्य निर्माण।
- बौद्धिक, शारीरिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास।
- आत्मनिर्भरता और राष्ट्र निर्माण।

स्वामी विवेकानंद के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम :- उनके अनुसार पाठ्यक्रम केवल सूचनाओं का संग्रह नहीं होना चाहिए, बल्कि ऐसा होना चाहिए जो चरित्र निर्माण और आध्यात्मिक विकास में सहायक हो। उन्होंने अपने पाठ्यक्रम में शारीरिक शिक्षा, भाशा और साहित्य की शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षा को आधारित पाठ्यक्रम को महत्व दिया है।

स्वामी विवेकानंद के अनुसार शिक्षण की विधियाँ :- विवेकानंद के पाठ्यक्रम को लागू करने के लिए कुछ विशेष सिद्धांतों का पालन अनिवार्य है -

एकाग्रता :- ज्ञान प्राप्त करने की एकमात्र चाबी एकाग्रता है।

ब्रह्मचर्य :- पवित्रता और आत्म-संयम को वे सीखने का आधार मानते थे।

श्रद्धा और आत्मविश्वास :- छात्र में स्वयं के प्रति विश्वास जगाना शिक्षा का मूल हिस्सा होना चाहिए।

स्वामी विवेकानंद के अनुसार शिक्षक की भूमिका :- विवेकानंद जी शिक्षक को गुरु मानते थे। उन्होंने गुरुगृह-वास प्रणाली पर बल दिया। शिक्षक का कार्य शिष्य में ज्ञान जागृत करना है। वे स्वयं उच्च चरित्र का जीवंत उदाहरण हों। ''One should live from his very boyhood with one whose character is like a blazing fire" विवेकानंद जी पश्चिमी विज्ञान और वेदांत के संश्लेषण पर जोर देते थे। उनका दर्शन आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) युग में भी शिक्षक की भूमिका, नैतिक शिक्षा और समग्र विकास के लिए मार्गदर्शक है।

3. शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ताः अवसर एवं नैतिक चुनौतियाँ :

अवसर :- आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) शिक्षा को अधिक सुलभ, प्रभावी और व्यक्तिगत बना रही है। यह विशेष आवश्यकता वाले छात्रों, दूर-दराज के क्षेत्रों और बड़े पैमाने पर शिक्षा पहुंच के लिए उपयोगी है।

नैतिक चुनौतियाँ :- शिक्षा से सम्बंधित ये चुनौतियाँ UNESCO, OEC और भारतीय शोधों में बार-बार उल्लिखित हैं।

डेटा गोपनीयता :- छात्रों का व्यक्तिगत और व्यवहारिक डेटा संग्रहण।

एल्गोरिदम पूर्वाग्रह :- ऐतिहासिक डेटा से उत्पन्न भेदभाव।

शिक्षक की भूमिका का क्षरण :- अत्यधिक निर्भरता से शिक्षक केवल facilitator बनकर रह सकता है।

जवाबदेही :- कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के गलत निर्णय की जिम्मेदारी कौन लेगा?

डिजिटल विभाजन :- अमीर-गरीब और शहरी-ग्रामीण असमानता।

मानसिक स्वास्थ्य :- निरंतर निगरानी से छात्रों पर दबाव।

4. विवेकानंद के शिक्षा दर्शन में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) नैतिकता :

विवेकानंद जी के विचार कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) को नैतिक दिशा देने में सहायक हैं, जो निम्नलिखित है -

मानव-केंद्रित कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) :- कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) को शिक्षक का सहायक बनाना चाहिए, न कि प्रतिस्थापक। गुरु-शिष्य के व्यक्तिगत संबंध को बनाए रखना आवश्यक है।

चरित्र निर्माणः-कृत्रिम बुद्धिमत्ता(AI) प्रणालियों में नैतिक मूल्यों (सत्य, अहिंसा, सेवा, त्याग) को शामिल किया जाए।

शिक्षक की नई भूमिका :- कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) युग में - शिक्षक नैतिक समीक्षक, भावनात्मक मार्गदर्शक और प्रेरक बने रहें।

प्रस्तावित फ्रेमवर्क में सहायक :- यह फ्रेमवर्क नीति निर्माण, शिक्षक प्रशिक्षण और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) विकास में उपयोगी सिद्ध हो सकता है, जो निम्न प्रकार से है -

- पूर्णता का प्रकटीकरण।
- गुरु की प्रधानता।
- पूर्वाग्रह मुक्ति।
- पारदर्शिता और जवाबदेही।
- समावेशी विकास।

निष्कर्ष :

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता एक शक्तिशाली उपकरण है, लेकिन इसे मानव कल्याण के लिए प्रयुक्त करने हेतु एक 'मानवीय' और 'नैतिक' आधार की आवश्यकता है। स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन (आत्मविश्वास, चरित्र और एकाग्रता) ही वह मार्ग है जो। युग में मानव को अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने में मदद करेगा। शिक्षक

को मशीन के साथ प्रतिस्पर्धा करने के बजाय, छात्रों में मानवीय संवेदनाएँ और नैतिक चेतना विकसित करनी चाहिए, जो एक बेहतर राष्ट्र के निर्माण का आधार है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता शिक्षा के क्षेत्र में शक्तिशाली उपकरण है, लेकिन बिना नैतिक दिशा के यह खतरनाक भी हो सकती है। स्वामी विवेकानंद जी का शिक्षा दर्शन हमें सही मार्ग दिखाता है। उन्होंने शिक्षा को मनुष्य निर्माण का साधन माना। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) युग में भी हमें चरित्र निर्माण, गुरु की भूमिका और समग्र विकास को प्राथमिकता देनी होगी।

संदर्भ सूची

- स्वामी विवेकानंद. (1990). 'स्वामी विवेकानंद के पूर्ण कार्य' (खंड 1-9). अद्वैत आश्रम, कोलकाता।
- विवेकानंद, स्वामी. (1897). 'मेरा शिक्षा-विचार'। अद्वैत आश्रम, मायावती।
- यूनेस्को. (2021). 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता की नैतिकता पर सिफारिश'। संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन, पेरिस।
- भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2020). 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020'। नई दिल्ली।
- Holmes W. ETAl (2022). शिक्षा में AI की नैतिकताः सामुदायिक ढांचे की ओर। 'International Journal ofArtificial Intelligence in Education'।
- OECD. (2023). 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता और शिक्षा का भविष्य'। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन।
- भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान. (2022). 'भारतीय शिक्षा में AI अवसर और चुनौतियाँ'। रिपोर्ट।
- चटर्जी, एस. (2018). 'स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन और 21वीं सदी में इसकी प्रासंगिकता'। AI रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर, कोलकाता।
- भारद्वाज, ए. (2023). शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के नैतिक मुद्दे। 'Journal of Educational Technology & Society'।
- भारत सरकार. (2023). 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता के लिए राष्ट्रीय रणनीति' नीति आयोग।
- रामकृष्ण मिशन. (2019). 'स्वामी विवेकानंद का शिक्षा-विचार', प्रकाशन विभाग।
- विश्व आर्थिक मंच. (2023) : 'AI के युग में शिक्षा का भविष्य'।
- UG CAR Listed Journals (2020-2025) : शिक्षा में AI नैतिकता और विवेकानंद शिक्षा दर्शन पर विभिन्न शोध पत्र।

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा' और 'किन्नर कथा' में किन्नरों का जीवन संघर्ष

डॉ. रजिला ओ. पी
एसोसिएट प्रोफेसर
सरकारी आर्ट्स एंड साइंस कॉलेज, कोंडोट्टी, केरल

अस्मिता विमर्श आज तमाम वंचित समूह को मुख्य धारा के केंद्र में शामिल होने को प्रतिबद्ध करते हैं। दलित, स्त्री, आदिवासी जैसे हाशिए पर धकेले गए वर्ग आज वैचारिकी के भी केंद्र में आ गया है। समानता और सम्मान की चाह ने इन अस्मिताओं को नैतिक पहचान दिलाई है। आज इन पर आधारित विमर्श उत्तर आधुनिक दौर के सर्वाधिक चर्चित विमर्श हैप इन सब के साथ-साथ शामिल किन्नर भी अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ रहा है। साहित्य में किन्नर विमर्श अलग किंतु विशिष्ट पहचान बना रहा है।

कुंजी शब्द : किन्नर, 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा', सामाजिक मानवीय एवं भावनात्मक संबल, बराबरी का दर्जा, नाला सोपारा, चित्रा मुद्गल, मार्मिक विवेचन, यौन समस्याएं।

हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श पिछले कुछ वर्षों से विशेष रूप से उबर कर आ रहा है। हिंदी में अब कई उपन्यास किन्नर विमर्श को केंद्र में रखकर सामने आए हैं। उन सब में इस 'थर्ड जेंडर' की वास्तविक दुनिया को पहचानने, उनकी स्थिति को समझने, बदलने का तमाम सफल एवं गंभीर प्रयत्न दिखाई देता है। हिंदी कथा साहित्य में खास तौर पर उपन्यासकारों में महेंद्र भीष्म, गिरजा भारती, प्रदीप सौरभ, चित्रा मुदगल ऐसे रचनाकार है जो वर्तमान में एल.जी.बी.टी पर अपनी कलम चला रहे हैं। ऐसा ही नवीनतम उपन्यास हिंदी की विख्यात लेखिका चित्र मुद्गल द्वारा रचित 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा' जिनमें लेखिका ने महज एक शारीरिक कमी के चलते किसी इंसान को अस्वीकार करने के सामाजिक मानसिकता का सख्त विरोध किया है। जो मनुष्य को मनुष्य तक मानने को तैयार नहीं है। अपनी उपन्यास में लेखिका किन्नर की समस्याओं पर यथार्थपूर्ण तरीके से प्रकाश डालती हैं। सामाजिक मानवीय एवं भावनात्मक संबल एवं समर्थन की उम्मीद लेखिका मानव समाज से करती है।

नाला सोपारा में चित्रा मुद्गल ने किन्नर समुदाय के संघर्ष की गाथा को समकालीन, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में अवलोकित किया है। इस उपन्यास का पात्र विनोद या बिन्नी अपने परिवार से परित्यक्ता होने के बाद छेलने वाली समस्याओं समाज के तथाकथित सम्मानित वर्ग के द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों आदि का अपनी माँ के नाम लिखे गए पत्रों के माध्यम से हमारे पूरी समाज से प्रश्न करता हुआ दिखाई पड़ता है। चित्रा जी ने विनोद के रूप में हेतु प्रगतिशील किन्नर का व्यक्तित्व करने का प्रयास किया है जो अपने जैसे लोगों के लिए एक उदाहरण बन सकता है। स्वयं के उत्थान के लिए समाज के नकारात्मकता के खिलाफ विद्रोह करने वाला पात्र के रूप में रूपायित है।

विनोद यह मानता है कि शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जो समाज में उन जैसों को बराबरी का दर्जा दिला सकता है तथा उन्हें प्रगति के मार्ग पर ले जा सकता है उनके अनुसार "पढ़ाई ही हमारी मुक्ति का रास्ता है कोई रास्ता ही नहीं छोड़ा

गया है हमारे लिए"[1] विनोद अपने जैसे अन्य को भी शारीरिक श्रम करते हुए आत्मसम्मान से जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

लोगों के तिरस्कार, उनके प्रति घृणा के भाव, उनके साथ किए जाने वाले छिछोरे और भद्दे मजाक तथा बार-बार यह एहसास दिलाता है कि वह औरों से पृथक है उनके मन में गहरी वेदना पैदा करती हैं। अपने उपन्यास में लेखिका किन्नरों की समस्याओं पर यथार्थपूर्ण तरीके से प्रकाश डालती हैं। सामाजिक, मानवीय, भावनात्मक एवं समर्थन की उम्मीद लेखिका समाज से करती हैं। किन्नरों की स्थिति उसके के लिए उत्तरदाई कारणों का मार्मिक विवेचन करते हुए लेखिका केवल प्रश्न ही नहीं उठाते उन प्रश्नों का समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। उपन्यास का मुख्य पात्र विनोद के अनुसार "किन्नर बिरादरी का संघर्ष उन्हें मनुष्य माने जाने का संघर्ष है"[2] इस वाक्य में किन्नरों के प्रति होने वाली बुरी व्यवहार की गहराई स्पष्ट है।

अति नाटकीयता से परे यह उपन्यास संवेदनाओं का अविरल धारा प्रवाह है इसे सहज ही पाठक को अपने साथ बहाए चलती है। मानवीय बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए लिखा गया यह एक अत्यंत ही मर्मस्पर्शी उपन्यास है। नाला सोपारा में किन्नर के प्रति समाज के नकारात्मक मानसिकता के लिए हमें आत्माचिंतन करने के लिए मजबूर करता है। किन्नरों की दुर्दशा का मूल्यांकन उसका परिवार है। सामाजिक व्यवस्था के कारण किन्नरों को अपना घर से बेदखल कर दिया जाता है। यह उपन्यास किन्नर समुदाय की दीन -हीन स्थिति को हमारे समक्ष उजागर मात्र नहीं करता अपितु इसे लेकर एक आशावादी सोच भी हमारे समक्ष रखते हैं। आज के समुदाय में अपनी इच्छा शक्ति से मुख्य धारा के लोगों की सोच में आने वाली बदलाव के चलते इनकी स्थिति में सुधार अवश्य आएगा। बिन्नी का माँ इसके लिए एक दृष्टांत है- "समाज को ऐसे लोगों की आदत नहीं है और वे आदत डालना भी नहीं चाहते पर मुझे विश्वास है हमेशा ऐसे ही स्थिति नहीं रहने वाली। वक्त बदलेंगे वक्त के साथ नजरिया बदलेंगे।"[3]

महेंद्र भीष्म की उपन्यास 'किन्नर कथा' किन्नरों के जीवन को पूर्ण रूप से जानने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। किन्नर जीवन को कथा वस्तु का आधार बनाते हुए लेखक ने किन्नर समाज और सामान्य समाज के मध्य स्थित विभिन्न मिथकों व यथार्थ परिस्थितियों को अलग अलग पात्रों के माध्यम से पाठकों के समक्ष रखा है। महेंद्र भीष्म उपन्यास में किन्नरों के जीवन की दयनीय अवस्था को बड़े मर्मस्पर्शी रूप से प्रस्तुत करते हैं इसमें भी वह किन्नरों की सबसे बड़ी समस्या विस्थापन के दर्द को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए कहते है कि विस्थापन दंश किन्नरों की सबसे पहले अपने परिवार के लोगों से ही झेलना पड़ता है।

यह उपन्यास किन्नरों के जीवन के प्रत्येक पहलू पर अत्यंत बारीकी से नजर दौड़ाई है चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, संस्कृतिक हो या शैक्षणिक, मनोवैज्ञानिक, यौन समस्याएं हो। उपन्यास की विषयवस्तु सोना या चंदा के जन्म से प्रारम्भ होकर शोभना द्वारा चंदा के आपरेशन व परिवार वालों द्वारा अपनाने पर समाप्त होती है।

महेंद्र भीष्म किन्नर कथा उपन्यास में पाठकों को किन्नर समुदाय के जीवन में होनेवाले कई रीति रिवाज़ों व मान्यताओं से भी अवगत कराते हैं। इस उपन्यास में जहां एक और किन्नर के आर्थिक संकट मान्यताओं व सांस्कृतिक पक्ष को दिखाया है वहीं दूसरी और वर्तमान युग में किन्नर अपने जीवन को एक नई उम्मीद के साथ अपना घर बसाए व मुख्य धारा के लोगों की तरह सपने देखे आदि को भी दिखाया है। उपन्यासकार महेंद्र भीष्म के अनुसार "वे भी हमारी तरह अपनी माँ की कोख से जन्मे पिता की संतान है, वे ज्यादा नहीं मांग रहे, हमें हिजड़ा नहीं, इंसान समझा जाए। बस इतनी सी मांग है।"[4]

शिक्षा के अभाव में न तो व्यक्ति आत्मनिर्भर बन पाता है और न ही समाज में अपनी कुशल अभिव्यक्ति दे पाता है। विनोद पढना चाहता है। चौदह वर्ष तक वह अपने परिवार में पलता बढ़ता है, स्कूल जाता है, कक्षा में टॉप करता है, लेकिन जल्दी ही उसके सपने चकनाचूर हो जाते हैं, जब उन्हें चंपाबाई को सौंप दिया जाता है। वह बार-बार मिन्नत करता है किन्तु उसकी एक भी सुनी नहीं जाती। वह कहता है ''जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है लेकिन इतना बड़ा भी नहीं कि तुम मान लो कि तुम धड़ का मात्र निचला हिस्सा भर हो।..... तुम्हारे हाथ पैर नहीं है। सब वैसा ही हैं, जैसे औरों के हैं। यौन सुख लेने-देने से वंचित हो तुम, वात्सल्य सुख से नहीं।''[5]

उपन्यास में पूनम के चरित्र के माध्यम से समाज के ओहदेदार लोगों को बेनकाब करने का प्रयास किया है। वह समाज के अय्याश लोगों की पाशविकता का शिकार बनती है। विधायक की कोठी पर नृत्य कार्यक्रम के उपरांत जब वह अपने कपड़ों को बदल रही होती है, तब विधायक का भतीजा और उसके मित्र उसके साथ सामूहिक बलात्कार करते हैं और ऐसे लोगों पर न कोई पुलिस केस होता है और न ही कोई सजा होती हैं।

आलोच्य उपन्यास में लेखिका ने एक ऐसे बच्चे को चित्रित किया है जिसे परिवार द्वारा 14 वर्ष की उम्र में चंपाबाई को सौंप दिया जाता है। उस समुदाय में वह स्वयं को असहाय व अजनबी महसूस करता है और वह अपनी माँ से पूछ बैठता है– ''मेरी बा तूने और पापा ने मिलकर मुझे कसाईयों के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया। मेरी सुरक्षा के लिए कानूनी कार्यवाही क्यों नहीं की तूने जिस नरक में तूने और पापा ने मुझे धकेला है, यह अंधा कुआँ है, जिसमें सिर्फ साँप-बिच्छू रहते हैं -- बस इस कुएँ ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया।''[6]

राजनीतिज्ञ चुनाव के समय 'विनोद का उपयोग करते हैं। विनोद के माध्यम से विधायक जी राजनीति खेलते हैं और समस्त किन्नरों का वोट हथिया लेते हैं। विनोद राजनीति का शिकार बन जाता है। उसका शव कुर्ला काम्प्लेक्स से लगी हुई मीठी नदी में पाया जाता है और उसकी मृत्यु का सम्बंध मुन्ना भाई किन्नर गिरोह से जोड़ दिया जाता है और मामले को रफा-दफा कर दिया जाता है।

किन्नरों का संघर्ष मनुष्य माने जाने का संघर्ष है। उन्हें अलग अन्य-अन्य रूप में चित्रित करना अमानवीय है। किन्नर चाहे जिस भी वर्ग, जाति, बिरादरी, समुदाय से संबंधित हों उनहें सामान्य जीवन जीने की तमाम सुविधाएं मिलनी चाहिए। समाज की इस समुदाय के प्रति संकीर्ण सोच भी इनके सामने कई कठिनाईयां पैदा करती है। विनोद द्वारा जो पूनम को गाड़ियाँ धोने का कार्य आरम्भ करवाया जाता है तो आस-पास का समाज उससे भद्दे मजाक करता है जो उसके लिए असह्य हो जाता है। अतः आवश्यकता है इन कठिनाईयों से जूझने की न कि पीठ दिखाकर भागने की।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लेखिका ने विनोद के माध्यम से समाज में किन्नर वर्ग के प्रति सहानुभूति व संवेदना पैदा करने की कोशिश की है ताकि यह वर्ग अपनी परम्परागत रूढ़ियों व गाली गलौच को छोड़कर समाज की मुख्यधारा से जुड़ सके व देश के नवनिर्माण में अपना समुचित सहयोग दे सके।

संदर्भ ग्रन्थ

1. चित्रा मुद्गल - पोस्ट बॉक्स नंबर 203नाला सोपारा पृ.110
2. वहीं, पृ.50
3. वही, पृ.95
4. किन्नर कथा- महेंद्र भीष्म पृ 8
5. किन्नर कथा- महेंद्र भीष्म सामयिक पेपर बैकस, नई दिल्ली 2016
6. डॉ. एम.फिरोज खान, थर्ड जंडर- कथा आलोचना

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713
SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

शरद सिंह की दृष्टि में आदिवासी सभ्यता और संस्कृति की एक झलक

प्रभा शर्मा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, ए. के. पी. (पी. जी.) कॉलेज, खुर्जा, बुलन्दशहर उ. प्र.
डॉ. अनामिका द्विवेदी
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, ए. के. पी. (पी. जी.) कॉलेज, खुर्जा, बुलन्दशहर उ. प्र.

शरद सिंह ने सामयिक मुद्दों पर खूब लिखा है। उन्होंने आदिवासी सभ्यता और संस्कृति को भी बहुत पास से पाठकों को परिचित कराया है। आदिवासियों के रहने का ढंग, खान-पान, त्योहार, शिक्षा, विवाह आदि के बारे में शरद सिंह जी ने जानकारी अपने साहित्य के माध्यम से दी है। शरद सिंह ने अपने उपन्यासों द्वारा लिव इन पर भी खूब लिखा है तथा बेड़िया समाज में व्याप्त देह व्यापार के बारे में भी अवगत कराया है। आदिवासी समाज का परिचय भी उन्होंने बखूबी दिया है।

शरद सिंह का जन्म मध्य प्रदेश के जिले पन्ना में हुआ था। उनका जन्म 29 नवम्बर 1963 को हुआ। शरद सिंह बहुत छोटी थीं तभी इनके पिता का साया इनके ऊपर से उठ गया। इनकी माता श्रीमती विद्यावती जी ने इनका पालन-पोषण किया। अपनी शिक्षा-दीक्षा के बाद ये लगातार लेखन कार्य कर रही हैं तथा विभिन्न विधाओं में इन्होंने अपनी लेखनी चलाई है।

आदिवासी सभ्यता और संस्कृति

आदिवासी सभ्यता और संस्कृति के बारे में निम्न बिन्दुओं के द्वारा समझा जा सकता है–

आदिवासी

आदिवासियों को भारतीय संविधान में अनुसूचित जनजाति का दर्जा दिया गया है। आदिवासी मूलतः दो शब्दों से मिलकर बना है– आदि ़ वासी। जिसमें 'आदि' का अर्थ है- 'पुराने समय से'। 'वासी' का अर्थ है 'रहने वाले' अर्थात् जो मूल रूप से हमारी पृथ्वी के रहने वाले हैं उन्हें आदिवासी कहा जाता है।

शरद सिंह मनुष्य की जो जातियाँ आदिम युग से अपने मूल प्रदेश अथवा क्षेत्र में, अपनी मौलिक स्थिति एवं परिस्थितियों के साथ निवास कर रही हैं, वे आदिवासी जातियाँ अथवा जनजातियाँ कहलाती हैं।[1]

आदिवासी लोग हमारे समाज से अलग तथा मुख्य रूप से जंगलों में जीवन यापन करते हैं। इनका जीवन प्रकृति के अधिक पास होता है तथा खान-पान में भी ये प्रकृति पर ही निर्भर होते हैं।

आदिवासी लोगों की जीवन-शैली

आदिवासी लोगों की जीवन-शैली बहुत ही सरल व सादा होती है। वे प्रकृति की पूजा करते हैं। जंगल में रहने के कारण ये प्रकृति की वस्तुओं पर अधिक निर्भर होते हैं। आदिवासियों की जीवन शैली निम्न प्रकार है–

(1) आदिवासियों का खान-पान

जंगलों में रहने के कारण इनका जीवन भी वनों और कृषि पर निर्भर रहता है। ये प्रायः प्रकृति द्वारा प्रदत्त वस्तुओं को भोजन के रूप में लेते हैं।

आदिवासी जंगल में निवास करते हैं इसलिए भोजन के रूप में वे वनोपज तथा कृषि पर निर्भर रहते हैं। वे महुआ, कन्द, मूल, फल आदि खाते हैं। वे कोदो, कुटकी, ज्वार, बाजरा, चना, चावल, मक्का, गेंहूँ आदि की खेती करते हैं। महुए की शराब उनका प्रिय पेय होता है जिसका प्रयोग मुख्य रूप से त्योहारों एवं उत्सवों के अवसर पर बहुतायत में किया जाता है।[2]

(2) वनोपज एवं कृषि पर निर्भर आदिवासी

पहले आदिवासी केवल वनोपज पर निर्भर थे, परन्तु वर्तमान में कृषि करने लगे हैं। इसमें उनका परिवार भी पूरा सहयोग देता है—

पहले आदिवासी मात्र वनोपज और शिकार पर निर्भर रहते थे किन्तु धीरे-धीरे उन्होंने कृषि कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। सीमित साधनों व सीमित ज्ञान के बाद भी वे अपने खेतों में अनेक प्रकार के अनाज का उत्पादन करते हैं।[3]

(3) औषधियों का ज्ञान

आदिवासियों को विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियों का ज्ञान होता है तथा उन्हें प्रयोगों के बारे में भी पता होता है। उनके द्वारा ये विभिन्न प्रकार के रोगों के उपचार करते हैं।

इसके अलावा वे इन औषधियों को वे इकट्ठा करके बाज़ार में भी उचित मूल्यों पर बेचते हैं—

पीढ़ियों से जंगलों में निवास करने के कारण आदिवासियों को जंगल में उगने वाली औषधियों का अच्छा ज्ञान होता है, तरह-तरह की जड़ी-बूटियों का उपयोग करके वे औषधियों का निर्माण करते हैं... बैगा जनजाति के लोग जंगल से मिलने वाली औषधियों के द्वारा अचूक इलाज करना जानते हैं।[4]

(4) आदिवासियों द्वारा पशु-पालन

आदिवासियों में पशु-पालन भी किया जाता है। कुछ पशु दूध के लिए तथा कुछ पशु मांस के लिए पाले जाते हैं—

गाय, बैल, बकरी, मुर्गी, कुत्ता आदि मुख्य रूप से पाले जाते हैं। वे बत्तख, सुअर भी पालते हैं। बैलों का उपयोग खेती के कामों के लिए किया जाता है। गाय से दूध, गोबर आदि प्राप्त करते हैं... मुर्गे और बकरे मुख्य रूप से मांसाहार के लिए पाले जाते हैं।[5]

(5) आदिवासियों में नामकरण संस्कार

आदिवासियों में शिशु का नामकरण संस्कार एक महत्वपूर्ण उत्सव के रूप में मनाया जाता है। नामकरण संस्कार रिश्तेदारों और परिवार के लोगों को निमंत्रण देकर मनाया जाता है।

...शिशु के नामकरण संस्कार के दिन आदिवासी परिवार अपने अन्य रिश्तेदारों और गाँव के लोगों को अपने घर आने का निमंत्रण देते हैं। इस पर सभी अतिथियों को महुए से बना पेय पिलाया जाता है। शाकाहार तथा मांसाहार भोजन कराया जाता है। बच्चों के नाम रखने का कार्य गुनिया करता है।[6]

(6) आदिवासियों की सामाजिक शिक्षा

आदिवासियों के अपने नियम-कायदे होते हैं, इन नियमों के आधार पर ही आदिवासी जीवन जीते हैं। अगर कोई व्यक्ति इन नियमों का उल्लंघन करता है तो उसे दंड दिया जाता है। कुछ आदिवासियों में सामाजिक शिक्षा समाज, परिवार द्वारा दी जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ जन-जातियों में अलग से सांस्कृतिक केंद्र बनाये गये हैं—

वैसे तो प्रत्येक आदिवासी समुदाय में युवाओं में अनुशासन और सामाजिक शिक्षा देने का चलन है। इसी प्रकार की शिक्षा प्रायः वे अपने गाँव, समाज, परिवार के बीच रहकर अपने बड़ों से ग्रहण करते हैं। लेकिन बस्तर की मुरिया जनजाति में युवाओं को सामाजिक शिक्षा देने का एक विशेष संस्कार होता है जिसे घोटुल कहते हैं।[7]

(7) आदिवासियों में विवाह सम्बन्ध

आदिवासियों में विवाह के सम्बन्ध में जनजातियों के अलग-अलग प्रकार हैं। जैसे माता-पिता द्वारा तय किया गया विवाह तथा युवक या युवतियों द्वारा स्वयं पसंद का—माता-पिता द्वारा तय किया गया विवाह— इस प्रकार की विवाह पद्धति लगभग सभी आदिवासी समुदायों में प्रचलित है।... युवाओं द्वारा स्वयं तय किया गया विवाह— कुछ आदिवासी समुदायों में विवाह योग्य लड़की और लड़के को स्वयं अपने लिए जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता होती है।[8]

(8) आदिवासियों में दाह-संस्कार

मनुष्य के जीवन का आखिरी सत्य मृत्यु होती है। सामान्यतः मृत्यु के पश्चात् शव को या तो जलाया जाता है या दफनाया जाता है। परन्तु आदिवासियों में शव को जलाने की प्रथा है—

... परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु हो जाने पर गाँव वालों तथा अन्य रिश्तेदारों के पास उसकी सूचना भेजी जाती है। सब लोगों के एकत्र हो जाने पर मृतक की शमशान भूमि में ले जाया जाता है जहाँ विधि-विधानपूर्वक उसके शव को अग्नि में जलाकर उसका दाह-संस्कार किया जाता है।[9]

(9) आदिवासियों के वाद्ययंत्र

आदिवासी भी संगीत सुनना पसन्द करते हैं। समय के परिवर्तन के साथ-साथ उन्होंने अनेक प्रकार के वाद्ययंत्रों का निर्माण किया है—

आदिवासियों के वाद्ययंत्र भी अलग-अलग होते हैं। ढोल, मांदल, टिमकी, सिंगबाजा, नगाड़ा, मंजीरा, खरताल, ठिसकी, चुटकी, झाँझ, बाँसुरी, अलगोझा, तमूरा, चिकारा, किंदरी, भूंगड़ू, पवई, चिटकोरा, थाली, कुंडी आदि वाद्य आदिवासियों के प्रमुख वाद्य हैं।[10]

(10) आदिवासियों के नृत्य

नृत्य मन को आनन्दित करने का साधन होता है। आदिवासियों में भी विभिन्न प्रकार के नृत्य प्रचलित हैं—

भगोरिया नृत्य भील जनजाति का विशेष नृत्य है। इसी नृत्य के समय युवक और युवतियों के विवाह तय हो जाते हैं।... बैगा जनजाति के लोग करमा नृत्य करते समय विभिन्न प्रकार के मुखौटे लगाते हैं। सैला नृत्य, भारिया जनजाति में लोकप्रिय है।

.....भरिया जनजाति के लोग सैतम नृत्य करते हैं। सुआ नृत्य गोंड जनजाति में प्रचलित है। कोरकू तथा बैगा जनजातियों में दशहेरा नृत्य किया जाता है। बैगा जनजाति के लोग होली पर्व पर फाग नृत्य करते हैं।[11]

इस प्रकार हमारी संस्कृति व आदिवासी संस्कृति में पर्याप्त अन्तर होता है।

सन्दर्भ (References)

1. शरद सिंह, आदिवासियों का संसार, पृष्ठ सं० 3
2. वही, पृष्ठ सं० 21
3. वही, पृष्ठ सं० 22
4. वही, पृष्ठ सं० 22-23
5. वही, पृष्ठ सं० 23
6. वही, पृष्ठ सं० 25-26
7. वही, पृष्ठ सं० 26
8. वही, पृष्ठ सं० 27-28
9. वही, पृष्ठ सं० 30
10. वही, पृष्ठ सं० 9
11. वही, पृष्ठ सं० 9-10

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

हनुमानगढ़ जिले में औद्योगीकरण का श्रमिक परिवारों की रोजगार एवं आर्थिक स्थिति पर प्रभाव: एक भौगोलिक अध्ययन

मुकेश कुमार
शोधार्थी

डॉ. बबिता शर्मा
सहायक आचार्य भूगोल विभाग
श्री खुशालदास विश्वविद्यालय हनुमानगढ़

सार

औद्योगीकरण किसी क्षेत्र की आर्थिक संरचना में परिवर्तन लाने वाली महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। उद्योगों के विकास से उत्पादन के साथ रोजगार और आय के नए साधन भी विकसित होते हैं। हनुमानगढ़ जिला लंबे समय से कृषि प्रधान क्षेत्र रहा है। नहर सिंचाई के विस्तार तथा कृषि उत्पादन में वृद्धि के साथ कपास जिनिंग, स्पिनिंग, चावल मिल और अन्य कृषि आधारित प्रसंस्करण इकाइयों का विकास हुआ। इससे श्रमिकों के लिए कृषि के अतिरिक्त रोजगार के अवसर उपलब्ध हुए हैं।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य हनुमानगढ़ जिले में औद्योगीकरण के श्रमिक परिवारों की रोजगार एवं आर्थिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव का भौगोलिक विश्लेषण करना है। अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार की सूचनाओं का उपयोग किया गया है। प्राथमिक जानकारी 2025-2026 में 120 श्रमिक परिवारों के घरेलू सर्वेक्षण से प्राप्त की गई। औद्योगिक गतिविधियों के क्षेत्रीय वितरण के लिए जिला उद्योग केंद्र तथा रीको से प्राप्त जानकारी का उपयोग किया गया है। अध्ययन में औद्योगिक इकाइयों के स्थानिक वितरण, कार्यरत श्रमिकों, रोजगार के दिनों, पारिवारिक आय तथा ऋणग्रस्तता को प्रमुख आधार बनाया गया है।

अध्ययन से पता चलता है कि औद्योगिक गतिविधियों ने जिले में गैर-कृषि रोजगार के अवसर बढ़ाए हैं, लेकिन रोजगार की उपलब्धता और आर्थिक स्थिरता में मौसमी अंतर बना हुआ है। कार्यशील मौसम में रोजगार और आय की स्थिति बेहतर रहती है, जबकि ऑफ-सीजन में रोजगार के दिनों और आय में कमी दिखाई देती है। इसलिए हनुमानगढ़ में औद्योगिक विकास का मूल्यांकन केवल उद्योगों की संख्या के आधार पर न करके श्रमिक परिवारों की रोजगार निरंतरता और आर्थिक सुरक्षा के संदर्भ में करना आवश्यक है।

मुख्य शब्दः औद्योगीकरण, श्रमिक परिवार, रोजगार, आय, मजदूरी, आर्थिक स्थिति, हनुमानगढ़।

प्रस्तावना

किसी क्षेत्र के आर्थिक विकास में उद्योगों की भूमिका केवल उत्पादन बढ़ाने तक सीमित नहीं रहती। औद्योगिक गतिविधियों के विकास के साथ श्रम की मांग बढ़ती है और रोजगार के नए साधन उपलब्ध होते हैं। इसका प्रभाव उन क्षेत्रों

में अधिक दिखाई देता है जहाँ जनसंख्या की निर्भरता कृषि पर अधिक रही है।

हनुमानगढ़ जिले में कृषि और उद्योग का संबंध काफी निकट है। नहर सिंचाई के विस्तार से कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई और कृषि आधारित प्रसंस्करण गतिविधियों का विकास हुआ। कपास जिनिंग, स्पिनिंग तथा चावल मिलों जैसी इकाइयों ने कृषि उत्पादन को बाजार से जोड़ने के साथ स्थानीय श्रमिकों के लिए रोजगार के अवसर भी पैदा किए। इस प्रकार जिले में कृषि के साथ औद्योगिक रोजगार का आधार विकसित हुआ है।

औद्योगिक गतिविधियों के विस्तार से श्रमिक परिवारों को रोजगार के वैकल्पिक साधन मिले हैं। फिर भी केवल रोजगार मिल जाना आर्थिक सुरक्षा की गारंटी नहीं है। काम के दिनों की संख्या, मजदूरी की नियमितता तथा रोजगार की निरंतरता परिवार की वास्तविक आर्थिक स्थिति को प्रभावित करती है। कृषि आधारित उद्योगों में काम की मांग में मौसमी बदलाव होने के कारण यह स्थिति और महत्वपूर्ण हो जाती है।

इसी संदर्भ में वर्तमान अध्ययन हनुमानगढ़ जिले के श्रमिक परिवारों की रोजगार एवं आर्थिक स्थिति का भौगोलिक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

शोध समीक्षा

किसी भी शोध कार्य में पूर्व में किए गए अध्ययनों का अवलोकन करना आवश्यक होता है। इससे विषय से संबंधित पहले किए गए कार्यों की जानकारी प्राप्त होती है और अध्ययन की दिशा निर्धारित करने में सहायता मिलती है। औद्योगीकरण और श्रमिक परिवारों की आर्थिक स्थिति एक-दूसरे से जुड़े हुए विषय हैं। औद्योगिक गतिविधियों के विस्तार से स्थानीय स्तर पर रोजगार के अवसर बढ़ सकते हैं, लेकिन रोजगार की प्रकृति और उसकी निरंतरता क्षेत्र के अनुसार अलग-अलग हो सकती है। कृषि प्रधान क्षेत्रों में यह संबंध और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि कृषि तथा कृषि आधारित उद्योगों में रोजगार की मांग समय के साथ बदलती रहती है।

हनुमानगढ़ जिले की आर्थिक पृष्ठभूमि कृषि तथा उससे संबंधित गतिविधियों से जुड़ी रही है। नहर सिंचाई के विकास के साथ कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई और कृषि आधारित प्रसंस्करण इकाइयों का विस्तार हुआ। इससे जिले के विभिन्न भागों में श्रम की मांग और रोजगार के स्वरूप में परिवर्तन आया। इसलिए वर्तमान अध्ययन के संदर्भ में ऐसे पूर्ववर्ती अध्ययनों को देखना आवश्यक है जिनमें क्षेत्रीय श्रम बाजार, सिंचाई, कृषि आधारित उद्योग तथा रोजगार से संबंधित पक्षों का अध्ययन किया गया है।

पूर्ववर्ती अध्ययनों का अवलोकन करते समय केवल उनके निष्कर्षों को देखना पर्याप्त नहीं है। यह भी देखना आवश्यक है कि उन्होंने किस क्षेत्र, किस प्रकार के रोजगार तथा किन आर्थिक परिस्थितियों को आधार बनाया। इसी से वर्तमान अध्ययन के लिए उपयुक्त आधार और शोध-अंतर को समझने में सहायता मिलती है। इसी उद्देश्य से वर्ष 2021 से 2026 तक के छह चयनित अध्ययनों को क्रमवार लिया गया है। इन अध्ययनों में क्षेत्रीय श्रम बाजार, नहर आधारित कृषि विकास, कृषि-प्रसंस्करण उद्योग तथा श्रम संबंधी विभिन्न पक्षों पर चर्चा की गई है। इनके निष्कर्षों को हनुमानगढ़ जिले की स्थानीय परिस्थितियों के संदर्भ में समझने का प्रयास किया गया है।

इसके बाद प्रत्येक अध्ययन को उसके वर्ष के क्रम में प्रस्तुत किया गया है, ताकि विषय के अध्ययन में आए क्रमिक विकास को स्पष्ट रूप से देखा जा सके।

बालाचंद्रन (2021) ने उत्तर-पश्चिम भारत के क्षेत्रीय श्रम बाजार का भौगोलिक अध्ययन किया। उन्होंने रोजगार के क्षेत्रीय वितरण और श्रम बाजार की स्थानिक विशेषताओं पर ध्यान दिया। यह अध्ययन वर्तमान शोध के लिए उपयोगी है क्योंकि हनुमानगढ़ में भी औद्योगिक रोजगार सभी क्षेत्रों में समान रूप से उपलब्ध नहीं है।

बनर्जी एवं गुप्ता (2022) ने राजस्थान में नहर आधारित कृषि विकास और श्रम बाजार के संबंध का अध्ययन किया। उनके अध्ययन से सिंचाई, कृषि विकास और रोजगार के बीच संबंध समझने का आधार मिलता है। हनुमानगढ़ के लिए यह

संदर्भ महत्वपूर्ण है क्योंकि जिले की कृषि एवं उससे जुड़ी आर्थिक गतिविधियों पर नहर सिंचाई का प्रभाव रहा है।

बनिक एवं नायर (2023) ने चावल मिलों में श्रम संबंधों का अध्ययन किया। इसमें जाति, लैंगिकता और ठेका श्रम जैसे पक्षों पर ध्यान दिया गया। कृषि आधारित प्रसंस्करण उद्योगों में श्रमिकों की स्थिति को समझने के लिए यह अध्ययन उपयोगी है।

राव (2024) ने उत्तर-पश्चिम भारत में क्षेत्रीय श्रम बाजार के अभिसरण का अध्ययन किया। इससे विभिन्न क्षेत्रों में श्रम बाजार की स्थिति और रोजगार के क्षेत्रीय अंतर को समझने का आधार मिलता है।

साहू एवं सिंह (2025) ने भारतीय सिंचाई क्षेत्रों में जल संसाधनों तथा भूजल संबंधी परिस्थितियों का अध्ययन किया। यह अध्ययन सीधे श्रमिक परिवारों पर केंद्रित नहीं है, लेकिन सिंचाई आधारित क्षेत्रों की भौगोलिक एवं कृषि पृष्ठभूमि को समझने में सहायक है।

कुमार एवं सिंह (2026) ने राजस्थान के कृषि-औद्योगिक गलियारों में नहर व्यवस्था और श्रम बाजार के परिणामों का अध्ययन किया। यह अध्ययन वर्तमान शोध के सबसे निकट है क्योंकि इसमें नहर, कृषि-औद्योगिक गतिविधियों और श्रम बाजार के संबंध को देखा गया है।

इन छह अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि कृषि, सिंचाई, कृषि आधारित उद्योग और श्रम बाजार आपस में जुड़े हुए हैं। फिर भी हनुमानगढ़ जिले में श्रमिक परिवारों की रोजगार, आय और आर्थिक स्थिरता को एक साथ लेकर किया गया स्थानीय भौगोलिक अध्ययन सीमित दिखाई देता है।

शोध-अंतर

पूर्ववर्ती अध्ययनों में नहर सिंचाई, कृषि विकास, क्षेत्रीय श्रम बाजार तथा कृषि आधारित औद्योगिक गतिविधियों के अलग-अलग पक्षों पर चर्चा की गई है। लेकिन हनुमानगढ़ जिले के श्रमिक परिवारों की आय, रोजगार के दिनों, रोजगार की स्थिरता और आर्थिक स्थिति को एक साथ लेकर अध्ययन की आवश्यकता बनी हुई है।

औद्योगिक इकाइयों की संख्या बढ़ना अपने आप में श्रमिक परिवारों की आर्थिक स्थिति में सुधार का प्रमाण नहीं है। रोजगार की अवधि, आय की नियमितता तथा काम की मौसमी प्रकृति भी महत्वपूर्ण हैं। इसी शोध-अंतर को ध्यान में रखते हुए वर्तमान अध्ययन निर्धारित किया गया है।

"हनुमानगढ़ जिले में औद्योगीकरण का श्रमिक परिवारों की रोजगार एवं आर्थिक स्थिति पर प्रभावः एक भौगोलिक अध्ययन"

अध्ययन के उद्देश्य

- औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप श्रमिक परिवारों की आय एवं रोजगार के अवसरों में आए परिवर्तनों का अध्ययन करना।
- औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार की प्रकृति, मजदूरी तथा रोजगार की अनिश्चितता का विश्लेषण करना।
- औद्योगिक गतिविधियों और श्रमिक परिवारों की आर्थिक स्थिति के बीच संबंध का अध्ययन करना।
- औद्योगिक रोजगार के कारण श्रमिक परिवारों की आय के स्रोतों में आए परिवर्तनों की पहचान करना।

शोध विधि एवं सामग्री

अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार की सूचनाओं का उपयोग किया गया है। औद्योगिक गतिविधियों से संबंधित जानकारी जिला उद्योग केंद्र, हनुमानगढ़ तथा रीको क्षेत्रीय कार्यालय से प्राप्त सामग्री के आधार पर ली गई है। श्रमिक परिवारों से संबंधित जानकारी 2025-2026 में किए गए प्राथमिक घरेलू सर्वेक्षण से प्राप्त की गई।

अध्ययन में हनुमानगढ़ जंक्शन एवं टाउन, संगरिया, पीलीबंगा, रावतसर–नोहर तथा टिब्बी प्रमुख औद्योगिक क्षेत्रों को शामिल किया गया। श्रमिक परिवारों की आर्थिक स्थिति के अध्ययन के लिए 120 परिवारों का सर्वेक्षण किया गया। प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण तुलनात्मक एवं प्रतिशत पद्धति से किया गया।

सारणी 1: हनुमानगढ़ जिले के प्रमुख औद्योगिक क्षेत्रों में औद्योगिक इकाइयाँ एवं कार्यरत श्रमिक, 2025-2026

क्र.सं.	औद्योगिक क्षेत्र	प्रमुख उद्योग	इकाइयाँ	कार्यरत श्रमिक
1	हनुमानगढ़ जंक्शन एवं टाउन	राइस मिल, कॉटन जिनिंग, स्पिनिंग, एग्रो-प्रोसेसिंग	184	8,500
2	संगरिया	कपास, खाद्य तेल, कृषि उपकरण	92	3,800
3	पीलीबंगा	ईंट-भट्टे, राइस शेलर, जिप्सम इकाइयाँ	76	4,200
4	रावतसर एवं नोहर	ग्वार गम, दाल मिल, सरसों तेल	64	2,900
5	टिब्बी	एथनॉल, बायोमास ऊर्जा	12	1,400
कुल	**संपूर्ण जिला**	**-**	**428**	**20,800**

स्रोतः जिला उद्योग केंद्र, हनुमानगढ़ एवं रीको क्षेत्रीय कार्यालय, 2025-2026।

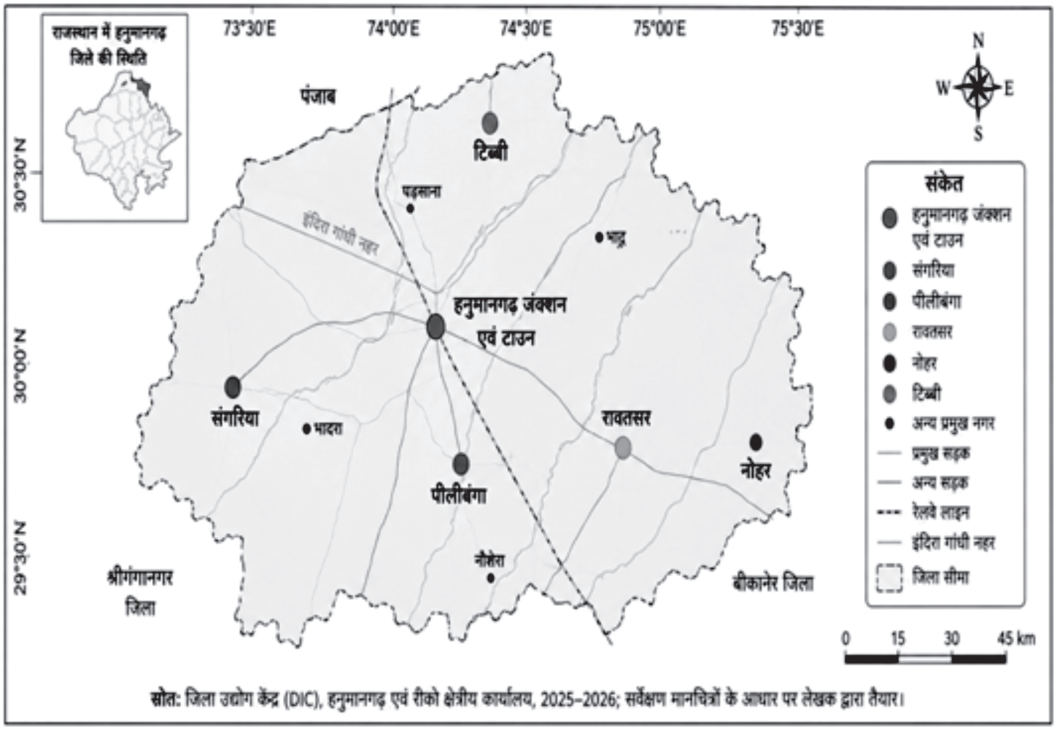

चित्र 1: हनुमानगढ़ जिले में चयनित औद्योगिक क्षेत्रों का स्थानिक वितरण

चित्र में हनुमानगढ़ जंक्शन एवं टाउन, संगरिया, पीलीबंगा, रावतसर, नोहर तथा टिब्बी को दर्शाया जाएगा। इसका उद्देश्य जिले में औद्योगिक गतिविधियों के स्थानिक संकेंद्रण को स्पष्ट करना है।

सारणी 2: श्रमिक परिवारों की रोजगार एवं आर्थिक स्थिति में मौसमी परिवर्तन

आर्थिक संकेतक	कार्यशील मौसम	ऑफ-सीजन
औसत मासिक पारिवारिक आय	रु. 16,500-22,000	रु. 6,000-9,500
रोजगार के दिन प्रति माह	24-26 दिन	8-12 दिन
भोजन एवं आवश्यक वस्तुओं पर आय का हिस्सा	45%	70%
ऋणग्रस्त परिवार	35%	82%

स्रोतः- प्राथमिक घरेलू सर्वेक्षण, 2025-2026 120 श्रमिक परिवार।

अध्ययन की सीमाएँ

प्रस्तुत अध्ययन मुख्य रूप से हनुमानगढ़ जिले के चयनित औद्योगिक क्षेत्रों तथा वहाँ कार्यरत श्रमिक परिवारों पर आधारित है। इसलिए इसके निष्कर्षों को पूरे राजस्थान के औद्योगिक श्रमिक परिवारों पर सीधे लागू नहीं किया जा सकता। श्रमिक परिवारों की आर्थिक स्थिति से संबंधित जानकारी 2025-2026 में किए गए 120 परिवारों के प्राथमिक सर्वेक्षण पर आधारित है। औद्योगिक इकाइयों एवं कार्यरत श्रमिकों से संबंधित जानकारी उपलब्ध संस्थागत स्रोतों से ली गई है तथा जहाँ आँकड़े अनुमानित रूप में उपलब्ध हैं, उन्हें उसी रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त, कृषि आधारित उद्योगों में रोजगार की मौसमी प्रकृति के कारण कार्यशील मौसम और ऑफ-सीजन की स्थिति में अंतर पाया जाता है। अतः अध्ययन के परिणामों को इसी भौगोलिक एवं समयगत संदर्भ में समझना उचित होगा।

परिणाम एवं चर्चा

सारणी 1 से पता चलता है कि जिले में औद्योगिक गतिविधियों का वितरण समान नहीं है। हनुमानगढ़ जंक्शन एवं टाउन में 184 इकाइयों के साथ 8,500 से अधिक श्रमिक कार्यरत हैं। संगरिया में 92 इकाइयाँ और 3,800 से अधिक श्रमिक हैं। पीलीबंगा में इकाइयों की संख्या 76 है, जबकि कार्यरत श्रमिक 4,200 से अधिक हैं। इससे स्पष्ट है कि उद्योगों की संख्या और रोजगार की संख्या का संबंध हर क्षेत्र में समान नहीं है। उद्योगों का आकार और उनका श्रम उपयोग भी रोजगार के स्तर को प्रभावित करता है।

रावतसर-नोहर तथा टिब्बी में औद्योगिक गतिविधियाँ तुलनात्मक रूप से कम हैं। इस प्रकार जिले में औद्योगिक रोजगार का स्थानिक वितरण असमान दिखाई देता है। औद्योगिक केंद्रों के आसपास श्रमिकों के लिए गैर-कृषि रोजगार के अवसर अधिक उपलब्ध होते हैं।

सारणी 2 के अनुसार कार्यशील मौसम में श्रमिक परिवारों की औसत मासिक आय घ16,500-22,000 रही, जबकि ऑफ-सीजन में यह घ6,000-9,500 तक रह गई। इसी अवधि में रोजगार के औसत दिन 24-26 से घटकर 8-12 दिन रह गए। इससे पता चलता है कि रोजगार के दिनों में कमी का सीधा प्रभाव पारिवारिक आय पर पड़ता है।

ऑफ-सीजन में भोजन एवं आवश्यक वस्तुओं पर आय का हिस्सा 45 प्रतिशत से बढ़कर 70 प्रतिशत हो गया। इसका अर्थ है कि कम आय की स्थिति में परिवार की आय का अधिक भाग आवश्यक खर्च में चला जाता है। बचत की संभावना भी सीमित हो जाती है।

ऋणग्रस्त परिवारों का अनुपात भी कार्यशील मौसम के 35 प्रतिशत से बढ़कर ऑफ-सीजन में 82 प्रतिशत हो गया। इससे संकेत मिलता है कि रोजगार की कमी परिवारों पर आर्थिक दबाव बढ़ाती है। इसलिए श्रमिक परिवारों की आर्थिक स्थिति को समझने में रोजगार की निरंतरता महत्वपूर्ण पक्ष है।

समग्र रूप से अध्ययन से पता चलता है कि हनुमानगढ़ में औद्योगीकरण ने कृषि के अतिरिक्त रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए हैं, लेकिन इन अवसरों की निरंतरता सभी समय समान नहीं है। कृषि आधारित उद्योगों की मौसमी प्रकृति के कारण श्रमिक परिवारों की आय में भी उतार-चढ़ाव दिखाई देता है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हनुमानगढ़ जिले में औद्योगीकरण ने श्रमिकों के लिए रोजगार के नए अवसर विकसित किए हैं। औद्योगिक गतिविधियों का संकेंद्रण कुछ प्रमुख क्षेत्रों में अधिक है। इससे रोजगार के अवसरों में भी क्षेत्रीय अंतर दिखाई देता है।

श्रमिक परिवारों की आर्थिक स्थिति में मौसमी अंतर इस अध्ययन का प्रमुख निष्कर्ष है। कार्यशील मौसम में रोजगार के अधिक दिन और अपेक्षाकृत अधिक आय मिलती है, जबकि ऑफ-सीजन में रोजगार और आय दोनों घटते हैं। इसी अवधि में ऋणग्रस्तता भी बढ़ती है। इससे पता चलता है कि केवल रोजगार की उपलब्धता पर्याप्त नहीं हैय रोजगार की निरंतरता भी आवश्यक है।

अतः जिले में कृषि आधारित उद्योगों के ऑफ-सीजन में वैकल्पिक रोजगार उपलब्ध कराने, स्थानीय श्रमिकों के कौशल विकास, नियमित रोजगार के अवसर बढ़ाने तथा श्रमिक परिवारों को संस्थागत वित्तीय सेवाओं से जोड़ने की आवश्यकता है। औद्योगिक विकास की क्षेत्रीय योजना बनाते समय स्थानीय श्रम, कृषि उत्पादन और परिवहन जैसी स्थितियों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

संदर्भ सूची

- बालाचंद्रन, आर. (2021). क्षेत्रीय श्रम बाजारः उत्तर-पश्चिम भारत का एक भौगोलिक अध्ययन। जर्नल ऑफ स्पेशियल इकोनॉमिक्स, 24(3), 345-370।
- बनर्जी, एस., एवं गुप्ता, ए. (2022). राजस्थान में नहर आधारित कृषि विकास और श्रम बाजार। इकोनॉमिक जियोग्राफी, 98(2), 221-245।
- बनिक, एस., एवं नायर, आर. (2023). चावल मिलों में श्रम का अध्ययनः जाति, लैंगिकता और ठेका कार्य। एथ्नोग्राफी, 24(2), 178-199।
- राव, एस. (2024). उत्तर-पश्चिम भारत में क्षेत्रीय श्रम बाजार का अभिसरण। रीजनल स्टडीज, 58(5), 789-808।
- साहू, ए., एवं सिंह, आर. (2025). भारतीय सिंचाई क्षेत्रों में दबावग्रस्त जलभृत, जल गुणवत्ता में गिरावट और पार्श्व प्रवाह। वॉटर रिसोर्सेज रिसर्च (प्रीप्रिंट)।
- कुमार, ए., एवं सिंह, पी. (2026). राजस्थान के कृषि-औद्योगिक गलियारों में नहर व्यवस्था और श्रम बाजार के परिणाम। जर्नल ऑफ रीजनल साइंस, 66(1), 22-45।
- खान, जी. ए. (2021). भारत में अनौपचारिक क्षेत्र के रोजगार की संवेदनशीलता का आलोचनात्मक विश्लेषणः सुरक्षा तंत्र और संरक्षण की पर्याप्तता। इंटरनेशनल सोशल साइंस जर्नल, 71(241-242), 197-215।
- नेगी, वी., एवं अख्तर, एस. (2022). श्रम कानूनों का औपचारिक एवं अनौपचारिक क्षेत्रों के बीच मजदूरी अंतर पर प्रभावः भारतीय विनिर्माण क्षेत्र के साक्ष्य। एशियन जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स, बिजनेस एंड अकाउंटिंग, 22(22), 83-98।
- कपूर, आर., एवं कृष्णप्रिया, पी. पी. (2023). औपचारिक क्षेत्र का अनौपचारीकरणः भारत के विनिर्माण उद्योगों से साक्ष्य। आईजेडए जर्नल ऑफ डेवलपमेंट एंड माइग्रेशन, 14(1)।

- कौर, एन., एवं कौर, ए. (2024). वर्ग और श्रम की गतिशीलताः राजस्थान में एक दीर्घकालिक अध्ययन के साक्ष्य। जर्नल ऑफ एग्रेरियन चेंज, 24(4),12593।
- आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (ओईसीडी) (2025). ओईसीडी आर्थिक परिदृश्य, 2025, अंक 1: भारत। ओईसीडी प्रकाशन।
- गोल्डर, बी., एवं अग्रवाल, एस. सी. (2026). हाल के वर्षों में भारत में विनिर्माण रोजगार में वृद्धिः परिवर्तन के स्वरूप और रोजगार वृद्धि के कारण। आर्थिक विकास संस्थान एसएसआरएन।

https://doi.org/10.5281/zenodo.22083713

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

हिंदी नाटकों में गांधी-चित्रण : 'गोडसे @ गाँधी. कॉम' के विशेष संदर्भ में

डॉ. ए. व्हि. सूर्यवंशी

प्राचार्य, बी.एल.डी.इ. संस्था

बसवेश्वर कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय

बसवन बागेवाडी

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य और भारतीय महानायकों के पटल पर, महात्मा गांधी एक ऐसी उपस्थिति हैं, जिसे असगर वजाहत अपनी नाट्य-कृति 'गोडसे @ गाँधी. कॉम' की भूमिका में, एक "चट्टान" के रूप में परिभाषित करते हैं, "जिससे टकराये बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता"[1] अपनी मृत्यु के सात दशकों से अधिक समय बीत जाने के बाद भी, गांधी की प्रासंगिकता कम होने के बजाय, वजाहत के शब्दों में, अधिक प्रासंगिक दिखाई पड़ने लगी है।

हिंदी नाटक साहित्य ने इस ऐतिहासिक और वैचारिक रूप से जटिल व्यक्तित्व को मंच पर साधने का निरंतर प्रयास किया है। यह यात्रा गांधी के देवत्वीकरण से लेकर उनकी नीतियों की तीखी आलोचना तक फैली हुई है। लेकिन समकालीन हिंदी नाटक का एक बड़ा धरातल इन दोनों दृष्टियों के बीच, उस 'मनुष्य' गांधी की तलाश करता है जो अपनी महानता के बावजूद कुछ बहुत 'छोटे और टुच्चे' विश्वासों, विचारों से अपने को मुक्त न करा सके थे और जिनके व्यक्तित्व में अपार अन्तर्विरोध भरे पड़े हैं।

असगर वजाहत का 'गोडसे @ गाँधी. कॉम' नाटक इसी तलाश का एक सशक्त और साहसिक दस्तावेज़ है। यह एक काल्पनिक इतिहास पर आधारित है, जिसकी शुरुआत ही इस विस्मयकारी उद्घोषणा से होती है कि गांधी पर गोली चलाने के बाद "महात्मा गाँधी की हालत में तेज़ी से सुधार हो रहा है।"[2] इस एक काल्पनिक प्रस्थान बिंदु के सहारे, वजाहत गांधी के जीवन के उन तमाम विवादास्पद मुद्दों को मंच पर ला खड़ा करते हैं, जिनको आधार बनाकर गाँधी की निन्दा की जाती है।

'हिन्दू बनाम हिन्दू' : वैचारिक द्वंद्व का मंचन

वजाहत के इस नाटक का मूल संघर्ष उस प्रश्न में निहित है, जिसे वे अपनी भूमिका में "नाटक के एक केन्द्रीय सरोकार" के रूप में रेखांकित करते हैं– "एक पक्के हिन्दू ने दूसरे पक्के हिन्दू की हत्या क्यों कर दी?"[3] यह नाटक महज़ एक हत्या के प्रयास का चित्रण नहीं है, बल्कि यह हिंदू धर्म के भीतर के उदारवादी और कट्टरवादी चेहरों के बीच चल रहे वैचारिक और राजनीतिक संघर्ष का मंचन है। वजाहत, गांधी के हत्यारे नाथूराम गोडसे को एक कार्डबोर्ड विलेन के रूप में प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि उसे उसके पूरे वैचारिक तर्क के साथ खड़ा करते हैं। गोडसे के लिए, गांधी हिन्दुओं के शत्रु ही नहीं बल्कि सबसे बड़े

शत्रु हैं। क्योंकि उन्होंने हिन्दू, हिन्दी, हिन्दुस्तान अर्थात् हिन्दुत्व को बचाने के लिए किए जा रहे प्रयासों में बाधा डाली। गोडसे का मानना है कि गांधी ने मुसलमानों का तुष्टीकरण किया है और पाकिस्तान का पिता जिन्ना नहीं, गाँधी है।

इसके प्रतिवाद में, नाटक के 'गांधी' केवल अहिंसा का उपदेश नहीं देते; वे गोडसे की 'हिन्दुत्व' की परिभाषा को ही बौधद्धिक और ऐतिहासिक रूप से चुनौती देते हैं। जब गोडसे 'अखंड भारत' के मानचित्र की बात करता है, तो गांधी उसे याद दिलाते हैं कि उसका यह नक्शा सम्राट अशोक के साम्राज्य के बराबर भी नहीं है और इसमें "न तो कैलाश पर्वत है और न मानसरोवर है।"[4] इससे भी बढ़कर, गांधी गोडसे से ही प्रश्न करते हैं कि "हिन्दू से तुम्हारा मतलब क्या है?"[5] क्योंकि वेद-पुराण और उपनिषदों में यह शब्द नहीं मिलता। वजाहत का सबसे तीखा व्यंग्य तब उभरता है जब गांधी, गोडसे से सावरकर के 'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत' पर सवाल करते हैं। गांधी का तर्क है कि यदि सावरकर मानते थे कि मुसलमान और हिन्दू दो अलग-अलग राष्ट्रीयताएँ हैं, तो उन्हें तो पाकिस्तान का स्वागत करना चाहिए। गांधी स्पष्ट करते हैं कि वे पाकिस्तान के विरोधी इसलिए थे क्योंकि "मैं इस सिद्धान्त को मानता ही नहीं कि हिन्दू और मुसलमान दो अलग-अलग राष्ट्र हैं।"[6] इस संवाद के माध्यम से, हिंदी नाटक का यह मंच गांधी को एक ऐसे समावेशी, सनातनी विचारक के रूप में पेश करता है, जिसका हिन्दुत्व 'समन्वय और एकता' पर आधारित है, न कि गोडसे के 'विशुद्ध हिन्दू' होने के गर्व पर।

स्वतंत्र भारत का पहला 'देशद्रोही' के रूप में गांधी

हिंदी नाटक साहित्य में गांधी का चित्रण अक्सर स्वतंत्रता संग्राम तक सीमित रहा है। 'गोडसे @ गाँधी. कॉम' का सबसे क्रांतिकारी पहलू आज़ादी के बाद के गांधी का चित्रण है। यह नाटक गांधी को 'राष्ट्रपिता' के आरामदायक आसन पर बिठाने के बजाय, उन्हें स्वतंत्र भारत की नव-स्थापित सत्ता के विरुद्ध पहले और सबसे मुखर विद्रोही के रूप में प्रस्तुत करता है। नाटक उस ऐतिहासिक तथ्य को प्रमुखता से उठाता है कि गांधी अखिल भारतीय कांग्रेस पाटी को आज़ादी मिल जाने के बाद भंग कर दिये जाने के पक्ष में थे। जब नेहरू, पटेल और मौलाना आज़ाद सत्ता सँभालने की तैयारी में हैं, गांधी उन्हें याद दिलाते हैं कि कांग्रेस एक खुला मंच था, जहाँ सबका स्वागत किया जाता था... मंच को पाटी नहीं बनाना चाहिए। गांधी का मूल तर्क सत्ता के चरित्र पर हैरू "सवाल ये है कि शासन कौन करेगा... तुम लोग अब शासन करना चाहते हो।"[7] उनका मानना है कि सरकार हुकूमत करती है, सेवा नहीं करती। सरकारें सत्ता की प्रतीक होती हैं और सत्ता सिर्फ खुद की सेवा करती है।

जब नेहरू 'प्लानिंग कमीशन' और 'फाइव इयर प्लान' के माध्यम से पत्तों से जड़ की तरफ़ जाने की बात करते हैं, तो गांधी जड़ से पत्तों की तरफ़ आने की बात करते हुए 'देशसेवा' के लिए गाँवों में जाने का आह्वान करते हैं। जब कांग्रेस वर्किंग कमेटी उनके प्रस्ताव को खारिज कर देती है तो गांधी कांग्रेस से अपना रिश्ता तोड़ लेते हैं और बिहार के एक सुदूर आदिवासी गाँव 'संगरी' में अपना 'प्रयोग आश्रम' स्थापित करते हैं। यहाँ, वे 'स्वराज' की अपनी वास्तविक कल्पना को साकार करते हैं। वे गाँव की अपनी अदालतें, पुलिस और सिविल एडमिनिस्ट्रेशन की व्यवस्था करते हैं और सरकारी विकास को तब तक अस्वीकार कर देते हैं, जब तक कि गाँव वाले उसे खुद चलाना न सीख लें। विडंबना अपने चरम पर तब पहुँचती है, जब स्वतंत्र भारत की अपनी ही सरकार, गांधी के इस 'स्वराज' के प्रयोग को खतरनाक और देशद्रोह मानती है। अंततः, पंडित नेहरू की सरकार के आदेश पर, महात्मा गांधी को "दफा 121, 121-ए, 123 124-ए और 126 के तहत गिरफ़्तार करके मुकद्दमा चलाने का फैसला किया जाता है।"[8] वजाहत, गांधी को एक ऐसे शाश्वत विद्रोही के रूप में चित्रित करते हैं, जिसकी सत्य की लड़ाई पहले ब्रिटिश साम्राज्य से थी, और बाद में अपनी ही बनाई 'हुकूमत' से हो गई।

ब्रह्मचर्य का हठ और आत्म-सुधार

जैसा कि वजाहत भूमिका में स्वीकार करते हैं, वे गांधी के अन्धभक्त नहीं हैं और नाटक का उद्देश्य गांधी के अंतर्विरोधों को मंच पर लाना है, विशेषकर स्त्री-पुरुष सम्बन्ध तथा ब्रह्मचर्य के वे सिद्धान्त जिनसे वे जकड़े हुए थे। इस उद्देश्य के लिए,

नाटककार ने सुषमा और नवीन के काल्पनिक पात्रों की रचना की है। सुषमा, गांधी की अन्धभक्त है, लेकिन वह नवीन से प्रेम करती है। जब गांधी को उनके प्रेम का पता एक चिट्ठी से चलता है तो उनका कठोर, सैद्धांतिक पक्ष उजागर होता है। वह इस प्रेम को गन्दगी, सड़न, कुविचार, काम के लिए लालसा और विकार मानते हैं। वह सुषमा के सामने शर्त रखते हैं कि वह नवीन को हृदय से अपना भाई या पिता मान सकती हो? यह नाटक के सबसे तनावपूर्ण क्षणों में से एक है, जहाँ गांधी का चरित्र लगभग एक खलनायक की सीमा तक पहुँच जाता है।

नाटककार यहाँ गांधी को कठघरे में खड़ा करने के लिए दो अन्य पात्रों का उपयोग करते हैं। पहला, नवीन, जो गुस्से में गांधी से पूछता है, "महात्मा जी... जो आप नहीं कर सके, उसकी तालीम दूसरों को क्यों दे रहे हैं?"[9] और दूसरी, सुषमा की अनपढ़ माँ निर्मला, जो अपनी सहज ग्रामीण बुद्धि से गांधी के दर्शन को चुनौती देती है, "अरे बापू, तू एक बात बता, सभी साधु-सन्त हो जावेंगे तो संसार कैसे चलेगा?"[10] नाटक का शिखर तब आता है जब गांधी, कस्तूरबा को सपने में देखते हैं, 'बा' की आत्मा उन्हें आईना दिखाते हुए कहती है कि उन्होंने हर औरत को दुख दिया है, सताया है। जयप्रकाश और प्रभादेवी के वैवाहिक जीवन का सत्यानाश कर दिया और सुषमा के साथ जो वह कर रहे हैं, वह मनोवैज्ञानिक हिंसा है। यह आत्म-मंथन गांधी को बदल देता है। जब वे सुषमा को प्रेम-वियोग में सूखकर काँटा होते देखते हैं, तो उनका हठ टूट जाता है। वे प्यारेलाल को नवीन को बुलाने का आदेश देते हैं और यह कालजयी वाक्य कहते हैं— "प्यारेलाल... सिद्धान्त जीवन को सुन्दर बनाने के लिए होते हैं... कुरूप बनाने के लिए नहीं होते।"[11] वे न केवल अपनी 'भूल' सुधारते हैं, बल्कि सुषमा का विवाह नवीन से संपन्न कराते हैं। हिंदी नाटक के लिए यह एक दुर्लभ क्षण है, जहाँ 'महात्मा' को अपनी सबसे गहरी मान्यताओं पर पुनर्विचार करते और बदलते हुए दिखाया गया है, जो उन्हें एक देव-तुल्य मूर्ति से अधिक एक महान 'मनुष्य' बनाता है।

'गीता' का पुनर्पाठ

'गोडसे @ गाँधी. कॉम' का अंतिम और सबसे महत्वपूर्ण संदेश 'संवाद' की शक्ति में निहित है। नाटक का गांधी अपने हत्यारे से घृणा नहीं करता; वह उससे बात करना चाहता है। जब गांधी को 'देशद्रोह' के लिए जेल होती है, उन्हें पता चलता है कि नाथूराम गोडसे इसी जेल में है। वे जेलर से 'मुझे भी पाँच नम्बर का वार्ड दे दीजिए' की माँग करते हैं। जब जेलर सुरक्षा कारणों से मना करता है तो 87 वर्षीय गांधी 'अपनी माँग के लिये आमरण अनशन' शुरू कर देते हैं। यह गांधी के सत्याग्रह का चरम है अपने हत्यारे के साथ रहने के लिए अनशन। अंततः सरकार झुकती है और गांधी, गोडसे के वार्ड में शिफ्ट हो जाते हैं। उनका उद्देश्य स्पष्ट है, वे घृणा और प्रेम के बीच से नया रास्ता, संवाद का रास्ता निकालना चाहते हैं। गोडसे से बात करना चाहते हैं। इसके बाद इस संवाद का केंद्र 'गीता' बनती है, जिसे दोनों 'अपना जीवनदर्शन' मानते हैं। गांधी इस विडंबना को रेखांकित करते हैं, "गीता ने तुम्हें मेरी हत्या करने की प्रेरणा दी और मुझे तुम्हें क्षमा कर देने की प्रेरणा दी... ये कैसा रहस्य है?"[12] गोडसे 'गीता' को "निष्फल कर्म" के रूप में व्याख्यायित करता है, जो युद्ध के क्षेत्र में हत्या को जायज़ ठहराता है, गांधी इसका खंडन करते हुए कहते हैं कि "लड़ाई के मैदान में हत्या करने और प्रार्थना सभा में फ़र्क है।"[13] गांधी की 'गीता' मित्र और शत्रु में भेद नहीं करती और दूसरों की भलाई के लिए किया जाने वाला काम ही सच्चा कर्म है। नाटक का अंत हिंदी साहित्य के सबसे मार्मिक और प्रतीकात्मक दृश्यों में से एक है। 5 जुलाई 1960 को गांधी और गोडसे, दोनों एक ही दिन रिहा हुए। जेल के फाटक पर, गांधी गोडसे को हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं। गोडसे भी हाथ जोड़ लेता है। दोनों विपरीत दिशाओं में चल पड़ते हैं, लेकिन अचानक गाँधी रुक जाते हैं... गोडसे भी रुक जाता है... घूमकर गाँधी के पीछे आता है। जब वह गांधी के बराबर पहुँचता है, गाँधी बिना उसकी तरफ देखे अपना बायाँ हाथ बढ़ाकर उसके कन्धे पर रख देते हैं और दोनों आगे बढ़ते हैं। यह मौन दृश्य संवाद की, गांधीवादी पद्धति की, और करुणा की अंतिम विजय है। जिस शत्रु ने गांधी के शरीर को मारना चाहा था, उसी शत्रु को गांधी के विचार ने रूपांतरित कर अपने साथ चलने पर विवश कर दिया।

निष्कर्ष

हिंदी नाटक साहित्य का 'महात्मा' एक पूजनीय मूर्ति मात्र नहीं, बल्कि एक जटिल, आत्म-संघर्षरत और निरंतर विकसित होता हुआ 'मनुष्य' है। असगर वजाहत गांधी को उनकी संपूर्णता में पकड़ते हैं—वे एक 'देशद्रोही' हैं जो अपनी ही बनाई सत्ता के लिए खतरा बन जाते हैं; वे एक हठधर्मी सिद्धांतवादी हैं जो अपने ब्रह्मचर्य के हठ से जीवन को 'कुरूप' बना सकते हैं, लेकिन साथ ही वे एक ऐसे महान 'मनुष्य' भी हैं जो अपनी भूलों को पहचानकर आत्म-सुधार करने का साहस रखते हैं। यह नाटक गांधी को इतिहास से निकालकर वर्तमान के वैचारिक द्वंद्व ('हिन्दू बनाम हिन्दू') के केंद्र में ला खड़ा करता है। अंततः, यह दिखाता है कि गांधी की असली ताकत उनके 'सत्याग्रह' और 'संवाद' की पद्धति में निहित है, जो अपने सबसे बड़े शत्रु को भी रूपांतरित कर, अपने साथ चलने पर विवश कर देती है।

संदर्भ सूची

1) वजाहत, असगर। गोडसे @ गाँधी. कॉम। भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2014।
2) वही
3) वही
4) वही
5) वही
6) वही
7) वही
8) वही
9) वही
10) वही
11) वही
12) वही
13) वही

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Prof. (Dr.) Ida Manuel
Head of The Department
Hindi Department, Sri C Achutha Menon Govt-College
Thrissur, Kerala, India

for the paper titled

'दीवार में एक खिड़की रहती थी' में मानवीय संवेदना और जादुई यथार्थवाद

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Shamama Bano
(Research Scholar), Department of English
Bhagwant University Ajmer Rajasthan, Ajmer, Rajasthan
Dr. Manju Sharma
Guide

for the paper titled

Tradition, Race, and Female Sensibility: A Comparative Reading of Kamala Markandaya and Toni Morrison

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

रीखा पटेल

शोध छात्रा

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

for the paper titled

सोनभद्र के आदिवासी समाज का संघर्ष और अस्मिता

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

कु. सविता कुमारी

शोधार्थी, विभाग - हिंदी

कॉलेज - लाल बहादुर शास्त्री स्नातकोत्तर महाविद्यालय मुगलसराय चंदौली

संबंध यूनिवर्सिटी- महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी

for the paper titled

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री समस्या

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Lija G S
Part time Research Scholar
N S S Hindu college, Changanasseri

for the paper titled

नारी प्रतिरोधी स्वर में 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. रमा राहुल दूधमांडे

सहयोगी आचार्य एवं हिंदी विभाग प्रमुख

डॉ.(सौ.) इं. भा. पाठक महिला कला महाविद्यालय, समर्थ नगर

छत्रपती संभाजीनगर (महाराष्ट्र)

for the paper titled

भारतीय कवयित्रियाँ : साहित्यिक परंपरा, स्त्री चेतना और समकालीन परिप्रेक्ष्य

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

रमनदीप

शोधार्थी

हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

for the paper titled

21वीं सदी के हिंदी रंगमंच के समक्ष चुनौतियों का विश्लेषण

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

हर्ष वार्ष्णेय

शोधार्थी,

इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

for the paper titled

औपनिवेशिक टीकाकरण और चेचक

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

रोहित

इतिहास (एम.ए.), नेट/जेआरएफ,

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

for the paper titled

आर्य समाज के सोलह संस्कार : वैदिक परंपरा और समकालीन प्रासंगिकता

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

रेमीसा सी.यु.

शोधार्थी, हिंदी विभाग,

श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी

for the paper titled

संवेदना और विवेक के बीच : मोहन राकेश की रूमानी चेतना

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

प्रा.पटेकर विश्वनाथ चंद्रकांत

हिंदी विभागाध्यक्ष,

महात्मा फुले कला, विज्ञान व वाणिज्य महाविद्यालय,

पनवेल, जि. रायगड

for the paper titled

कहानी संग्रह 'दूत' में स्त्री विमर्श का चित्रण

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Trupti Khanang
Guest Lecturer, Department of Home Science
Govt- Danteshwari PG Mahila Mahavidyalaya,
Jagdalpur, Chhattisgarh, India

for the paper titled

किशोरियों के मासिक चक्र पर आहार एवं जीवनशैली का प्रभाव : एक अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. मिन्नु जोसेफ

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

सेंट. तेरेसास कॉलेज (स्वायत्त) एर्णाकुलम

for the paper titled

'पेररियात्तवर' : बेनाम दलित जीवन की दास्तान

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

हर्षा जैन

पीएच.डी. शोधार्थी,

राजनीति विज्ञान विभाग

भारती विश्वविद्यालय, पुलगांव चौक, दुर्ग (छत्तीसगढ़)

for the paper titled

आत्मनिर्भर भारत और भारतीय ज्ञान परंपरा : आर्थिक राष्ट्रवाद से वैश्विक नेतृत्व तक

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. स्नेह लता शिवहरे

असिस्टेंट प्रो.समाजशास्त्र

खुनखुन जी गर्ल्स डिग्री कॉलेज, चौक, लखनऊ

for the paper titled

अनुसूचित जनजाति एवं विवाह संस्कार

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

टीना कुमारी

(शोध छात्रा), संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

प्रो. सुषमा देवी

(कला-संकायाध्यक्षा), संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

for the paper titled

त्र्यम्बक शैव शास्त्र के प्रचार-प्रसार में आचार्य भट्ट कल्लट का योगदान

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. प्रणीता पी.

आचार्य, हिंदी विभाग,

कोचीन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, केरल

for the paper titled

दरबारी सत्ता के बीच बेला : 'राग दरबारी' में स्त्री अस्तित्व का संघर्ष

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

जशन काठपाल

शोधार्थी : पीएच.डी.(हिंदी)

डॉ. शिवचरण शर्मा

शोध निर्देशक : आचार्य, हिन्दी विभाग,

श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़, राजस्थान

for the paper titled

शंकर शेष के नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' की सिनेमा में प्रासंगिकता

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

सलमा अश्फ़ा

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,

अलीगढ़, उ.प्र.

for the paper titled

हबीब कैफ़ी के उपन्यास 'गमना' में आदिवासी जीवन का यथार्थ : शोषण, अस्मिता और प्रतिरोध का विमर्श

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Amirah Kaisar Parvez Bagwan
(Research Scholar)
Dr. Pawar Anuradha Vijay
(Research Guide), Department Of Psychology, Shri Khushal Das University, Hanumangarh, Rajasthan

for the paper titled

Impact of Social Media Usage on Happiness and Life Satisfaction among Young Adults

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Bagwan Kaisar Parvez Nisar
(Research Scholar)
Dr. Kalpana Midha
(Research Guide), Department Of Computer Science, Shri Khushal Das University, Hanumangarh, Rajasthan

for the paper titled

The Role Of Blockchain Technology In Enhancing Cybersecurity And Data Integrity

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

रोहिणी एस ए

शोधार्थी, हिंदी विभाग,

डॉ. लक्ष्मी एस एस

अ.प्रो., हिंदी विभाग,

for the paper titled

सूर्यबाला की कहानी 'मानुष गंध' में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

राकेश कुमार

शोधार्थी, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,

जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

for the paper titled

बुद्ध शरण हंस के कथा साहित्य में हाशिए का समाज और प्रतिरोधी चेतना

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

चौधरी मधुलिका

शोधछात्रा,

इतिहास विभाग,

वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

for the paper titled

प्राचीन भारत में क्षत्रिय महिलाओं के व्यभिचार संबंधी विधिक प्रावधान : धर्मसूत्रों का तुलनात्मक विश्लेषण

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. अश्विनी कुमार

सहायक प्रोफेसर, अतिथि संकाय, संस्कृत विभाग,

हि. प्र. विश्वविद्यालय,

क्षेत्रीय केन्द्र, धर्मशाला

for the paper titled

चारुदत्तम् की प्राकृत में प्रयुक्त नामपद

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. रूमा साह

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

द्वाराहाट, (अल्मोड़ा)

for the paper titled

नई शिक्षा नीति (NEP) के परिवर्तनकारी प्रभाव पर प्रेमचंद के साहित्य की प्रासंगिकता

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

स्नेहा

शोधार्थी,

गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान, प्रयागराज

for the paper titled

वैश्वीकरण का दलित जीवन पर प्रभाव : उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

नेहा सक्सेना

शोधार्थी

(हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय)

for the paper titled

यशपाल के उपन्यासों में अभिव्यक्त लोकसंस्कृति

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

विपुल कुमार

शोधार्थी, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना।

डॉ. श्रीकांत सिंह

शोध निदेशक, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, स्नातकोत्तर केंद्र

कॉलेज ऑफ कॉमर्स, आर्ट्स एंड सायंस, पटना-20

for the paper titled

महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों में ग्रामीण जीवन : संवेदना, संघर्ष और मानवीयता

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Anupama
Assistant Professor, Department of Hindi
Mount Carmel College, Autonomous,
#58, Palace Road, Abshot Layout,
Vasanth Nagar, Bangalore-560001

for the paper titled

मोहन राकेश के नाटकों में नारी मनोविज्ञान और संघर्ष

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2026, Vol. 13, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**